अध्ययन मण्डल

अध्यक्ष
कुलपति
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
1.प्रो0 अरविंद के जोशी, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उत्तर प्रदेश)
2.प्रो0 बी.मोहन कुमार, जी.बी.पंत कृषि व प्रोद्योगिकी विश्वविद्यालय, पंतनगर, उत्तराखण्ड

संयोजक
निदेशक समाज विज्ञान विद्याशाखा

पाठ्यक्रम समन्वयक

डॉ0 दीपक पालीवाल, सहायक प्राध्यापक समाजशास्त्र, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

इकाई लेखन	इकाई संख्या
प्रो0 इला शाह, समाजशास्त्र विभाग, एस0एस0जी परिसर कुमांऊ विश्वविद्यालय, अल्मोड़ा	8
श्री यादव गुंजन रामराज	1,2
डॉ0 संजय कुमार, दिगम्बर (पी0जी0) कालेज, बुलन्दशहर	3,7,9
डॉ0 अरुण कुमार, राजकीय (पी0जी0) कालेज, अल्मोड़ा	4,6
Translation of Units: Punit Chaturvedi	**7,8,9**

संपादन

डॉ0 दीपक पालीवाल, सहायक प्राध्यापक समाजशास्त्र, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

कापीराइट @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

प्रकाशन वर्ष- 2020

प्रकाशन- उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी- 263139

सर्वाधिक सुरक्षित। इस प्रकाशन का कोई भी अंश उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी

MASO-607

भारतीय समाजशास्त्रीय विचार – II
Indian Sociological Thought-II

Block I	**Civilizational Perspective**	
Unit 1:	N.K.Bose **निर्मल कुमार बोस**	पृष्ठ–1–17
Unit 2:	SurjitSinha सुरजीत सिन्हा	पृष्ठ–18–29
Unit 3:	L.P.Vidyarthi ललिता प्रसाद विद्यार्थी	पृष्ठ–30–39
Block II	**Subaltern Perspective**	
Unit 4:	B.R.Ambedkar डॉ. भीमराव अम्बेडकर	पृष्ठ–40–56
Unit 5:	RanajitGuha रणजीत गुहा	पृष्ठ–57–67
Unit 6:	David Hardiman डेविड हार्डीमैन	पृष्ठ–68–78
Block III	**Cultural Perspectives**	
Unit 7:	Manu & Kautilya मनु एवं कौटिल्य	पृष्ठ–79–89
Unit 8:	Ghandhian Thoughts **गाँधी जी के विचार**	पृष्ठ–90–132
Unit 9:	A K Saran अवध किशोर सरन	पृष्ठ–133–148

इकाई -1

निर्मल कुमार बोस

Nirmal Kumar Bose

1.1: उद्देश्य
1.2: परिचय

10.2.1: जीवनवृत्त

10.2.2: प्रभाव और योगदान

1.3: बोस के भारतीय समाज के अध्ययन का तरीका

10.3.1: सभ्यतागत दृष्टिकोण

10.3.2: शोध में इतिहास का महत्व

10.3.3: विज्ञान एवं अनुभववाद का अधिष्ठापन

10.34: पर्यवेक्षण का महत्व

10.3.5: सामाजिक उद्धार के लिए ज्ञान

1.4: भारत में जाति व्यवस्था

1.5: भारतीय संस्कृति पर बोस के विचार

10.5.1: संस्कृति क्या है

10.5.2: सांस्कृतिक परिवर्तन

10.5.3: संस्कृति का संपर्क

1.6: भारतीय सभ्यता: अनेकता में एकता

1.7: निष्कर्ष

1.8: भावी अध्ययन

1.9: सन्दर्भ

1.1: उद्देश्य **(Objective)**

इस इकाई के अध्ययन के निम्न उद्देश्य हैं:

1. एनके बोस के कार्यों और प्रसंगों को समझना
2. मानव विज्ञान पर बोस के शोधकार्यों का प्रभाव समझना
3. बोस के विचार, तरीकों और दृष्टिकोण का अध्ययन
4. भारतीय जाति व्यवस्था को लेकर एनके बोस के विचार जानना
5. संस्कृति, सांस्कृतिक परिवर्तन और सांस्कृतिक संपर्कों को समझना
6. भारतीय सभ्यता पर बोस के विश्लेषण का अध्ययन
7. एनके बोस के समग्र योगदान का अध्ययन करना

1.2: परिचय (Introduction)

भारत समृद्ध सांस्कृतिक और दस्तावेजी विरासतों वाली विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं में एक है। इस देश की खासियत भौगोलिक और पारिस्थितिक, पर्यावरणीय स्थितियों की भिन्नताएं हैं, जो भारत के सामाजिक जीवन पर समग्र प्रभाव डालती हैं। विदेशों से संपर्क–संवाद, विदेशी आक्रमणों, ब्रिटिश दासता और स्वतंत्रता आंदोलन का भारत का लंबा अतीत रहा है। कई भारतीय और विदेशी शोधकर्ताओं ने भारतीय समाज – विशेषतः ब्रिटिश शासन के बाद – के विभिन्न दृष्टिकोण से अध्ययन का प्रयास किया है। हालांकि, इससे पहले भी कई यात्रा वृत्तांतों, व्यक्तिगत कथनों और धार्मिक ग्रंथों में भारत के लोगों के सामाजिक जीवन का विवरण मिलता है, लेकिन ब्रिटिश काल में वैज्ञानिक शोधों के प्रारंभ होने के साथ भारत का परिचय मानव विज्ञान (Anthropology) से हुआ। ब्रिटिश प्रशासन ने शासन–सत्ता के लिए आंकड़ों का संग्रहण (Data Collection) करने के साथ दस्तावेजों के रखरखाव की व्यवस्था प्रारंभ की। इस तरह भारतीय समाज के मानव विज्ञान के अध्ययन की शुरुआत पश्चिमी मानव विज्ञानियों ने की। कालान्तर में भारतीय मानव विज्ञानियों ने भी शोधकार्य प्रारंभ किए। प्रारंभिक शोध करने वालों में जिनके नाम सामने आते हैं, उनमें एलकेए अय्यर, एससी रॉय, डीएन मजूमदार, जीएस घुर्ये आदि हैं। निर्मल कुमार बोस भी इन प्रारंभिक भारतीय शोधकर्ताओं में से एक हैं, जिन्होंने भारत में मानव जाति विज्ञान के अध्ययन की बुनियाद रखी। बोस उत्कंठ अध्येता, बहुआयामी लेखक, जुनूनी फील्डवर्कर और साहसी यात्री थे। बोस प्रखर राष्ट्रवादी थे, जिन्होंने कई आंदोलनों में हिस्सा लिया। वस्तुतः इन आंदोलनों के जरिये उन्हें अपने अकादमिक लक्ष्यों को हासिल करने का भी अवसर मिला। बोस के लेखन का विस्तार से समन्वेषण करने से पूर्व हम उनके जीवन और कार्य के बारे में कुछ जानकारी हासिल करेंगे।

1.2.1: जीवन परिचय (Biographical Sketch)

निर्मल कुमार बोस (1901–1972) का जन्म 22 जनवरी 1901 को बंगाल (अविभाजित) के कलकत्ता (अब कोलकाता) में हुआ था। बोस अपने माता–पिता की इकलौती संतान थे। उनके पिता डॉक्टर थे, जिनका नौकरी की वजह से लगातार तबादला होता रहता था। यही वजह है कि बोस की विद्यालयी शिक्षा बिहार, बंगाल और उड़ीसा में हुई। वर्ष 1921 में बोस ने भूगर्भशास्त्र में बीएससी कर कलकत्ता के प्रेसीडेंसी कॉलेज से स्नातक किया। इसके बाद उन्होंने प्रेसीडेंसी कॉलेज में ही एमएससी भूगर्भशास्त्र (Geology) में दाखिला लिया, लेकिन उन्हीं दिनों महात्मा गांधी के असहयोग आंदोलन से प्रभावित होकर उन्होंने कॉलेज छोड़ दिया और सक्रिय रूप से आंदोलन में उतर गए। बाद में बोस उड़ीसा चले गए। वहां मन्दिरों की

स्थापत्य कला को लेकर उनका रुझान बढ़ा और वह उड़ीसा में मंदिरों को देखने आने वाले लोगों को इनके बारे में व्याख्यानात्मक तरीके से जानकारी देने लगे। ऐसे ही एक अवसर पर कलकत्ता विश्वविद्यालय के कुलपति ने बोस को सुना तो उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके। उन्होंने बोस से मुलाकात की और उन्हें अपने विश्वविद्यालय में मानव विज्ञान विभाग से परास्नातक का अध्ययन पूर्ण करने का सुझाव दिया। बोस को यह प्रस्ताव भा गया। वर्ष 1923 में उन्होंने एक बार फिर प्रेसीडेंसी कॉलेज में एमएससी में दाखिला ले लिया, लेकिन इस बार विषय मानव विज्ञान चुना। इस दौरान बोस ने 'भारत में बसंतोत्सव' शोध प्रबंध (Thesis) लिखा, जिसके जरिये उन्होंने भारत में सांस्कृतिक विस्तार का वर्णन किया।

स्नातकोत्तर कर लेने के बाद बोस को उड़ीसा (अब ओडिशा) के 'जुआंग' जनजाति के लोगों पर अध्ययन के लिए रिसर्च फेलोशिप हासिल हुई। वर्ष 1930 तक बोस जुआंग लोगों के बीच रहे, लेकिन फिर महात्मा गांधी के नमक सत्याग्रह में शामिल होने के लिए निकल पड़े। वर्ष 1931 में बोस को ब्रिटिश पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया। जेल में रहने के दौरान बोस ने महात्मा गांधी पर अध्ययन के साथ विचार और लेखन भी किया। जेल से छूटकर बोस एक बार फिर कलकत्ता विश्वविद्यालय लौट आए। यहां वह मानव विज्ञान विभाग से जुड़ गए और बतौर असिस्टेंट लेक्चरर पुरातत्व (Archeology) का अध्यापन प्रारंभ करते हुए कई खुदाई कार्यों में हिस्सा लिया। वर्ष 1942 में महात्मा गांधी के आह्वान पर भारत छोड़ो आंदोलन प्रारंभ हुआ तो बोस एक बार फिर स्वतंत्रता आंदोलन में कूद पड़े। ब्रिटिश शासन ने फिर बोस को गिरफ्तार कर लिया। इस बार उन्हें तीन साल के लिए दमदम जेल में बंद रखा गया। हालांकि, जेल से छूटने के बाद उन्हें लेक्चररशिप दोबारा मिल गई, लेकिन वर्ष 1946 में वह महात्मा गांधी के 'नोआखाली अभियान' में शामिल हो गए। भारत की ब्रिटिश दासता से आजादी के बाद बोस वर्ष 1958 से 1972 तक दक्षिण एशिया क्षेत्र में भाषा, पुरातत्व, स्थापत्य, संस्कृति–सभ्यता आधारित मानव विज्ञान जर्नल 'मैन इन इंडिया' के सम्पादक रहे। इसके अलावा बोस 'एंथ्रोपोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया' के निदेशक (1959–1972) भी रहे। 1967 से 1972 तक बोस ने एससी–एसटी कमिश्नर का पद भी संभाला। मानव विज्ञान के क्षेत्र में उत्कृष्ट कार्य पर बोस को बंगाल की एशियाटिक सोसायटी की ओर से वर्ष 1948 में एननडेल गोल्ड मेडल से नवाजा गया। वर्ष 1966 में भारत सरकार ने उन्हें पद्मश्री से सम्मानित किया।

1.2.2: बोस का योगदान–प्रभाव (Influence and Contribution of Bose)

यहां हमें यह समझना आवश्यक है कि बोस ने किन तत्कालीन परिस्थितियों में लेखन कार्य प्रारंभ किया। बोस ने जब अपना शोध, लेखन शुरू किया, उस दौर में भारत ब्रिटिश उपनिवेश था और देशभर में स्वतंत्रता को लेकर व्यग्र उत्कंठा थी। बोस उस बंगाल में पले–बढ़े, जो ब्रिटिश दासता से आजादी हासिल करने के लिए एक के बाद एक कई आंदोलनों का गवाह बन रहा था, इसके साथ ही वहां सामाजिक सुधारों को लेकर भी आंदोलन तेज हो रहे थे। बोस ने उस वक्त स्नातक किया, जब महात्मा गांधी के नेतृत्व में भारतीय स्वतंत्रता का संघर्ष चरम पर था। उन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय रूप से भाग लिया, जिसने उनके कार्यों को अलग पहचान दिलाई। 19वीं–20वीं शताब्दी में बोस की तरह ही अधिकतर भारतीय शोधकर्ता, लेखक भारत की सांस्कृतिक विभिन्नताओं के बावजूद राष्ट्रीय एकता, समग्रता और अखंडता को लेकर गंभीर थे। वह दौर स्वतंत्रता संघर्ष और स्वतंत्रता के बाद नये राष्ट्रवाद के उदय का था। ऐसे में आजादी के बाद यह आवश्यक था कि भाषा, धर्म, जाति, परंपरा, रीति–रिवाज और विरासती पहचानों की

विभिन्नताओं के बावजूद उन तत्वों को तलाशा जाए जो भारत के अलग–अलग क्षेत्रों, संस्कृतियों को एकसूत्र में बांधते हों और इनके जरिये भारत को समग्र रूप से एक बनाएं।

अकादमिक तौर पर देखें तो बोस के दौर में भारत में मानव विज्ञान अध्ययन–अध्यापन की स्थापित शाखा नहीं थी। बोस भारत के शुरुआती दौर के मानव विज्ञानियों राधाकमल मुखर्जी, जीएस घुर्ये, डीपी ुखर्जी और अन्य में एक थे। इन भारतीय विज्ञानियों के शोध–अध्ययन की शुरुआत करने तक ब्रिटिश विशेषज्ञ ही प्रशासनिक आवश्यकताओं के लिए भारतीय जनसमूहों से संबंधित जानकारियां एकत्र कर रहे थे। यहां यह तथ्य उल्लेखनीय है कि ब्रिटिश विशेषज्ञों की ओर से किए जाने वाले शोधकार्यों और फील्डवर्क का मुख्य उद्देश्य ब्रिटिश उपनिवेश को मजबूत करने का ही था। चौधरी (2007) ने बोस को ऐसे वास्तविक भारतीय विचारक और स्वदेशी मानवविज्ञानी बताया है, जिन्होंने सिर्फ औपनिवेशिक उद्देश्यों से भारतीय समाज के अध्ययन पर सवाल खड़े किए।पश्चिमी तौर तरीकों से मानव विज्ञान के अध्ययन का प्रशिक्षण लेने के बावजूद बोस ने भारतीय सभ्यता के अध्ययन को लेकर अपना खुद का तरीका विकसित किया। बोस ने कला, मंदिर स्थापत्य, पुरातत्व, भौगोलिक–भूगर्भीय, जाति व्यवस्था, जनजाति यानी हर पहलू पर भारतीय सभ्यता के विकास को लेकर लेखन किया। इसके अलावा गांधी के विचारों पर उनका लेखन भी महत्वपूर्ण है। बोस ने बंगाली और अंग्रेजी, दोनों भाषाओं को अपने लेखन का माध्यम बनाया।उनका लेखन सिर्फ किताबों, निबंध, शोधप्रबंध, रिपोर्ट, आर्टिकल के रूप में ही उपलब्ध नहीं है, बल्कि उन्होंने आत्मकथात्मक चित्रण (Autobiographical sketch), उपाख्यान (Ancedotes), यात्रा वृत्तांत (Travelogues) और कथनात्मक (Narrative) लेखन भी किया है। उन्होंने कल्चर एंड सोसायटी इन इंडिया (1967), कल्चरल एंथ्रोपोलॉजी (1961), पीजेंट लाइफ इन इंडियाः ए स्टडी इन इंडियन यूनिटी एंड डायवर्सिटी (1961), द

Box 1.1: The Lifestyle of N. K. Bose

बोस बेहद कम निजी जरूरतों वाले व्यक्ति थे। साधारण जीवन और उच्च विचार उनके जीवन का लक्ष्य था। उनके जीवन को साधारणतम बनाए रखने के लिए अन्वेषणों का प्रमाण उनकी वेशभूषा थी, जिसे वह खुद डिजाइन करते थे। वह ऐसे कपड़े पहना करते थे, जिनमें कई जेब हों। उनकी हर जेब का खास उपयोग होता था, जिनमें वह मग, सीटी, टूथब्रश और टार्च से लेकर तमाम दैनन्दिन उपयोग की वस्तुएं रखा करते थे। इससे टैगोर की आविष्कारशीलता और गांधी का सूक्ष्मवाद स्पष्ट परिलक्षित होता था। **–भट्टाचार्य, प्रो. एनके बोसः माय टीचर**

स्ट्रक्चर ऑफ हिन्दू सोसायटी (1961) समेत कई किताबें लिखीं। मैन इन इंडिया, द कलकत्ता रिव्यू, साइंस एंड कल्चर, कलकत्ता ज्योग्राफिकल रिव्यू जैसे जर्नलों में उनके कई लेख प्रकाशित हुए। देश के विभिन्न क्षेत्रों में भ्रमण के विवरण पर आधारित

उनकी व्यक्तिगत डायरी 'परिव्रजाकर डायरी' (एक यात्री की डायरी) यात्रा वृत्तांतों का एक अहम प्रामाणिक दस्तावेज है।प्रारंभ में बोस फ्रेंज बोआ और एल्फ्रेड क्रोबर के विभिन्नताओं के सिद्धांत और पार सांस्कृतिक विश्लेषण से प्रभावित थे। अपने पहले शोधप्रबंध भारत में बसंतोत्सव में उन्होंने इसी विभिन्नताओं के सिद्धांत को ध्यान में रखकर काम किया, जिसमें उन्होंने समान सांस्कृतिक विशेषताओं वाले भौगोलिक क्षेत्रों पर अध्ययन करते हुए विस्तार के केंद्र का विश्लेषण किया। इसी तरह एंथ्रोपोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया के

निदेशक पद पर रहते हुए मैटीरियल कल्चर ट्रेट सर्वे (MCTS) के जरिये उन्होंने भारत का सांस्कृतिक नक्शा तैयार किया। इसके माध्यम से उन्होंने ग्रामीण क्षेत्रों की भाषाई, पारंपरिक समानताओं के आधार पर देश के सांस्कृतिक क्षेत्रों (Cultural Zones) का निर्धारण और पहचान की। इस अध्ययन ने बोस को भारत की विभिन्न मिट्टी के बर्तन निर्माण, धातुशिल्प, हथकरघा, मंदिर–मठ स्थापत्य जैसी हस्तशिल्प तकनीकों, ग्रामीण परिवेश, जनजातीय परंपराओं के वृहद् विश्लेषण का अवसर प्रदान किया। बोस बोआ के शोध के अधिष्ठापन के सिद्धांत और वैज्ञानिक प्रमाणों के बिना शोध के व्यापकीकरण की आलोचना के दृष्टिकोण से प्रभावित थे। यही वजह है कि बोस के इन अध्ययनों का लक्ष्य भारत की विभिन्नताओं को समझने–जानने के लिए प्रचुर मात्रा में साक्ष्य और आंकड़ों का एकत्रीकरण था। बोस मैलिनोव्स्की के कार्यपरक दृष्टिकोण से भी प्रभावित थे। उन्होंने 'सोल ऑफ कल्चर' (Soul of Culture) सिद्धांत का उपयोग अपनी पुस्तक कल्चरल एंथ्रोपोलॉजी (1961) में किया। हालांकि, उन्होंने कार्यपरक सिद्धांत के उस अनैतिहासिक (Ahistorical) दृष्टिकोण को नकार दिया, जो सभ्यता–संस्कृति के विकास में इतिहास के योगदान को महत्वपूर्ण नहीं मानता है।

बोस जिस व्यक्ति के कार्यों से सर्वाधिक प्रभावित हुए, वह थे महात्मा गांधी। गांधी का बोस के व्यक्तिगत जीवन से लेकर अकादमिक उपलब्धियों तक गहरा असर था। बोस महात्मा गांधी के नजदीकी लोगों में शामिल थे और नोआखाली अभियान के दौरान वह गांधी के निजी सचिव भी रहे। महात्मा गांधी के निधन तक बोस का उनके साथ लंबा संबंध–संपर्क बना रहा। बोस ने खुद को गांधी के विचारों के अध्ययन और उनकी स्थापना के लिए समर्पित कर दिया था। बोस ने गांधी और उनके दर्शन पर अपनी पुस्तकों सेलेक्शन्स ऑफ गांधी (1934), स्टडीज ऑन गांधीज्म (1940), माय डेज विद गांधी (1953) और महात्मा गांधी एंड वन वर्ल्ड (1966) में समग्र–व्यापक लेखन किया है।

1.3: बोस के अध्ययन का तरीका (Bose's approach to study Indian Society)

1.3.1: सभ्यतागत दृष्टिकोण (Civilizational Approach)

भारत अपनी विभिन्नताओं और समृद्ध सांस्कृतिक विरासतों के लिए जाना जाता रहा है। यह दुनिया की प्राचीन सभ्यताओं में से एक है। लिखित परंपराओं की विस्तृत श्रृंखला के साथ यहां जनजातियां, आदिवासी, ग्रामीण और शहरी समुदाय एकसाथ रहते हैं। एनके बोस, सुरजीत सिन्हा और बर्नार्ड कॉन ने भारतीय समाज और सामाजिक ढांचे को समझने के लिए भारत की इस समृद्ध और विभिन्नताओं वाली विरासत को ही आधार बनाया है। इसीलिए इस परिप्रेक्ष्य को ही सभ्यतागत दृष्टिकोण से परिभाषित किया गया। इसके तहत गांव, जाति, जनजाति जैसे भारतीय समाज के विभिन्न तत्वों पर विचार किया जाता है। इस तरह सभी समूह और समुदाय सभ्यता के अभिन्न अंग के तौर पर देखा–समझा जाता है। यह दृष्टिकोण सभ्यता के विभिन्न पहलुओं के अंतरसंबंध, ऐतिहासिक स्थिति, परिवर्तन (Change/ Transformation) को भी सामने रखता है। इस प्रकार, अनेकता में एकता (Unity in Diversity) विश्लेषण का मुख्य फोकस बन जाता है। (नागला 2013)

1.3.2: शोध में इतिहास की भूमिका (Role of History in Research)

इतिहास और परिवर्तन एनके बोस के मानव विज्ञान अध्ययन के दो मुख्य अवयव रहे। बोस के विश्लेषण–शोध में इतिहास की अहम भूमिका रही। भारतीय समाज के अध्ययन में इतिहास ने बोस को न सिर्फ अतीत में झांकने का अवसर प्रदान किया, बल्कि विषयाध्ययन की कार्यशैली तय करने में भी मदद की। हालांकि, जिस इतिहास के जरिये बोस ने अपना अध्ययन आगे बढ़ाया, वह सांख्यिक नहीं बल्कि परिवर्तनशील रहा। इसके जरिये बोस ने भारतीय समाज के निश्चित संरचना में रहते हुए समय के साथ खुद को विकसित करने के तरीकों को अभिलिखित किया। इस प्रकार सामाजिक ढांचे को लेकर निश्चित समयावधि में अभिलेखीय परिवर्तन आता है। उदाहरण के लिए, बंगाल में जाति व्यवस्था के अध्ययन के दौरान उन्होंने पाया कि उपनिवेशकाल से पहले जाति व्यवस्था के कारण बंगाल में जो सामाजिक संरचना थी, वह ब्रिटिश आगमन के बाद धीरे–धीरे नष्ट होने लगी थी। (बोस 1961)

1.3.3: विज्ञान, अनुभव और अधिष्ठापन (Science, Empiricism & Inductive Method)

बीसवीं सदी में मेलिनोव्स्की, रेडक्लिफ ब्राउन जैसे अधिकतर मानवविज्ञानियों का मानना था कि मानव जाति का अध्ययन विज्ञान है। यही वजह थी कि वे निरीक्षण, आंकड़ों के संग्रहण, वर्गीकरण, कूटबद्धिकरण, पुष्टि, सत्यापन के जरिये उद्देश्यों के सुरक्षित अनुमान स्थापित करने की वैज्ञानिक प्रक्रिया को इस तरह के अध्ययन के लिए आवश्यक मानते थे। बोस भी अध्ययन के लिए वैज्ञानिक दृष्टिकोण को उपयुक्त मानते थे, किन्तु वह अनुभववाद के जरिये अधिष्ठापन को भी अध्ययन का हिस्सा बनाने वाले मानवविज्ञानी थे। अधिष्ठापन का अर्थ उस दृष्टिकोण से है जो आंकड़ों के संग्रहण से प्रारंभ होता है और फिर सिद्धांत के प्रतिपादन तक पहुंचता है। यह निगमन (Deductive) विश्लेषण के उस तरीके से उलट है, जिसमें पहले किसी सिद्धांत की परिकल्पना की जाती है और फिर शोध के जरिये इसे सिद्ध किया जाता है। अधिष्ठापन के तरीके में सिद्धांत शोध के बाद आता है। इस पूरी प्रक्रिया में प्रचुर मात्रा में आंकड़े जुटाए जाते हैं, वर्गीकृत किए जाते हैं इसके बाद पैटर्न और नियमों के जरिये इनका परीक्षण किया जाता है जो सिद्धांत के प्रतिपादन में सहायता करता है। बोस की यह विधि बोआस के समान थी जो अधिष्ठापन के तरीके पर दृढ़ थे। वस्तुतः बोस बोआस और उनके दृष्टिकोण से बहुत प्रभावित थे।

1.3.4: पर्यवेक्षण का महत्व (Importance of Observation)

चक्रवर्ती (2002) ने बोस की व्यक्तिगत डायरी परिव्राजकर नोट्स के अध्ययन से पाया कि बोस एक उत्सुक प्रेक्षक और समालोचक थे। चक्रवर्ती ने डायरी में उनके फील्डवर्क की विस्तृत जानकारी का अध्ययन किया। वह एक उदाहरण देते हैं, जिसमें बोस ने प्रागैतिहासिक मनुष्य और उसके कौशल का वर्णन किया है। उस काल में यह माना जाता था कि आदिम मनुष्य सभ्यताहीन (Uncivilized), निम्न और अविकसित था। बोस ने प्रागैतिहासिक और आज के मानव समुदाय के शिल्पकौशल का तुलनात्मक अध्ययन कर इस धारणा पर सवाल खड़ा किया। बोस ने अपने अध्ययन में वनों में रहने वाले लोगों की उत्कृष्टता और शक्ति के उन बिंदुओं को स्थापित करने पर जोर दिया, जिनके बूते वे बेहद सीमित संसाधनों और विषम परिस्थितियों के बावजूद जीवन को संभव बना पाने में सक्षम रहे। बोस ने अपने शिक्षक से दूसरे व्यक्ति के दृष्टिकोण को साथ रखते हुए अपने पर्यवेक्षण करने की सीख पाई थी। इसी तरह उन्होंने अपने छात्रों को भी स्वतंत्र विचार करने के लिए हमेशा प्रेरित किया। यही वजह थी कि बोस अपने छात्रों को वह विषय बताते थे, जिस पर अध्ययन किया जाना है और इसके लिए उन्हें फील्ड में भी भेजा जाता था, लेकिन उन्हें इस तरह

प्रशिक्षित किया गया कि वे स्वतंत्र अध्ययन कर सकें। बोस मानते थे कि पर्यवेक्षण मानव विज्ञान अध्ययन का महत्वपूर्ण साधन है। इसी कारण बोस अपने छात्रों को शोध के प्रचलित तरीके यानी पहले से तैयार प्रश्नावली और कार्यानुक्रम (Schedule) के बिना फील्ड में भेजते थे, ताकि वे अपने नजरिये से आकलन कर सकें। इस तरह उनके छात्र पूर्वकल्पित विचारों के बजाय फील्डवर्क के दौरान सामने आने वाली चुनौतियों से स्वयं व्यावहारिक तौर पर अध्ययन करने में सक्षम बने (भट्टाचार्य 2002)।

1.3.5: सामाजिक उद्धार के लिए ज्ञान (Knowledge for Social Emancipation)

बोस के लिए शोधकार्य सिर्फ ज्ञान हासिल करने का माध्यम नहीं था, बल्कि इसे वह सामाजिक और राजनीतिक उद्धार का जरिया मानते थे। यही वजह है कि अपने एकेडमिक कॅरियर को दांव पर लगाकर भी उन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन में उतरने की जरूरत महसूस की। वह मानते थे कि ज्ञान का उपयोग समाज के कल्याण और बेहतरी में होना चाहिए। उड़ीसा में जुआंग जनजाति पर शोध के दौरान वहां रहते हुए बोस ने किसी समुदाय पर संकट के दौरान शोधकर्ता की भूमिका पर गहराई से विचार किया। इसकी वजह यह थी कि तत्कालीन जुआंग समुदाय कुपोषण का शिकार था और मलेरिया बड़ी तेजी से फैल रहा था, लेकिन बोस चाहकर भी तब उनकी मदद नहीं कर पा रहे थे (op. cit. Bose 2007)

Box 1.2: Science and Politics of N. K. Bose

"वैज्ञानिक शोध मेरी वास्तविक वृत्ति (स्वधर्म) रहा। पूर्ण विवेक के साथ राजनीतिक अभियानों से जुड़ना मेरे लिए मात्र आकस्मिक कर्तव्य (अपधर्म) का पालन ही था।"

–निर्मल कुमार बोस, माय डेज विद गांधी (1974:67)

1.4: भारत में जाति व्यवस्था (Caste System in India)

जाति व्यवस्था भारतीय समाज का एक महत्वपूर्ण पहलू है, जो भारतीय समाज को सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और अन्य दूसरे आयामों से अभिन्न रूप से संबद्ध है। अधिकतर शोधकर्ताओं ने भारतीय जाति व्यवस्था का अध्ययन अलग–अलग तरीके से अपनी सुविधानुरूप किया है, लेकिन बोस ने भारतीय जाति व्यवस्था पर जो अध्ययन किया, वह न सिर्फ विभिन्न जातियों की संस्कृति और जीवनशैली को सामने लाता है, बल्कि इनमें समय के साथ आए परिवर्तनों और जनजाति समुदायों के अंतरसंबंधों को भी प्रकट करता है। बोस के अनुसार वर्तमान में जाति व्यवस्था अतीत के अवशेष मात्र हैं। प्रारंभिक दौर में इस व्यवस्था का लक्ष्य सेवा के विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति था। यह सामाजिक परस्पर निर्भरता और एकता की ऐसी व्यवस्था थी जो लोगों के पारस्परिक संबंधों के साथ मानव और समाज के संबंधों का अहम सूत्र थी। जाति व्यवस्था का अर्थ ऐसे सामाजिक संगठन से था, जिसमें उत्पादन और वितरण जैसी आर्थिक गतिविधियां अलग–अलग जातियों के बीच वितरित, स्थापित थीं। भारतीय जाति व्यवस्था में व्यक्ति के व्यवसाय का निर्धारण जन्म (वंशानुगत) से था और सदस्यों के लिए विभिन्न दायित्वों का निर्वहन करना कर्तव्य था। बोस ने अपने अध्ययन में यह पाया कि, जाति व्यवस्था ग्रामीण समुदाय में किसी जाति के सदस्यों को गैरप्रतिद्वंद्वी, आत्मनिर्भर और सुनिश्चित रोजगार की उपलब्धता के माध्यम से आर्थिक और सांस्कृतिक सुरक्षा प्रदान करने का जरिया थी। इसके अतिरिक्त जाति व्यवस्था विभिन्न सांस्कृतिक व्यवसायों को अपनाने की स्वतंत्रता प्रदान करती थी। बोस यह भी

मानते हैं कि दृढ़ और श्रेणीबद्ध जाति व्यवस्था किसी व्यक्ति को यह स्वतंत्रता भी प्रदान करती थी कि वह संन्यास (Asceticism) से जुड़ सके। यह स्वतंत्रता उस स्थिति में किसी 'सेफ्टी वाल्व' की तरह काम करती थी, जब कोई व्यक्ति स्वयं को व्यवस्था के अंतर्गत खुद को दबाव में या अनुपयुक्त पाता था (सरस्वती 2002, बोस 2007)। फिर भी ब्रिटिश शासन के आगमन के साथ जाति व्यवस्था नये आर्थिक दौर के साथ धीरे–धीरे नष्ट होती गई। बोस मानते हैं कि जाति व्यवस्था देश की आर्थिक विभिन्नताओं के कारण पारंपरिक–शास्त्रीय वर्ण व्यवस्था पर पूरी तरह खरी नहीं उतर सकी, लेकिन उन्होंने अपने अध्ययन में जाति व्यवस्था के उन लाभकारी पहलुओं को ग्रहीत करने का पूरा प्रयास किया है जो आज भी उपयोगी हैं। (*ibid.*)

सभ्यतागत दृष्टिकोण पर शोध करते हुए बोस ने जाति व्यवस्था को भारतीय समाज, संस्कृति और सभ्यता का अभिन्न अंग माना। उन्होंने जाति को सामाजिक एकजुटता का जरिया मानते हुए इसे विभिन्नताओं वाले देश में एकता और एकीकरण का माध्यम माना। बोस के अनुसार जाति व्यवस्था के कारण हिन्दुत्व सांस्कृतिक महासंघ (Federation of Cultures) बन गया। इससे यह विभिन्न जातियों के बीच जीवनशैली, भोजन, वेश आदि के आधार पर विभिन्नताओं और अंतरों वाले सांस्कृतिक व्यवसायों का जरिया भी है। दूसरी ओर, अंबेडकर ने जाति व्यवस्था को निम्नतर व्यवस्था के रूप में प्रस्तुत किया है, जो अलग–अलग जाति के सदस्यों की भूमिकाओं, सामाजिक स्थिति, अधिकार और दायित्वों का निर्धारण कर श्रेणीबद्ध असमानता (Graded Inequality) का निर्माण करती है। अंबेडकर के अनुसार यह श्रेणीबद्ध व्यवस्था समाज के एक वर्ग (उच्च वर्ण) को विशेषाधिकार (Privileges) प्रदान करती है, वहीं अन्य वर्गों (निम्न वर्ण और अस्पृश्य) के उत्पीड़न का माध्यम बनती है। जबकि बोस के अनुसार जाति वयवस्था उत्पीड़क–शोषक नहीं है, बल्कि यह आर्थिक व्यवस्था और सांस्कृतिक तत्व है।

1.5: भारतीय संस्कृति पर बोस के विचार (Bose on Culture in India)

10.5.1: संस्कृति क्या है: बोस (1961) मानते थे कि संस्कृति मानव समुदाय की जीवनप्रद आवश्यकताओं की संतुष्टि से संबंधित है। संस्कृति मनुष्य की जैविक जरूरतों की पूर्ति पर संतुष्टि का सिद्ध माध्यम है। पशुओं से इतर मनुष्यों के भाषा वह साधन है जो क्षमताओं के उपयोग और दूसरे मनुष्यों से सीखने का जरिया है। यह न सिर्फ सांस्कृतिक गतिविधियों को स्थिरता और संस्थापन प्रदान करती है, बल्कि इन्हें एक से दूसरी पीढ़ी तक स्थानांतरित करने का भी माध्यम बनती है। भोजनशैली, जीवनशैली, रीति–रिवाज, विश्वास, वेशभूषा संस्कृति के वे पहलू हैं जो परस्पर संबद्ध हैं। इससे इनमें से किसी एक में भी परिवर्तन दूसरे पहलू में परिवर्तन का कारण बन जाता है। इस प्रकार संस्कृति एकीकृत है और इसे इसके घटकों में विभाजित नहीं किया जा सकता है, हालांकि बोस ने वैज्ञानिक विश्लेषण की सुविधा के लिए इन्हें अलग करके देखा है। चूंकि बोस मानते हैं कि संस्कृति मानवजीवन की आवश्यकताओं से जुड़ी है, उन्होंने हिन्दू धर्मग्रंथों में वर्णित मानवजीवन लक्ष्यों– अर्थ (आर्थिक इच्छाएं), काम (दैहिक इच्छाएं) और मोक्ष (आध्यात्मिक इच्छाएं) में संस्कृति को बांटकर शोध किया है। बोस बताते हैं कि इन तीन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मनुष्य पारंपरिक तरीकों के अनुरूप कार्य–व्यवहार करता है, जिसे

आचार कहा जाता है। आचार की चार अवस्थाएं, वस्तु (पदार्थ), क्रिया (गतिविधि), संहति (सामाजिक संस्था) और तत्व (व्यक्तिगत विश्वासों पर आधारित विचारसार) हैं। बोस किसी व्यक्ति के पारिवारिक जीवन के उदाहरण से इसे समझाते हैं, जिसके माध्यम से वह आचार के घटक वस्तु, संहति और तत्व के जरिये अर्थ और काम की संतुष्टि प्रदान करता है। (बोस 1961:10–21)

1.5.2: सांस्कृतिक परिवर्तनः बोस भारतीय सभ्यता का यूरोपीयन सभ्यता से तुलनात्मक अध्ययन करते हैं। बोस बताते हैं कि पूंजीवाद और व्यक्तिवाद के हावी होने से यूरोप की सभ्यतागत भावना पर गहरा असर हुआ है। यूरोपीय सभ्यता व्यक्तिवादी और प्रतिस्पर्द्धी है जो वहां की कला, स्थापत्य और खेलों से दृष्टिगोचर होता है। दूसरी ओर, प्राचीन काल से भारतीय सभ्यता जाति व्यवस्था से संबद्ध रही है, जो सामाजिक एकता और परस्पर संबंधों, निर्भरता पर आधारित है। बोस बताते हैं कि जाति व्यवस्था ने भारत में प्रतिद्वंद्विता और व्यक्तिवाद को बढ़ावा देने के बजाय एकता और सामूहिकता को पोषित किया। इससे आचार और व्यवहार की आंतरिक व्यवस्था ने भारतीय सभ्यता को विशिष्ट सांस्कृतिक स्वरूप प्रदान किया है। ये विश्वास और विचार संस्कृति के मूल की स्थापना करते हैं, जिनमें समय और अनुभव के साथ परिवर्तन होता है, जिन्हें संस्कृति की आत्मा माना जाता है। (pp.35)

बेस मानते हैं कि संस्कृति स्थिर नहीं है, यह संस्कृति की वर्तमान भूमिका से बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति और संपूर्ण संतुष्टि नहीं हो पाने की स्थिति में समय और जरूरतों के हिसाब से परिवर्तनशील है। संस्कृति का अनुसरण करने वाले लोग जरूरतों और संकटकाल के हिसाब से रचनात्मकता के माध्यम से इसमें परिवर्तन करते जाते हैं। इस प्रकार जीवन और संस्कृति के बीच निरंतर परस्पर क्रियात्मक संबंध बना रहता है। दुर्खेम (1982), क्रोबर और कुछ मार्क्सिस्ट कम्युनिस्ट विचारकों के संस्कृति को 'सुपर ऑर्गेनिक' मानने के विचार से बोस सहमत नहीं होते। यहां सुपर ऑर्गेनिक का अर्थ ऐसी व्यवस्था से है जो व्यक्ति से ऊपर हो और उस पर बलपूर्वक प्रभाव डालती हो। इसके कारण व्यक्ति संस्कृति के लिए गौण और अधीन बन जाता है। दुर्खेम मानते हैं कि भारत में जाति व्यवस्था और धार्मिक रीतियां व्यक्ति को बाधित करती हैं, और इनका असर इतना व्यापक है कि इन्हें स्थापित करने में व्यक्ति का भी कोई मूल्य नहीं समझा जाता है। यहां तक कि व्यक्ति खुद भी समझौता कर इन्हें स्वीकार कर लेता है। दूसरी ओर, बोस (1961) बताते हैं कि संस्कृति परिवर्तन के लिए उत्तरदायी है, क्योंकि व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संस्कृति को अनुसरित करता है। व्यक्ति को संस्कृति बाधक नहीं बनाती है, बल्कि सांस्कृतिक परिवेश में सक्रिय और महत्वपूर्ण भूमिका निर्वहन करने का अवसर प्रदान करती है। यह मानव जीवन और संस्कृति का परस्पर संबंध है जो संस्कृति को संतुलन (Equilibrium) की स्थिति में रखता है। यद्यपि यह संभव है कि रूढ़ियों के चलते परिवर्तन के उदाहरण कम मिलें।

1.5.3: संस्कृतियों का संपर्क (Contact of Cultures): अपनी प्रख्यात पुस्तक 'कल्चरल एंथ्रोपोलॉजी' (Cultural Anthropology, 1961) में बोस ने मानव और संस्कृति के संबंधों की व्याख्या करने के साथ इस पर भी प्रकाश डाला है कि जैविक आवश्यकताओं के अनुरूप किस तरह सांस्कृतिक परिवर्तन

होता है। बोस दो बिंदुओं पर फोकस करते हैं, पहला– कोई सांस्कृतिक विषय/वस्तु (Cultural Object) किस तरह एक समुदाय से दूसरे समुदाय तक हस्तांतरित होता है। दूसरा– दो संस्कृतियों का परस्पर संपर्क किस तरह दोनों संस्कृतियों के आंतरिक स्वरूप में परिवर्तन को प्रेरित करता है, इसके जरिये बोस यह भी अध्ययन करते हैं कि ये परिवर्तन सामान्य और व्यापक (Generalised) होते हैं या नहीं।

बोस स्पष्ट करते हैं कि यदि आर्थिक और सामाजिक रूप से कोई संस्कृति सफल है तो उसके स्वरूप में बदलाव नहीं होते, लेकिन यदि यह किन्हीं कारणों से नाकाम रहती है (विशेषतः आर्थिक पहलू के लिहाज से) तो लोग पलायन करते हैं। यह पलायन समान वातावरण, परिस्थितियों वाले भूक्षेत्र की ओर जाने के रूप में भी हो सकता है और कुछ ऐसी नयी व्यवस्थाओं को अपनाने से भी, जो समाज की आर्थिक स्थिति को नुकसान से रोकें। उदाहरण के लिए बोस बताते हैं कि जन्म नियंत्रण (Birth Control) के जरिये जनसंख्या को संतुलित कर खाद्य श्रृंखला और जीवन मानकों को स्तरीय बनाए रखने का प्रयास किया जाता है। इस प्रकार लोगों की स्थापित रीतियों में परिवर्तन से भी बचा जाता है। भारतीय इतिहास से सांस्कृतिक संघर्ष के कुछ उदाहरणों के जरिये बोस सांस्कृतिक परिवर्तन की वजह रही मानसिक परिस्थितियों का मूल्यांकन करते हैं। इसके अलावा वह उन कारकों पर भी प्रकाश डालते हैं जो विशेषताओं के चयन और मानव के जैविक स्वरूप को व्याख्यायित करते हैं। बोस ने इन्हें मानव जाति विज्ञान की सांस्कृतिक समस्याएं बताया है।

(1) उड़ीसा की स्थिति (The Case of Orissa)

(i) हिन्दू उड़ीसाः दसवीं से 13वीं सदी तक उड़ीसा स्वतंत्र और समृद्ध राज्य था। उस काल के राजाओं की मंदिरों के निर्माण में विशेष रुचि थी, जिसने स्थापत्य, हस्तशिल्प, चित्रकारी आदि के माध्यम से लोगों के लिए रोजगार के अवसर उपलब्ध कराए। वे विद्वत ब्राह्मणों का सम्मान करते थे और उन्हें दानस्वरूप जमीनें देते थे। किन्तु विभिन्न आक्रमणों के दौरान हुई लूटपाट में उड़ीसा की समृद्धि नष्ट होती गई और राजाओं से संबद्ध कलाकार रोजगार के अवसर समाप्त होने से निर्धन होते गए। इसका सीधा असर उड़ीसा की संस्कृति को कला और ज्ञान के नष्ट होने का बड़ा नुकसान हुआ। आर्थिक रूप से सामने आए इस अभाव ने उड़ीसा की संस्कृति के कुछ विशेष लक्षणों को समाप्त कर दिया, आर्थिक व्यवस्थाओं को अस्त–व्यस्त कर दिया और जाति व्यवस्था के स्वरूप में भी परिवर्तन किया (पहले यह अनुवांशिक था)। उदाहरण के तौर पर बोस बताते हैं कि खंडेत, जो पहले सैनिक हुआ करते थे, बाद में किसान बन गए।

(ii) जुआंग जनजातिः हिन्दू धर्म से परिचय से पूर्व जुआंग जनजाति की आजीविका का साधन शिकार और स्थानांतरण कृषि थे। ब्रिटिश उपनिवेश की स्थापना के बाद जंगलों को संरक्षित किया गया तो ये दोनों साधन लुप्त होने लगे। इस दौरान अकाल का सामना करने के बाद जुआंग जनजाति को हिन्दुओं की तरह खेती के परिष्कृत स्वरूप को अपनाना और हल जैसे उपकरणों का उपयोग सीखना पड़ा। लेकिन, इसमें असफल रहने पर उन्होंने टोकरियां बुनना, अन्य लोगों के लिए जंगल से ईंधन (लकड़ी) की आपूर्ति करने का काम प्रारंभ किया, यह कार्य मुख्यतः जुआंग महिलाएं करती थीं। इससे होने वाली आय से वे नमक,

कपड़े, शराब आदि खरीदा करते थे। इस तरह वे हिन्दू आर्थिक व्यवस्था से गहरे जुड़ते चले गए और धीरे–धीरे हिन्दू समाज की एक नयी जाति के तौर पर सामने आए। जुआंग लोग अपने जनजातीय पारंपरिक त्योहारों के अलावा हिन्दुओं की तरह लक्ष्मी, धर्म जैसे हिन्दू देवी–देवताओं का पूजन करते हैं। इसके अतिरिक्त सांस्कृतिक परिवर्तन के फलस्वरूप उनकी भाषा में भी काफी अंतर आया।

इसी तरह का असर छोटा नागपुर के मुंडा समुदाय में भी नजर आता है। हिन्दुओं और मुंडा समुदाय के लोगों के मतभेदों के दौरान मुंडा लोग ईसाई मिशनरीज के संपर्क में आए, जिसके कारण मुंडा जनजाति के अधिकतर लोग धर्मांतरित हो गए, जिसका असर उनकी पुरातन सांस्कृतिक रीतियों में बदलाव के तौर पर सामने आया। उन्होंने टेलरिंग, जालियां बुनने, बढ़ई आदि का व्यवसाय करना प्रारंभ कर दिया। लेकिन, उड़ीसा में आर्थिक परिवर्तन उतना गहरा नहीं रहा, जितना मुंडा और जुआंग जनजातियों में सामने आया। पारंपरिक व्यवसायों में नुकसान होने पर लोगों ने अपने ही स्थानों पर रहते हुए दूसरे व्यवसायों को अपनाना शुरू किया, लेकिन इस पूरी प्रक्रिया में धार्मिक विश्वासों और सामाजिक परंपराओं पर अधिक प्रभाव नहीं हुआ। दूसरी ओर, जुआंग जैसी पर्वतीय जनजातियों के मामले में आर्थिक तौर पर मजबूत दूसरी संस्कृतियों ने उन्हें जीवन (Survival) के लिए उत्पादन में नाकाम अपनी पुरानी व्यवस्था को छोड़कर नये सक्षम रिवाजों को अपनाना पड़ा। बोस बताते हैं कि मुंडा और जुआंग जनजातियों की संस्कृति के नष्ट होने के पीछे एक बड़ा कारण दोनों जनजातियों के लोगों में अपनी परंपराओं को लेकर गर्व का अभाव रहा। वह कहते हैं कि सांस्कृतिक संपर्क की प्रक्रिया में दूसरी संस्कृति में विलय होने वाली संस्कृति के लोगों में यदि गर्व की अनुभूति रहती है तो निश्चित रूप से परिवर्तन का परिणाम भी अलग हो जाता है।

(2) बंगाल (The Case of Bengal)

बोस बंगाल के इतिहास के उदाहरण भी अपनी पुस्तक में रखते हैं। इसके तहत वह एक पुरातन संस्कृति की आर्थिक असफलता के फलस्वरूप नयी आर्थिक व्यवस्था की घुसपैठ, दूसरी संस्कृति की उपस्थिति और अपनी पुरातन रीतियों को छोड़ने वाले समाज में आत्मसम्मान और गर्वानुभूति में कमी का वर्णन करते हैं। ब्रिटिश उपनिवेशवाद के आगमन और पूंजीवाद की स्थापना के साथ बंगाल में आर्थिक तौर पर संकट सामने आया, जिसने जाति व्यवस्था के स्वरूप में बड़ा बदलाव किया। बोस बताते हैं कि इसकी शुरुआत तत्कालीन सभी भारतीय वर्गों में ब्रिटिश सभ्यता से खुद को कमतर (Inferior) मानने से हुई। इसके कारण तत्कालीन बंगाली समाज में ईसाई प्रभाव बढ़ता गया। इस हीनभावना के चलते जहां एक ओर भारतीयों में यूरोपियन लोगों के प्रति मातहती, चापलूसी का भाव बढ़ा वहीं दूसरी ओर द्वेष और घृणा भी विकसित होती गई। बोस इसे अधीन लोगों में विजेताओं के प्रति पनपने वाली भावना बताते हैं।

बोस तर्क देते हैं कि किसी जनजाति या समुदाय के विदेशी सभ्यता के तत्वों को अपनाने के पीछे जो कारण होते हैं, उनमें या तो आत्मसम्मान का पूर्ण अभाव अथवा आत्मसमर्पण (जैसा कि मुंडा और जुआंग जनजातियों में रहा) का भाव होता है या फिर यह भी हो सकता है कि आत्मसम्मान का भाव तो हो, लेकिन दूसरी संस्कृति को अपनाने से इस भाव में हानि की कोई आशंका न हो। किन्तु जब आत्मविश्वास का स्तर बेहद कम हो और लोग दूसरी सभ्यता से जुड़ने के कारण अपनी सांस्कृतिक पहचान के नष्ट होने को लेकर आशंकित हों तब वे रक्षात्मक और कठोर हो जाते हैं। बोस बताते हैं कि

बंगाल के मामले में भारतीय समाज ने आर्थिक मोर्चे पर भले ही पूर्ण आत्मसमर्पण किया हो, लेकिन आत्मसम्मान के अवशेषों के कारण लोगों के मन–मस्तिष्क में सांस्कृतिक रूप से रक्षात्मक भाव था। यह भाव कई बार मनोविकार का स्वरूप ले लेता है। बोस जैविक संरचनाओं के आधार पर बताते हैं कि जब कोई प्रजाति किसी दूसरी प्रजाति के कारण विलुप्त होने का डर महसूस करती है तो असामान्य लक्षणों का विकास करती है, संस्कृतियों के मामले में भी कुछ इसी तरह के रक्षात्मक उपक्रम सामने आते हैं। बोस बताते हैं कि हिन्दुत्व के पराभवकाल में सामने आई कई विकृतियों से इसे समझा जा सकता है। उदाहरण के लिए, हिन्दुओं में प्राचीनकाल से गाय का विशेष सामाजिक, धार्मिक महत्व रहा है। लेकिन गोहत्या को लेकर मुस्लिमों के प्रति उपजी विरोधी भावना के गोमांस खाने वाले अन्य समुदायों/लोगों के प्रति समान रूप से प्रतिरोधी नहीं होने के कारण गायों का संरक्षण सीधे तौर पर मुस्लिम विरोधी (Anti Mohammedan) प्रतिमान बन गया।

अब हम बोस के मानव और संस्कृति के संबंध और जीवन की आवश्यकताओं के अनुरूप संस्कृति में बदलाव सिद्धांत के हिसाब से देखेंगे तो पाएंगे कि मुंडा, जुआंग और बंगाली समाज ने दूसरी संस्कृति के उन तत्वों को अंगीकार किया जो आर्थिक रूप से लाभकारी और शक्ति के प्रतीक थे। इस प्रकार बोस यह तर्क देते हैं कि सांस्कृतिक पसंद (Preference) आर्थिक और शक्ति के पहलू के आधार पर निर्दिष्ट होती है। इसका अर्थ यह हुआ कि सांस्कृतिक क्रियाकलाप आत्मरक्षण की सहजवृत्ति से प्रेरित होते हैं। बोस के अध्ययन का निष्कर्ष यह है कि सांस्कृतिक संपर्क में जिन चार तत्वों का विशेष महत्व है, वे केन्द्रित विचार (The Central Ideas), मानसिक अभिवृत्ति (The Mental Attitude), संस्कृति के तत्व (Content of Culture) और संस्कृति को संरक्षित करने वाला आर्थिक ढांचा (Economic Framework which Sustains Culture) हैं। किसी संस्कृति के अधीन हो जाने की स्थिति में परिवर्तन का अंतिम परिणाम उसे मानने वाले लोगों की मानसिक अभिवृत्ति पर मूलतः निर्भर करता है। यही वजह है कि यदि किसी संस्कृति का अनुकरण करने वाले लोगों में अपनी संस्कृति के प्रति आत्मसम्मान और गौरव का भाव कम हो तो उसमें गहरे परिवर्तन की संभावनाएं उन संस्कृतियों के मुकाबले अधिक रहती है, जिन्हें मानने वालों में अपनी संस्कृति को लेकर आत्मसम्मान का भाव हो। हालांकि, यदि अधीन हो चुकी संस्कृति में इस तरह का कुछ भाव बचा हो तो वह रक्षात्मक तरीकों से कुछ विशेष तत्वों को विकसित कर लेती है। ऐसी स्थिति में पुराने विचारों–संस्थाओं को अधिक मान दिया जाता है, नयी पहल की कमी स्पष्ट दिखती है, जबकि कुछ असामान्य तत्व भी उभरते हुए दिखते हैं। जब ये तत्व संस्कृति को विलुप्त होने से बचाने के अपने लक्ष्य में सफल हो जाते हैं तो स्वतः धीरे–धीरे कम होते जाते हैं और संस्कृति एक बार फिर विकास के पथ पर सामान्य रूप से बढ़ने लगती है।

अपने शोधकार्यों के दौरान बोस ने पाया कि पूर्वी भारत की जनजातियां जब हिन्दू जातियों के संपर्क में आईं तो उन्होंने हिन्दुओं की जीवनशैली और सांस्कृतिक पद्धतियों को अपना लिया। शीघ्र ही वे हिन्दू सामाजिक ढांचे और श्रेणियों में शामिल हो गईं। इसी तरह घुर्ये ने तर्क दिया कि भारतीय जनजातियों ने धीरे–धीरे हिन्दू जीवनपद्धति और मूल्यों को अपनाया जो दो संस्कृतियों के अंतरसंबंधों का परिणाम था। उन्होंने जनजातियों को 'पिछड़ी हिन्दू जातियां' बताया है, जो धीरे–धीरे हिन्दू सामाजिक व्यवस्था में आत्मसात हो गईं (*op.cit*. Nagla 2013:101).

घुर्ये की ही तरह बोस भी जनजातियों को भारतीय सभ्यता का अहम हिस्सा मानते हैं। बोस बताते हैं कि अफ्रीका और आस्ट्रेलिया की जनजातियों की तरह भारत की जनजातियां अलग–थलग (Isolated) नहीं रहीं, बल्कि उन्होंने वृहद् हिन्दू समाज से संपर्क–संवाद स्थापित किया (Chaudhury 2007)। इस प्रकार (जैसा पहले भी वर्णन किया गया है) अपनी पुरानी जीवनशैली को छोड़कर खेती अपनाने वाली जुआंग जनजाति धीरे–धीरे हिन्दू समाज में आत्मसात कर ली गई। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि हिन्दू सभ्यता से जुड़ने की इस प्रकिया में जुआंग जनजाति के लोगों ने अपनी रीतियों, परंपराओं, सांस्कृतिक कार्यों को छोड़ा नहीं। उन्हें दोनों संस्कृतियों के विचारों–परंपराओं को अपनाने, अनुसरण करने की स्वतंत्रता है। बोस इसे 'जनजातियों के आत्मसातीकरण की हिन्दू पद्धति' कहते हैं और जनजातियों के आर्थिक परिवर्तन के लिए बहुत अनिवार्य करार देते हैं (Bose 1941)

1.6: भारतीय सभ्यता: विविधता में एकता (Indian Civilization: Unity & Diversity)

भारत भौगोलिक क्षेत्रों, धर्म, भाषाओं, पारंपरिक पहचानों, समुदायों और विभिन्न कारकों में विभिन्नताओं और विविधताओं वाला देश है। राष्ट्रीय निर्माण के दौरान भारतीय सभ्यता का अध्ययन करते हुए भारतीय विविधताओं के बीच समानता वाले तत्वों–कारकों पर फोकस किया। बोस का यह कार्य उस दौर में एकता और राष्ट्रीय अखंडता का भाव विकसित करने के लिए अति महत्वपूर्ण था। बोस ने भारतीय सभ्यता को विविधताओं में एकता के तौर पर प्रस्तुत किया है, जिसके लिए उन्होंने शास्त्रीय, धार्मिक पाठ्य, प्रशासनिक दस्तावेजों, ग्रामीण परिवेश और जाति व्यवस्था के समग्र अध्ययन को आधार बनाया है। बोस ने अपने अध्ययन में पाया कि भारत की विशाल भौगोलिक और पर्यावरणीय परिस्थितियां, मिट्टी की गुणवत्ता, जलस्रोतों की स्थिति और अन्य भौतिक संसाधन अलग–अलग क्षेत्रों के लोगों की जीवनशैली और भोजनपद्धति पर असर डालती हैं। उष्णकटिबंधीय देश होने के कारण भारत प्रारंभ से ही कृषिप्रधान देश रहा है। फसल उपज के मौसम में देशभर में त्योहारों का आयोजन किया जाता है और पशु–पक्षियों का पूजन होता है। यह बताता है कि प्रकृति जीवन के आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक पहलुओं को भी प्रभावित करती है। हालांकि, भारत में सांस्कृतिक रूप से विविधताएं हैं, लेकिन विभिन्न क्षेत्रों और भाषा समूहों के बीच संस्कृति से जुड़े कुछ ऐसे तत्व हैं जो समान हैं और एक–दूसरे से जुड़े हुए हैं (Behura and Mohanti 2002).

बोस मानते हैं कि यह एकरूपता ही भारतीय सभ्यता है जो जाति व्यवस्था की परंपरा से विकसित हुई है और सदियों से भारतीय लोगों के आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन को संचालित करती रही है। इसके अतिरिक्त विभिन्न धार्मिक पंथों, उपासना विधियों और संतों द्वारा धार्मिक–सामाजिक सुधारों के लिए किए जाने वाले देशाटन ने भारतीय सभ्यता को एकसमान बनाने में मदद की। बोस तर्क देते हैं कि भारतीय समाज की प्रकृति 'पिरामिड' की तरह है। यहां जन के बीच विश्वास और महत्वाकांक्षाओं के लिहाज से आधार बिन्दु (निम्न जातियों, श्रमिकों और निम्न वर्गों) में अधिक विविधता मिलती है, जबकि उच्च वर्गों के बीच कम विविधता रहती है। (Sinha 1972:13)1959 से 1964 तक एंथ्रोपोलॉजिकल सर्वे

ऑफ इंडिया के निदेशक रहने के दौरान बोस ने भारतीय समाज के राष्ट्रीय स्तरीय शोध के लिए पांच चरणों को अपनाने का सुझाव दिया, जो निम्नवत हैं:

1. पहला चरण: पूरे भारत में संस्कृति के तत्वों के वितरण का अध्ययन और इनके वितरण के पैटर्न, भाषाई विभिन्नताओं का मानचित्रात्मक वर्गीकरण
2. दूसरा चरण: मिट्टी के बर्तनों के निर्माण, धातुशिल्पकला जैसी प्राचीन भारतीय शिल्पकलाओं और तकनीकों का अध्ययन
3. तीसरा चरण: भारत के विभिन्न क्षेत्रों की सामाजिक व्यवस्थाओं में शिल्प और जाति व्यवस्थाओं का अध्ययन
4. चौथा चरण: मठ, राज्यों (Kingship) और मठों जैसे भारतीय समाज के प्राचीन स्थापत्यों का अध्ययन
5. पांचवां चरण: भारत के विभिन्न क्षेत्रों में जनजातीय अभियानों, जातियों और व्यवसायों में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का अध्ययन (Sinha 1972, Saraswati 2002 and Nagla 2013)

अपने शोधकार्यों को लेकर बोस बेहद धुनी थे और चाहते थे कि युवा शोधकर्ता मानवजाति विज्ञान शोध को राष्ट्रीय स्तर पर स्थापित करें। उन्होंने जातियों, बर्तन निर्माण, बुनकर, तेल निर्माण जैसे भारतीय प्रचलित व्यवसायों, जीवनशैली के तरीकों, सांस्कृतिक और धार्मिक जीवन को लेकर आंकड़ों के संग्रहण पर जोर दिया। यद्यपि चौधरी (2007) पाते हैं कि बोस के लिए भारतीय सभ्यता हिन्दू सभ्यता से जुड़ी थी। भारतीय सभ्यता पर बोस के अध्ययन अधिकतर हिन्दू समाज के विभिन्न संस्कृतियों से संक्रमण पर आधारित हैं, जो बताते हैं कि हिन्दुत्व धीरे–धीरे इन संस्कृतियों के शीर्ष पर पहुंचता है। हालांकि, हिन्दुत्व को लेकर उनका विचार धर्म से अधिक संस्कृति का है, जो सबको आत्मसात करता है।

1.7: निष्कर्ष (The Conclusion)

जैसाकि हमने इस इकाई में अध्ययन किया, निर्मल कुमार बोस ने भारत के सामाजिक मानवजाति विज्ञान के अध्ययन में महत्वपूर्ण योगदान किया है। हालांकि, भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में उनकी सक्रिय भूमिका के चलते उनके एकेडमिक कॅरियर पर प्रभाव पड़ा। वह अपने शोध कार्यों पर पूरा और वांछित समय नहीं दे सके। फिर भी राजनीतिक रूप से किए गए उनके कार्य उनके मानजाति विज्ञान दृष्टिकोण पर साफ प्रतिबिंबित होते हैं। समाजशास्त्र और मानवजाति विज्ञान के छात्र होने के नाते संस्कृति, सांस्कृतिक संपर्क और जनजातीय अखंडता–एकता पर बोस के विचार हमारे अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण हैं। भारतीय सभ्यता के अध्ययन का जो दृष्टिकोण उन्होंने प्रस्तुत किया है, वह राष्ट्रीय अखंडता और एकीकृत राष्ट्र के निर्माण में सहयोग करता है। हालांकि, जनजातीय समाजों के एकीकृत राष्ट्र की मुख्यधारा में अंततः समन्वित होने के उनके विचार पर समालोचनात्मक विश्लेषण संभव है।

1.8: भावी अध्ययन (Further Readings)

- Sinha, S. (ed.) (1972) "Anthropology of Nirmal Kumar Bose" in *Aspects of Indian Culture and Society: Essays in Felicitation of Professor Nirmal Kumar Bose*, Indian Anthropological Society, Calcutta, 1-22.

- Bhattacharjee, N. (2008), "Through Thick and Thin Reflections on Nirmal Kumar Bose," Indian Anthropologist, Vol. 38, No. 2, 1-17.
- Bose, Pradip Kumar (2007), "The Anthropologist as 'Scientist'? Nirmal Kumar Bose" in Uberoi, P., Sundar, N. and Deshpande,S. (ed.) *Anthropology in the East: Founders of Indian Sociology and Anthropology*, Permanent Black, New Delhi, 290-329.

1.9: सन्दर्भ (References)

- Behura, N.K. and Mohanti, K.K. (2002), "Bose on the Unity of Indian society and Culture" in Bhattacharya, R. K. and Sarkar, J. (ed.), Passage Through Indian Civilization, Anthropological Survey of India, Kolkata, 197-205.
- Bhattacharya, B (2002), "Professor Nirmal Kumar Bose: My Teacher," in Bhattacharya, R. K. and Sarkar, J. (ed.), Passage Through Indian Civilization, Anthropological Survey of India, Kolkata, 6-9.
- Bhattacharya, R. K. (2002), "A Few words about Professor N.K. Bose and his work," in Bhattacharya, R. K. and Sarkar, J. (ed), Passage Through Indian Civilization, Anthropological Survey of India, Kolkata, 1-5.
- Bose, N.K. 1941. "The Hindu Method of Tribal Absorption," Science and Culture, Vol. 7: 188- 94.
- Bose, N.K. (1961), Cultural Anthropology, Asia Publishing House, Bombay.
- Bose, Pradip Kumar (2007), "The Anthropologist as 'Scientist'? Nirmal Kumar Bose" in Uberoi, P., Sundar, N. and Deshpande,S. (ed.) *Anthropology in the East: Founders of Indian Sociology and Anthropology*, Permanent Black, New Delhi, 290-329.
- Chakrabarti, S.B. (2002), "Paribrajaker diary: An Enquiry into its Anthropological input" in " in Bhattacharya, R. K. and Sarkar, J. (ed), Passage Through Indian Civilization, Anthropological Survey of India, Kolkata, 147-156.
- Chaudhury, S (2007), "Civilizational Approach to the Study of Indian Society: N. K. Bose and Surajit Sinha", *The Eastern Anthropologist*, Vol.60, No.3-4: 501-508.
- Durkheim, Emile. 1982. *The Rules of Sociological Method*. Intro. Steven Lukes; trs. W.D. Halls; London: Macmillan, 1-159.
- Nagla, B.K. (2013), "Civilizational Perspective: N.K. Bose", *Indian Sociological Thought*, Rawat Publications, New Delhi, 341-354.
- Saraswati, B. (2002), "Professor Nirmal Kumar Bose : A Gandhian Anthropologist" in Bhattacharya, R. K. and Sarkar, J. (ed), Passage Through Indian Civilization, Anthropological Survey of India, Kolkata, 10-39.
- Sinha,S. (ed.) 1972. "Anthropology of Nirmal Kumar Bose" in *Aspects of Indian Culture and Society: Essays in Felicitation of Professor Nirmal Kumar Bose*, Indian Anthropological Society, Calcutta, 1-22

इकाई 2

सुरजीत सिन्हा (Surajit Sinha)

2.1: उद्देश्य

2.2: परिचय

2.2.1: जीवनवृत्त

2.2.2: प्रभाव एवं योगदान

2.3: दृष्टिकोण एवं माध्यम

2.3.1: सभ्यतागत दृष्टिकोण

2.3.2: मानव विज्ञान शोध का ढांचा

2.3.3: जनजातियों के संरक्षण की सीमाएं

2.4: जनजातियों और काश्तकारों की अवधारणा

2.5: जनजातीय जातियों व जनजातीय काश्तकारों की सततता

2.6: भारतीय सभ्यता

2.7: नगरीय मानव विज्ञान

2.8: निष्कर्ष

2.9: सन्दर्भ

2.1: उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के उद्देश्य निम्नवत हैं:

- सुरजीत सिन्हा के जीवन और उनके कार्यों का परिचय
- सिन्हा के प्रभावों और उनके योगदान का अध्ययन
- सिन्हा के कार्यों के सभ्यतागत दृष्टिकोण को समझना
- जनजाति, जाति और काश्तकारों की अवधारणा

- भारतीय सभ्यता में जनजाति, काश्तकारों की सततता

2.2: परिचय (Introduction)

सुरजीत चंद्र सिन्हा भारतीय मानवविज्ञानी थे। उन्होंने अमेरिका में सामाजिक मानवविज्ञान का प्रशिक्षण प्राप्त किया, लेकिन इसके बाद भारत में ही कार्य किया। उन्होंने भारतीय सभ्यता में जनजातियों और उनके रूपांतरण के अध्ययन पर विशेष ध्यान केन्द्रित किया। उन्होंने बंगाल व बिहार की भूमिज तथा भारत की केन्द्रीय पट्टी की गोंड जनजातियों पर शोधकार्य किये। उनके शोधकार्य, अध्ययन, आंकड़े और अन्य जानकारियां मानवविज्ञान के अध्ययन में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

जीवनवृत्त

सुरजीत चंद्र सिन्हा (1926–27, फरवरी 2002) का जन्म तत्कालीन बंगाल के दुर्गापुर (अब बांग्लादेश में) में हुआ था। उनके पिता सुसंग के महाराज भूपेन्द्र चंद्र सिन्हा थे, जबकि माता अभिजात्य परिवार से संबंध रखती थीं। नजदीकी सरकारी हाईस्कूल से पढ़ाई पूरी करने के बाद उन्होंने स्नातक स्तर पर भौतिक विज्ञान विषय चुना। हालांकि, जल्द ही उन्होंने भौतिकी को बदलकर भूगर्भविज्ञान विषय ले लिया और अंत में मानवविज्ञान की पढ़ाई की। मानवविज्ञान में उनकी रुचि तब जगी, जब वे जनजातीय क्षेत्रों में भ्रमण के लिये पहुंचे और संथाल जनजाति के जीवन के तौर–तरीकों को नजदीक से देखा। उन्होंने संथाली गीतों का संग्रहण किया और कई स्कैच तैयार किये। उन्होंने कलकत्ता विवि के मानवविज्ञान विभाग में दाखिला लिया, जहां बेहतरीन प्रदर्शन के बूते वह सौ रुपये की छात्रवृत्ति हासिल करने में कामयाब रहे। मानवविज्ञान में स्नातकोत्तर के बाद वह 1950–1952 तक कलकत्ता विवि में ही रिसर्च स्कॉलर रहे। इस दौरान उन्होंने बंगाल के शरणार्थियों के पुनर्वास पर काम किया। इसके बाद वह पीएचडी के लिये अमेरिका की नॉर्थवेस्टर्न यूनिवर्सिटी चले गये। भूमिज जनजाति पर किये शोधकार्य के जरिये वे रेडफील्ड, मिल्टन सिंगर और मैकिम मैरियट के करीब आये, जो शिकागो विवि में रहते हुये इसी तरह के शोध कर रहे थे।

"The Acculturation of the Bhumij of Manbhum: A study in Social Class Formation and Ethnic Integration" शीर्षक से सिन्हा ने 1956 में अपना शोधकार्य पूरा कर नॉर्थवेस्टर्न यूनिवर्सिटी में प्रस्तुत किया। हालांकि, इसके बाद भी सिन्हा का भूमिज जनजाति का अध्ययन थमा नहीं। अपने पहले अध्ययन में उन्होंने भूमिज जनजाति के सभ्यतागत दृष्टिकोण पर फोकस किया था, पीएचडी पूरी कर लेने के बाद उन्होंने जनजातीय समुदायों के बीच अंतर, संगठन और राज्य की भूमिका जैसे विषयों पर ध्यान केन्द्रित किया। सिन्हा एंथ्रोपोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया से जुड़ गये, जहां उन्होंने निर्मल कुमार बोस के साथ काम किया। बोस उस समय **'The Material Culture Trait Survey'** पर काम कर रहे थे, जिसका मकसद भारत के विभिन्न भाषाई और सांस्कृतिक क्षेत्रों का अध्ययन करना था। अपने अकादमिक कॅरियर के दौरान सिन्हा ने कई परियोजनाओं पर काम किया, कई शोधलेख लिखे, कई व्याख्यान दिये और विभिन्न सेमिनारों, गोष्ठियों में प्रतिभाग किया।

प्रभाव एवं योगदान

अपने दौर के अन्य शोधकर्ताओं की तरह सिन्हा ने भी ब्रिटिश उपनिवेश काल और स्वतंत्रता के बाद भारतीय सामाजिक स्थिति पर अध्ययन किया। ब्रिटिश शासन ने भारतीय समाज को बेहतर समझने के

मकसद से जनजाति और जाति जैसी नयी श्रेणियां और अवधारणाएं दीं। ये श्रेणियां ब्रिटिश शासन की समाप्ति के बाद भी भारत में जारी रहीं। हालांकि, मानवविज्ञानियों के बीच इस बात को लेकर हमेशा यह बहस बनी रही कि नये राष्ट्र के अनुरूप इन अवधारणाओं में बदलाव आवश्यक है या नहीं। इस स्थिति ने सिन्हा को अलग–थलग, उपेक्षित पड़े क्षेत्रों में आने वाले बदलावों और जनजातीय जनसंख्या के संबंध में व्यापक फील्डवर्क करने के लिये प्रेरित किया। सिन्हा अपने समकालीन शोधकर्ताओं, विशेषकर अमेरिकन स्कूल ऑफ एंथ्रोपोलॉजी के शोधकर्ताओं, निर्मल कुमार बोस, रॉबर्ट रेडफील्ड, मिल्टन सिंगर, एफजी बैले आदि से प्रेरित थे। प्रारंभ में भारतीय सभ्यता में जनजातीय एकीकरण का बोस का विचार उनका मार्गदर्शक बना। 1941 में बोस ने अपने अध्ययन में पाया था कि पूर्वी भारत में जनजातियां जब हिन्दू जातियों के संपर्क में आयीं तो उन्होंने हिन्दुओं की तरह आजीविका और सांस्कृतिक गतिविधियों को अपना लिया। इससे वे हिन्दू सामाजिक व्यवस्था में शामिल होती गयीं। हालांकि, सिन्हा (1997) ने बाद में इस शोधकार्य को और विस्तार देते हुये कुछ बदलाव किये। समकालीन मानवविज्ञानियों रॉबर्ट रेडफील्ड और मिल्टन सिंगर ने भारतीय समाज के अध्ययन के लिये कमतर और उच्चतर परंपरा जैसी श्रेणियों का इस्तेमाल किया था, इसके अनुरूप ही सिन्हा ने भी भारतीय सभ्यता की धाराओं को साधारण एवं जटिल में बांटकर देखा। उन्होंने दोनों धाराओं को पदानुक्रम के आधार पर निर्धारित किया और दोनों को ही पूरा महत्व दिया। **(Sinha 1997: 19)** भारतीय जनजातियों के संदर्भ में बोस ने जनजातियों के हिन्दू पद्धतियों के अनुसरण की अवधारणा दी थी तो घुर्ये ने जनजातियों को पिछड़े हिन्दू बताया था। सिन्हा ने भारत में मानवविज्ञान के अवधारणात्मक और व्यावहारिक पक्ष को स्थापित करने में महत्वपूर्ण योगदान किया। उन्होंने ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में सामाजिक ढांचे का अध्ययन किया और इस तरह बदलाव के ऐतिहासिक पहलुओं को सामने रखा **(Saraswati 1991).** एंथ्रोपोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया के सदस्य रहते हुये उन्होंने विभिन्न सामाजिक, सांस्कृतिक, भाषाई, जैविक शोध परियोजनाओं की निगरानी की, जिनमें बस्तर के लोगों पर अध्ययन और निर्मल कुमार बोस के निर्देशन में मैटीरियल कल्चर ट्रेट सर्वे में भी काम किया। वह भारत के उन कुछ प्रारंभिक मानवविज्ञानियों में शामिल हैं, जिन्होंने जनजाति और खेतिहरी–किसानी की अवधारणा को स्पष्ट किया। उनके कार्यों ने महत्वपूर्ण रूप से जाति, जनजाति और काश्तकार को परिभाषित करने में मदद की।

2.3: दृष्टिकोण एवं माध्यम (Approach and Method)

सभ्यतागत दृष्टिकोण

सिन्हा ने इस बात पर जोर दिया कि आवश्यक समस्याओं पर किये जाने वाले मानववैज्ञानिक शोधकार्य भारतीय सभ्यता की समग्रता के दृष्टिकोण से किये जाने चाहिये। इसका अर्थ यह हुआ कि भारतीय समाज के सभी पहलुओं का अध्ययन किया जाना चाहिये। किसी सभ्यता के तत्वों को एक–दूसरे से संबंध और भारतीय समाज एवं संस्कृति के व्यापक पैमाने के अंतर्संबंध के तौर पर देखा जाना चाहिये। इस तरह का सभ्यतागत दृष्टिकोण भारतीय समाज और सामाजिक ढांचे को गहराई से समझने में मददगार हो सकता है। सिन्हा सभ्यता के पारंपरिक केन्द्रबिन्दु को मानववैज्ञानिक शोधकार्य के जरिये उभारने पर जोर देते हैं, ताकि किसी एकमात्र समस्या पर शोध के बजाय भारतीय समाज का समग्र अध्ययन करना संभव हो। हम जानते हैं कि इसी तरह निर्मल कुमार बोस ने भी भारतीय समाज के अध्ययन के दौरान सभ्यतागत दृष्टिकोण का

इस्तेमाल किया और उन्होंने जाति व्यवस्था तथा जनजातियों को भारत की समग्र संस्कृति व सभ्यता का हिस्सा बनाकर देखा।

मानववैज्ञानिक शोध का ढांचा

एक शोधपत्र **"Urgent Problems for Research in Social and Cultural Anthropology in India: Perspective and Suggestions,"** में सिन्हा **(1968: 123-124)** ने भारतीय सामाजिक मानवविज्ञान के अध्ययन के लिये कुछ आम बिंदुओं को ध्यान में रखते हुये कार्यढांचा तय करने का सुझाव दिया है। वह तीन प्रमुख बिन्दुओं को ध्यान में रखने पर जोर देते हैंः

- विश्व संस्कृति के कुछ अनसुलझे पहलुओं को जानने के लिये अपेक्षाकृत अपरिवर्तनीय अथवा घटते आदिम समूहों का चयन किया जा सकता है
- भारतीय समाज और संस्कृति के समग्र अध्ययन के लिये सैद्धांतिक समझ विकसित करने के मकसद से समूहों और समस्याओं का चयन किया जाना चाहिये
- राष्ट्रीय विकास और पुनर्निर्माण में सामने आयी समस्याओं का मानववैज्ञानिक अध्ययन किया जाये

वह बताते हैं कि समस्याओं का चयन निम्नवत किया जा सकता है–

- वे स्वरूप या प्रक्रियाएं, जो निरंतर और बहुत तेजी से परिवर्तनशील हैं

- शोधकार्यों को चरणबद्ध तरीके से पूर्ण करना, जिसके तहत निश्चित कार्यक्रम को व्यवस्थित ढंग से पूरा किया जाये, प्रारंभ में तात्कालिक बिन्दुओं को स्पष्ट करने के बाद अगले चरण में मजबूत धरातलीय कार्य से शोध को आगे बढ़ाया जा सकता ह्वै

जनजातीय मानवविज्ञान संरक्षण की सीमाएं

सिन्हा (1968) मानते थे कि जनजातियों का अध्ययन विस्तृत भारतीय समाज और सभ्यता के सन्दर्भ में किया जाना चाहिये। वह इस बात पर सहमति जताते हैं कि आदिम समूहों पर विशेष ध्यान दिये जाने की जरूरत है, क्योंकि उनकी संस्कृति और सभ्यता के संबंध में लिखित दस्तावेजों का भारी अभाव है। हालांकि, सिर्फ आदिम स्तर पर ही मानववैज्ञानिक शोध पर ही केन्द्रित नहीं किया जाना चाहिये, क्योंकि समग्र भारतीय सभ्यता के अध्ययन के दृष्टिकोण से इसकी अपनी कुछ सीमाएं हैं। सिन्हा ने इन सीमाओं को निम्नवत समझाया हैः

- आदिम जनजातियां भारतीय समाज और सभ्यता की सघनताओं में से बेहद छोटे आयाम को स्पष्ट कर पाती हैं
- आदिम जनजातियों, कुछ अपवादों को छोड़ दिया जाये तो, को भारतीय सभ्यता के इतिहास आधारित श्रेणियों के तौर पर स्पष्ट कर पाना संभव नहीं हो पाता है
- यद्यपि यह माना जाता है कि आदिम जनजातियां ही तेजी से नष्ट हो रही हैं, लेकिन कई खेतिहर समुदायों और शहरों में भी रहने वाले कई समुदायों में परंपराओं और सांस्कृतिक पहलुओं में समान रूप से कमी दर्ज की जा रही है

- आदिम जनजातियों के नष्ट होने की अवधारणा को अतिरंजित नहीं किया जाना चाहिये, क्योंकि वे इतनी तेजी से बदल नहीं रही हैं, जितना कि माना जाता है **(Sinha 1968: 125-126.)**

सिन्हा के अनुसार समाजविज्ञानियों को नृवंशवैज्ञानिक **(Ethnographic)** आंकड़ों का संग्रहण देश के विभिन्न क्षेत्रों से करना चाहिये। वह बताते हैं कि सभ्यता का केन्द्र मौखिक लोकगीतों, कविताओं, किस्सों–कहानियों, लोकसंगीत, लोकनाट्य के जरिये एक से दूसरी पीढ़ी तक पहुंचता है। ऐसे में यह महत्वपूर्ण हो जाता है कि विभिन्न क्षेत्रों से इन आंकड़ों, जानकारियों को एकत्र करने के बाद इन सभी को एकसूत्र में बांधकर भारत की परंपराओं को समझा जाये और एकीकृत राष्ट्र की अवधारणा के प्रति जागरूकता लायी जाये।

2.4: जनजातियों और काश्तकारों की अवधारणा (Concept of Tribes and Peasents)

जनजाति (Tribes) और जाति (Caste) ये वे अवधारणाएं हैं, जो भारतीय मानवविज्ञान में ब्रिटिश उपनिवेशकाल में शामिल हुयीं। यही वजह है कि स्वतंत्रता के पश्चात इन अवधारणाओं के औचित्य, इनमें तदनुकूल बदलाव की आवश्यकता महसूस की गयी और इसे लेकर बहस भी हुयी। अधिकतर शोधकर्ताओं ने महसूस किया कि तात्कालिक अवधारणाओं और सिद्धांतों को पुनर्परिभाषित करते हुये भारतीय मानवविज्ञान को उपनिवेशिक स्थिति से बाहर निकालना जरूरी है। ब्रिटिश उपनिवेश शासकों ने जनजाति की श्रेणियां तय की थीं, मानवविज्ञानी मुख्यधारा से जनजातियों की उपेक्षा पर जोर देते थे। इस तरह जनजातीय समाज को उस दौर में उपेक्षित और अलग–थलग रहने वाले समुदाय के तौर पर देखा जाता था। सिन्हा और उनके दौर के अन्य मानवविज्ञानियों ने जनजाति, जाति और काश्तकार को भारतीय सभ्यता के संदर्भ में अवधारणात्मक स्वरूप देने का प्रयास किया। गंगा के मैदानी क्षेत्रों में जनजातीय बेल्ट की सामाजिक–सांस्कृतिक स्थिति के वृहद परीक्षण के बाद सिन्हा ने तीन प्रमुख अवधारणाएं दीं:

- इन समुदायों के सामाजिक–सांस्कृतिक व्यवस्था संबंधी गुण हिन्दू काश्तकार समाज से अलग हैं
- ये समुदाय दो अलग सामाजिक–सांस्कृतिक व्यवस्थाओं के बीच की कड़ी हैं
- केन्द्रीय और दक्षिणी भारत में जनजातीय समुदायों में रूपांतरण की प्रक्रिया सामने आती है, जो उन्हें हिन्दू काश्तकार समुदायों के नजदीक लाती है, सभी जनजातीय समुदाय हिन्दू काश्तकार समाज से प्रभावित हुयी हैं

उपरोक्त परिणामों के आधार पर सिन्हा जनजातीय समुदायों की पारंपरिक स्थितियों को अवधारित करने का प्रयास करते हैं:

ये जनजातीय समुदाय भारतीय सभ्यता की मुख्यधारा से बाहर प्रतीत होती हैं। जनजातीय संस्कृति को पारंपरिक भारतीय सभ्यता की पिछड़ी शाखा के तौर पर देखा जा सकता है। इस तरह यह माना जा सकता है कि ये वे आदिम जातियां हैं, जिनकी संस्कृति भारतीय सभ्यता के संपर्क में आकर विकसित हुयी है, लेकिन उन्होंने अपने स्वयं के पारंपरिक गुणों को भी नहीं छोड़ा है। जनजातीय संस्कृति वास्तविक आदिम संस्कृति को प्रदर्शित करती है जो अविकसित है।

उपरोक्त के आधार पर यह माना जा सकता है कि सिन्हा के अनुसार जनजातीय समाज अलग–थलग रहने वाले समुदाय थे, जिनका हिन्दू समाज के साथ सीमित संवाद था। उनकी भूमिका ग्रहणकर्ता के तौर पर थी, जिन्होंने हिन्दू समाज से परंपराओं, रीतियों को अनुसरण किया है। सिन्हा ने कुछ मूल बिन्दुओं के आधार पर जनजातियों और काश्तकारों में अंतर को स्पष्ट करने का प्रयास भी किया, जो निम्नवत हैः

- **पर्यावासः** अधिकतर जनजातीय समुदाय पर्वतीय, घने जंगलों वाले क्षेत्रों में रहते हैं, जबकि हिन्दू काश्तकार समुदाय गैरवनीकृत मैदानों में और नदियों के नजदीक रहते हैं

- **आर्थिकीः** जनजातीय अर्थव्यवस्था में सिर्फ दैनिक भोजन की जरूरतों का ध्यान रखा जाता है। वे मुख्यतः शिकार, मत्स्य आखेट, जंगलों में संग्रहीकरण से भोजन जुटाते हैं। वे झूम कृषि (अलग–अलग स्थानों पर खेती) करते हैं, जिसमें किसी स्थान पर खेती करने के बाद जमीन को यूं ही छोड़ दिया जाता है। जुआंग, भुईया आदि जनजातियों में यह व्यवस्था देखी जाती है। इसके अलावा जनजातीय लोग बुनकरी, लोहार के काम, टोकरियों और रस्सी बनाने के शिल्प से भी जुड़े होते हैं। इस तरह जनजातियों की अर्थव्यवस्था आत्मनिर्भर होती है और उनके लिये पूंजी संग्रहण की आवश्यकता बेहद कम या बिल्कुल शून्य होती है। दूसरी ओर, हिन्दू काश्तकार समुदाय सघन खेती पर निर्भर है, जिसमें बैलों और भैंसों की मदद से खेत में हल चलाया जाता है। शहरी केन्द्रों से जुड़े व्यापारिक बाजारों के कारण इनकी अर्थव्यवस्था भी आत्मनिर्भर रहती है। इस समुदाय में शिल्प की विशेषज्ञता और सामंती व्यवस्था पायी जाती है। जमीन, सोना, नगदी आदि के जरिये इस समुदाय में पूंजी संग्रहण भी बड़े पैमाने पर पाया जाता है।

- **सामाजिक ढांचाः** जनजाति एकल, अंतर्विवाही, पारंपरिक समूह होता है, जो क्षेत्रविशेष तक ही सीमित होता है। टोटम यानी प्रतीकचिह्नों के जरिये जनजातियों को विभिन्न वंशावलियों में बांटा जा सकता है। ये वंशावली या गोत्र आगे अलग–अलग प्रजातियों में बांटे जा सकते हैं। जनजाति के मुखिया, पुजारी और उपचार करने वाले वैद्य को छोड़ दे ंतो जनजाति में अन्य लोगों के लिये विशेष भूमिका का कोई अवसर नहीं रहता। इससे वहां सामाजिक स्तरों में लचीलापन दिखता है। दूसरी ओर, काश्तकार समुदाय जाति समूहों पर आधारित हैं, जो प्रकृति से अंतर्विवाही है। यह समुदाय विभिन्न जातियों में जन्म के आधार पर पदानुक्रम आधारित होता है। इसके चलते यहां सामाजिक स्तरों को लेकर कठोरता नजर आती है। राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक भूमिकाओं के रूप में यहां विशेषज्ञता भी पायी जाती है। उदाहरण के लिये पुजारी, ज्योतिषी, ओझा, शिक्षक, साधु आदि। काश्तकार समुदाय अपने क्षेत्र या गांव से बाहर के बाजारों, सांस्कृतिक केन्द्रों से भी संबद्ध हो सकते हैं।

- **वैचारिक व्यवस्थाः** जनजातीय समुदाय पारलौकिक शक्तियों में विश्वास करते हैं और उनके अपने देवता व मंदिर होते हैं। सुरक्षा, शांति, खुशहाली, बच्चों के स्वास्थ्य, अच्छी फसल, बीमारी और मृत्यु से बचाव के लिये ये समुदाय अपने रीति आधारित कर्मकांड करते हैं। वे पुनर्जन्म और आत्मा के रूपांतरण पर विश्वास करते हैं, लेकिन उनमें स्वर्ग–नर्क की अवधारणा नहीं मिलती। पशुबलि, जादू–टोना जैसी रीतियां इनमें सर्वाधिक प्रचलित हैं। हिन्दू काश्तकार समुदाय में देवपूजन,

अद्वैतवाद, बहुदेववाद का समन्वय नजर आता है। स्वर्ग–नर्क, धर्म–धार्मिक दायित्व, नैतिकता के बिन्दु इस समुदाय में अहम हैं। यह माना जाता है कि देवताओं में अकूत शक्तियां हैं और मूर्तिपूजा की जाती है। पशुबलि, जादू–टोना यहां भी पाये जाते हैं।

सिन्हा बताते हैं कि काश्तकार समुदाय कृषि आधारित स्थायी, ग्रामीण समुदाय हैं, जिनके सदस्य स्थानीय मौखिक परंपराओं से बंधे रहते हैं। इन समुदायों में सभ्यता के विशेषज्ञ केन्द्र पाये जाते हैं। वर्ण–जाति व्यवस्था के जरिये वे वंशाधारित पदानुक्रम और श्रम विभाजन से जुड़ते हैं। दूसरी ओर, जनजातीय समुदाय अलग–थलग रहने वाले समुदाय हैं, जिनके सामाजिक और सांस्कृतिक संबंध सभ्यता के केन्द्रों से बहुत सीमित या बिल्कुल नहीं होते। इसे निम्न सारिणी से भी समझा जा सकता हैः

Box 2.1: Difference between 'Tribe' and 'Peasant'

	Aspects	**Tribe**	**Peasant**
1	Habitat	Hilly and forest	Plateaus and plains
2	Economy	Subsistence economy - hunting, gathering, fishing and shifting cultivation; Crafts: weaving, iron smelting, basket and rope making.	Agricultural economy; Feudal system; Specialized crafts; connected to commercial markets and incentive towards capital accumulation.
3	Social Structure	Exogamous groups; Totemic clans; Less role-differentiation/ specialization; Flexible stratification.	Caste group- endogamous and hierarchical. Extended ties beyond the village. Role specialization and differentiation.
4	Ideological System	Supernaturalism; Belief in reincarnation and transmigration of souls; Magic and witchcraft are predominant.	Patheonism, Monotheism and Polytheism; Idol worship; magic and witchcraft are common.
5	Aspirational level	Low aspirations	Materialistic and other aspirations like more

			wealth, superior status and so on.

11.5: जनजातीय जातियों व जनजातीय काश्तकारों की सततता (Tribe Caste and Tribe Peasent Continuum)

ब्रिटिश उपनिवेश काल में जनजातियों को ऐसे समुदायों के तौर पर जाना गया, जो मुख्य धारा से अलग रहते हैं। लेकिन, समय के साथ यह तय करना और पहचान कर पाना मुश्किल होता चला गया कि जनजाति की सीमा कहां समाप्त होती है और जाति की सीमा कहां से प्रारंभ होती है। ये दोनों श्रेणियां एक–दूसरे में मिली हुयी नजर आने लगीं। कई मानवविज्ञानियों ने इस स्थिति को स्पष्ट करने का प्रयास किया। सिन्हा (1976) ने बस्तर के पर्वतीय मारिया गोंड और बड़ाभूम के भूमिज जनजातियों के अध्ययनों के जरिये जनजाति और जाति के बीच संबंध, सततता को स्पष्ट किया है। उन्होंने बैले के अध्ययन का भी सहयोग लिया, जिन्होंने उड़िया समाज का अध्ययन करते हुये जनजाति और जाति को एक ही रेखा के दो विपरीत बिंदुओं के तौर पर स्पष्ट किया। उड़िया और कोंड समुदायों के राजनीतिक व्यवस्था के विश्लेषण के दौरान बैले ने पाया कि विभिन्न बिन्दुओं पर समाज या तो जाति व्यवस्था पर आधारित नजर आता है, या फिर कुछ जगह उसमें जनजातीय लक्षण भी सामने आते हैं। हालांकि, सिन्हा इस सिद्धांत को कई संदर्भों में अनुपयुक्त मानते हैं। लोक–शहरी सततता के रेडफील्ड की अवधारणा के जरिये सिन्हा ने भारतीय समाज के लिये जनजाति–जाति और जनजाति–काश्तकार सततता का मॉडल पेश किया। जैसाकि हम पहले जान चुके हैं कि जनजाति को (पारिस्थितिकी, जनसांख्यिकीय, आर्थिकी, राजनीति और अन्य सामाजिक संबंधों के आधार पर) अन्य समूहों से अलग माना जाता है। ये पारंपरिक समूह हैं, जिनमें सामाजिक स्तरों का अभाव दिखता है, जिसका वर्णन पहले किया जा चुका है। सिन्हा जाति को संपर्क, संबद्धता, विविधता, सामाजिक ढांचे, स्तर के गुणों वाला बताते हैं, जिनमें बहुल परंपराओं का रहना संभव हो, अंतर्पारंपरिक सहभागिता हो, अन्य समूहों से संवाद की संभावनाएं हों। काश्तकार समुदायों में ये सभी गुण पाये जाते हैं। वे सभ्यता के केन्द्रों के साथ भी संपर्क बनाये रखते हैं, इसके बावजूद वे अपनी सांस्कृतिक विविधता को भी संरक्षित रखते हैं।

Box 2.2: A Comparison between the Hill Maria Gonds and the Bhumij on the basis of their complexity

Aspects	Tribe Hill Maria Gond (M.P.)	Caste Peasant Bhumij (West Bengal-Bihar)
1. Ecology	Hill and Forest	2/3 plains; 1/3 forest
2. Population	1200	375,938

3. Ethnic complexity	Single ethnic group	Avg is 6 ethnic groups per village. Bhumij form 15% of Barabhum containing 64 thnic groups
4. Technology and Economy	a) Swidden b) No market within tribal tract c) Communal ownership of swidden land	a) Wet rice cultivation b) Market at regular intervals c) Land Revenue organization based on hierarchy and feudalism
5. Stratification	No stratification	Feudalization of political structure and recognition of at least three classes
6. Caste-like Interaction	Ranked in three strata Non-tribal ritual specialists employed	20-28 ranks Caste system (4 varnas)

Source: Sinha, S. (1965), "Tribe-Caste and Tribe-Peasant Continua in Central India", Man in India, Vol. 45 (1): 57-83.

2.6: भारतीय सभ्यता (Indian Civilization)

सिन्हा (1980:02) के अनुसार सभ्यता का अर्थ शहरी केन्द्रों के पदानुक्रम के अस्तित्व से है, जहां विचार और भौतिक संस्कृति का समावेश हो। ये केन्द्र देशभर में सांस्कृतिक संचार के लिये अन्य केन्द्रों और ग्रामीण समुदायों से संबद्ध रहते हैं। सभ्यता की अवधारणा स्थानीय मौखिक और अव्यवस्थित परंपराओं के बजाय व्यवस्थित विचारों (विशेषताओं से परिपूर्ण, जैसे– साहित्य आदि) के अस्तित्व को तरजीह देती है। पहले ***Nirmal Bose Memorial Lecture*** **(1993)** को संबोधित करते हुये सिन्हा ने भारतीय सभ्यता के दो महत्वपूर्ण गुणों के बारे में बताया। पहला यह कि भारतीय सभ्यता भारतीय समाज की साधारण और जटिल धाराओं के संयोजन से निर्मित है। यहां साधारण से उनका तात्पर्य जनजातीय समुदायों और स्थानीय परंपराओं से है, जबकि जटिल का अर्थ सघन, नगरीकृत, कृषि आधारित और जागृत परंपराओं से है, जैसे हिन्दू समाज। ये दोनों ही धाराएं एक दूसरे को निरंतर प्रभावित करती हैं और भारतीय सभ्यता इन दोनों के परस्पर संवाद, संबंध का ही परिणाम है। बोस के विपरीत सिन्हा मानते हैं कि सांस्कृतिक रूपांतरण दोहरा रास्ता है, जिसमें दोनों परंपराएं एक दूसरे को प्रभावित करती हैं।

बोस (1941) के अनुसार हिन्दू संस्कृति और आजीविका अपनाने वाली जनजातियों के लिये यह आवश्यक था। हालांकि, उन्होंने अपनी रीतियों और जीवनशैली में बदलाव नहीं किया, लेकिन हिन्दू जीवन के तरीकों को अपनाया और वे जल्द ही हिन्दू समाज का हिस्सा बन जायेंगे। बोस मानते हैं कि हिन्दू समाज जनजातीय संस्कृति से अधिक प्रभावित नजर नहीं आता। वहीं, सिन्हा के अनुसार भारतीय सभ्यता दरअसल हिन्दू समाज और जनजातीय संस्कृति के बीच लेन–देन का परिणाम है। हालांकि, दोनों के बीच एक–दूसरे को प्रभावित करने की प्रकृति रहती है, लेकिन दोनों अपने खुद की संस्कृति को भी बचाकर रखते हैं। इस

तरह बाहरी सामाजिक–सांस्कृतिक प्रभावों के बावजूद अपने पारंपरिक सांस्कृतिक रीतियों को बचाये रखना भारतीय सभ्यता का दूसरा गुण है। सिन्हा इसे संरक्षण के जरिये विकास **"Development through conservation" (1997:21)** कहते हैं। वह उदाहरण देते हैं कि जनजातीय नृत्य छाऊ ने अपनी वास्तविकता को संरक्षित रखा है, जबकि यह भगवान गणेश के गीत के साथ प्रारंभ होता है। इसी तरह छत्तीसगढ़ी नाच में ग्रामीण पारंपरिक परंपराओं को आधुनिक कला के साथ समाविष्ट किया गया है।

2.7: नगरीय मानव विज्ञान (Urban Anthropology)

प्रारंभ में मानवविज्ञानियों ने जनजातीय और नगरीय संस्कृतियों का अध्ययन किया। समय के साथ मानव विज्ञान ने आदिम जातियों पर ध्यान देना शुरू किया और सभ्यतागत समुदायों की ओर उनका झुकाव कुछ कम हुआ। इसके चलते समाजशास्त्रियों और मानवविज्ञानियों के बीच एक विभाजन सा आ गया, समाजशास्त्रियों ने जहां नगरीय, सभ्यतागत समाजों पर ध्यान केन्द्रित किया, वहीं मानवविज्ञानियों ने जनजातियों और स्थानीय संस्कृति के अध्ययन पर जोर दिया। इसके विपरीत सिन्हा ने नगरों के भी मानववैज्ञानिक अध्ययन की आवश्यकता पर जोर दिया। 1970 में उन्होंने कलकत्ता नगर से संबंधित आंकड़े और जानकारियां जुटाने के मकसद से **"Social and Cultural Profile of the City of Calcutta"** सेमिनार आयोजित किया। वर्ष 1972 में इसे ***Cultural profile of Calcutta*** नामक पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया गया। इस अध्ययन से निम्न परिणाम सामने आये:

- कलकत्ता की नगरीय आबादी में विभिन्न भाषाएं, बोलियां बोलने वाले, अलग–अलग धार्मिक समूहों, जातियों आदि से जुड़े लोग रहते हैं, हालांकि, ये सभी समूह एक–दूसरे के साथ नहीं रहते। इन समूहों के भीतर रूढ़ियों के चलते वे अपनी सांस्कृतिक और सामाजिक सीमाएं निर्धारित करके रखते हैं।

- कलकत्ता की बस्तियां बेहद उपेक्षित हैं और वहां रहने वाले लोग निर्धन, बदतर हालात में जीवन जीते हैं

- आबादी का उच्च स्तर यानी व्यापारिक वर्ग आसपास के समाज और अन्य लोगों से सामान्य तौर पर अलग रहता है

- अध्ययन में कलकत्ता के भद्रलोक (बुद्धिजीवियों) के अध्ययन का भी प्रयास किया गया, जिनका झुकाव मार्क्सवाद की ओर था

- अध्ययन में कलाकारों और बुद्धिजीवियों, संकीर्ण दायरे वाली सामाजिक पहचानों, भाषाई और धार्मिक समूहों, शहरी मध्य वर्ग, ग्रामीण परिवेश, समृद्ध धनाढ्य वर्ग और उपेक्षित निर्धन लोगों का भी तुलनात्मक अध्ययन किया गया

परियोजना के जरिये भारत के कमजोर वर्गों की सामाजिक–राजनीतिक संस्थानों तक पहुंच, जमीनों पर नियंत्रण के अध्ययन, उनकी कमजोरियों, परेशानियों, सामाजिक–राजनीतिक और आर्थिक बाधाओं तथा

उनके उपेक्षित रहने के कारणों की पहचान करने का प्रयास किया गया। अध्ययन से स्पष्ट हुआ कि जाति अनुक्रम में 176 कमजोर समुदाय हैं, जो सामाजिक स्तर के लिहाज से निम्न या मध्यम स्तर पर पाये जाते हैं। यह भी कि भारतीय समाज में जाति व्यवस्था का प्रभाव है। जाति और वर्ग भारतीय समाज में एक से दूसरी पीढ़ी तक हस्तांतरित होते हैं। अध्ययन से साफ हुआ कि कमजोर समुदायों के पास अपनी जमीनें नहीं होतीं, हालांकि कर्नाटक, केरल, त्रिपुरा और बिहार में उनके पास सीमित मात्रा में जमीन रहती है। स्वतंत्रता के बाद इन समुदायों की आजीविका और व्यवसाय में भी खास बदलाव दर्ज नहीं किये गये। वे अब भी खेतों में श्रमिकों के तौर पर काम करते हैं। अब भी देश में 40 कमजोर समुदाय मौजूद हैं **(Sinha 1993).**

2.8: निष्कर्ष (Conclusion)

सिन्हा (1980:02) के अनुसार सभ्यता का अर्थ शहरी केन्द्रों के पदानुक्रम के अस्तित्व से है, जहां विचार और भौतिक संस्कृति का समावेश हो। ये केन्द्र देशभर में सांस्कृतिक संचार के लिये अन्य केन्द्रों और ग्रामीण समुदायों से संबद्ध रहते हैं। यह संबद्धता जितनी अधिक होगी, शहरी केन्द्रों में एकीकरण की उतनी ही ज्यादा संभावनाएं रहेंगी। जनजातियों के मामले में यह नेटवर्क बेहद कमजोर रहा, जिसके चलते वे अलग–थलग और उपेक्षित रहे। सिन्हा मानते थे कि भारतीय समाज और संस्कृति के समग्र व्यवस्थित अध्ययन से ही भारतीय सभ्यता को स्पष्ट किया जा सकता है। वह भारतीय समाज और भरतीय सभ्यता के अलग–अलग अध्ययन के पक्षधर नहीं थे। सिन्हा के अनुसार जनजातियों पर ही अध्ययन केन्द्रित करने का अर्थ भारतीय समाज के अन्य महत्वपूर्ण पहलुओं को अनदेखा करना था। उन्होंने सभ्यता के पारंपरिक केन्द्र के अध्ययन पर जोर दिया, जिसके लिये समग्र अध्ययन का रास्ता उन्होंने सुझाया, जिसमें जनजाति, जाति या काश्तकार पर अलग–अलग अध्ययन के बजाय सबको एकसाथ रखकर अध्ययन किया जाये। जैसाकि हम पिछली इकाई में जान चुके हैं कि निर्मल कुमार बोस ने भी भारतीय समाज और संस्कृति के अध्ययन के लिये इसी तरह के दृष्टिकोण का इस्तेमाल किया। उन्होंने भारत में समग्र संस्कृति और सभ्यता में जाति व्यवस्था और जनजातियों को स्पष्ट किया।

2.9: सन्दर्भ (References)

- Sinha, S. (1958), "Tribal Cultures of Peninsular India as a Dimension of Little Tradition in the Study of Indian Civilization: A Preliminary Statement", *The Journal of American Folklore*, Vol. 71, No. 281, Traditional India: Structure and Change, 504-518.
- Sinha, S. (1965), "Tribe-Caste and Tribe-Peasant Continua in Central India", Man in India, Vol. 45 (1): 57-83.
- Saraswati, B. (1991), Anthropology of Surajit Chandra Sinha, *Tribal Thought and Culture: Essays in Honour of Surajit Chandra Sinha*, Concept Publishing Company.
- Nagla, B.K. (2013), Surajit Sinha, *Indian Sociological Thought*, New Delhi: Rawat Publications.
- Bose, N.K. 1941. "The Hindu Method of Tribal Absorption," Science and Culture , 7: 188- 94.

- Chaudhury, S (2007), "Civilizational Approach to the Study of Indian Society: N. K. Bose and Surajit Sinha", *The Eastern Anthropologist*, Vol.60, No.3-4: 501-508.
- Saraswati, B (1991), Anthropology of Surajit Chandra Sinha, *Tribal Thought and Culture: Essays in Honour of Surajit Chandra Sinha*, Concept Publishing Company.
- Sinha, S. (1958), "Tribal Cultures of Peninsular India as a Dimension of Little Tradition in the Study of Indian Civilization: A Preliminary Statement", *The Journal of American Folklore*, Vol. 71, No. 281, Traditional India: Structure and Change, 504-518.
- Sinha, S. (1965), "Tribe-Caste and Tribe-Peasant Continua in Central India", Man in India, Vol. 45 (1): 57-83.
- Sinha, S. (1967), "Caste in India: Its essential pattern of socio-cultural integration" in De Reuck, A., and Knight, J. (ed.) *Caste and Race: Comparative Approaches*, A Ciba Foundation Volume, London: J & A. Churchill Ltd, 92-105.
- Sinha, S. (1968), "Urgent Problems for Research in Social and Cultural Anthropology in India: Perspectives and Suggestions", *Sociological Bulletin*, Vol. 17, No. 2.
- Sinha, S. (1970), "Scope for Urban Anthropology and the City of Calcutta, Presidential Address at the Fourteenth Annual General Meeting of the Indian Anthropological Society.
- Sinha, S. (1971), "Is There an Indian Tradition in Social/ Cultural Anthropology: Introspect and Prospects", *Journal of Indian Anthropological Society*, Vol. 6: 1-14.
- Sinha, S. (1972), *Cultural profile of Calcutta,* Indian Anthropological Society.
- Sinha, S. (1980), "India: A Western Apprentice" in Diamond, S. (ed.) *Anthropology: Ancestors and Heirs*, Mouton Publishers.
- Sinha, S. (1980), "Tribes and Indian Civilisation- A Perspective", *Man in India*, Vol. 60, 1-15.
- Sinha, S. (1997), Indian Civilization: Structure and Change, Nirmal Kumar Bose Memorial Lecture, Indira Gandhi National Center for Arts, New Delhi.
- Sinha, S. (1993), Anthropology of Weaker Sections, Anthropological Survey of India, New Delhi: Concept Publishing Company.

इकाई–3

प्रो० ललिता प्रसाद विद्यार्थी

(Prof. Lalita Prasad Vidharithi)

इकाई की रूपरेखा–

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 ललिता प्रसाद विद्यार्थी का जीवन संक्षेप

12.3.1 ललिता प्रसाद विद्यार्थी के पवित्र परिसर की अवधारणा

12.3.2 ललिता प्रसाद विद्यार्थी द्वारा जनजाति की अवधारणा

3.4 ललिता प्रसाद विद्यार्थी के शोध कार्यों का संक्षेप वर्णन

3.4.1 औद्योगिकरण के प्रभाव का अध्ययन

3.4.2 व्यावहारिक एवं क्रियात्मक अध्ययन एवं अनुसंधान

3.5 सारांश

3.6 शब्दावली

3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.8 सन्दर्भ ग्रंथ की सूची

3.9 सहायक/उपयोगी पाठय सामग्री

3.10 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 उद्देश्यः (Objective)

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप इन बातों व तथ्यों एवं अवधारणाओं को समझ पायेंगे–

- आप समझ पायेंगे कि ललिता प्रसाद विद्यार्थी का जीवन संक्षेप।
- आप समझ पायेंगे कि मानव विज्ञान में उनके क्या योगदान हैं?
- आप समझ पायेंगे कि ललिता प्रसाद विद्यार्थी ने गाँव के अध्ययन को किस प्रकार समझा है?
- आप समझ पायेंगे कि ललिता प्रसाद विद्यार्थी ने पवित्र परिसर और तीर्थ स्थल की अवधारणा क्या है?
- आप समझ पायेंगे कि अनुसूचित जनजाति के अध्ययन को समझना।

- आप समझ पायेंगे कि क्षेत्रीय कार्य परम्परा क्या है?
- आप समझ पायेंगे कि नेतृत्व अध्ययन क्या है?
- आप समय पायेंगे कि शहरी औद्योगिक मानव विज्ञान क्या हैं?

3.2 प्रस्तावनाः (Introduction)

ललिता प्रसाद विद्यार्थी का मानवविज्ञानी के रुप में समाजशास्त्र के क्षेत्र में विशेष योगदान है। ललिता प्रसाद विद्यार्थी ने भारतीय मानव विज्ञान को सम्मान और गौरवपूर्ण संयोग दिया है। इन्होंने विभिन्न पहलुओं में उल्लेखनीय योगदान दिया है। वह गाँव के अध्ययन, पवित्र परिसर और तीर्थ स्थलों, क्रिया मानव विज्ञान, अनुसूचित जातियों, लोकगीतों के अनुसंधान, शहरी औद्योगिक मानव विज्ञान, नेतृत्व अध्ययन, क्षेत्रीय कार्य परम्परा, मानव विज्ञान सिद्धांत के अध्ययन से संबंधित थे। उन्होंने सामाजिक, आर्थिक कल्याण और जनजातियों के अध्ययन के लिये कड़ी मेहनत की थी।

ललिता प्रसाद विद्यार्थी का योगदान समाजशास्त्र में एक मानव विज्ञानी के रुप में अधिक है। इन्होंने इस प्रकार से कार्य किया है कि जिस तरह से अन्य समाजशास्त्री नहीं कर पाये थे। एल०पी० विद्यार्थी का कार्य समाज के निम्न स्तर के रुप में विख्यात है जो अन्य रुपों में नहीं है।

3.3 ललिता प्रसाद विद्यार्थी का जीवन संक्षेपः (Biography of Lalita Prasad Vidharithi)

ललिता प्रसाद विद्यार्थी भारत के एक गतिशील मानवविज्ञानी थे, जिन्होंने भारत और भारतीय मानव विज्ञान को सम्मान और गौरव दिया है। इनका जन्म 1931 में बिहार के पटना के पास बहु जाति गाँव में हुआ था। गाँव में मध्य जाति में जन्म लेने के कारण बचपन से ही उन्होंने जाति व्यवहार में असुविधा और प्रतिबंधों को देखा। 1946 में मैट्रिक पास की थी। 1950 में एल०पी० विद्यार्थी ने पटना कॉलेज से बी०ए० स्नातक (ऑनर्स) से पास की। 1951 में उन्होंने पटना विश्वविद्यालय से भूगोल में एम०ए० (प्रथम श्रेणी) में किया। 1953 में लखनऊ विश्वविद्यालय से मानव विज्ञान में एम०ए० किया। उन्होंने 1953 से 1956 तक संस्थापक व्याख्याता के रुप में कार्य किया। 1958 में इस विश्वविद्यालय से अपनी डॉक्टरेट की डिग्री प्राप्त की।

1968 में उन्हें प्रोफेसर पद के लिए पदोन्नत किया गया और विभाग के प्रमुख के रुप में कार्य किया। वह न केवल एक सफल शिक्षक थे, बल्कि एक समर्पित वैज्ञानिक भी थे। तीसरी विश्व मानव विज्ञान की उनका अवधारणा पश्चिमी और औपनिवेशिक प्रतिमानों की मौजूदा विरासत से बिल्कुल अलग ही थी। उन्हें दक्षिण एशिया में एक्शन एण्ड एप्लाइड मानव विज्ञान के संस्थापक पिता कहा जा सकता है। 1950 दशक के मध्य

में उन्होंने रॉची विश्वविद्यालय में मानव विज्ञान विभाग में एक एक्शन रिसर्च यूनिट की स्थापना की और चोतोनगपुर क्षेत्र के शोध किया। डॉ० एन० मजूमदार के छात्र के रुप में विद्यार्थी जी ने मजूमदार की विचारधारा का पालन किया और प्रयोगात्मक स्थितियों में प्रयोग किया।

एल०पी० विद्यार्थी ने डी०एन० मजूमदार के प्रभाव के अलावा अमेरिकी विद्वानों विशेष रुप से सोल से बौद्धिक उत्तेजना मिली। प्रो० एल०पी० विद्यार्थी के पास एक बड़ी दृष्टि और महान मिशन था। वह कृतज्ञता और विचारशीलता का एक आदमी था। उन्हें भारत और विदेशों में 1950 से 1983 के बीच कई फैलोशिप और पुरस्कार प्राप्त हुए। उनके पेशेवर कार्य में उन्हें राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय महत्व के कई प्रतिष्ठित निकायों के साथ बांध दिया। 1973 से 1978 तक लगातार मानव विज्ञान और एथनोलॉजिकल साइंसेज के अध्यक्ष चुने गए। इसके अलावा वह अंर्तराष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष रहे एवं एल०पी० विद्यार्थी का विभिन्न पहलुओं में उल्लेखनीय योगदान रहा है।

वह गाँव के अध्ययन, पवित्र परिसर और तीर्थ स्थल, क्रिया मानव विज्ञान, अनुसूचित जनजाति, लोकगीत, अनुसंधान, शहरी औद्योगिक, मानव विज्ञान नेतृत्व अध्ययन, क्षेत्रीय कार्य परंपरा, मानव विज्ञान सिद्धांतों का अध्ययन में चिंतित रहे। प्रो० एल०पी० विद्यार्थी ने सामाजिक आर्थिक कल्याण और जनजातियों के उन्नयन के लिए कड़ी मेहनत की। काम के आयाम में इतने व्यापक रहे कि उन्होंने खुद से 21 किताबें लिखी। नौ किताबों में सह लेख लिखे हैं। उनके महत्वपूर्ण कार्य– पवित्र परिसर का हिन्दू गया, द मालेर : नेचर मैन रिपिक्ट बिहार के हिल जनजातियों में परिसर, भारत में एप्लाइड मानव विज्ञान, भारत में संघर्ष और तनाव का मानव विज्ञान, भारतीय जनजातीय संस्कृति, विश्व मानव विज्ञान में सम्मान, उनके बहुआयामी शैक्षणिक काम उन्हें दुनिया के शीर्ष मानव विज्ञानी के रुप में स्थापित किया है।

3.3.1 ललिता प्रसाद विद्यार्थी के पवित्र परिसर की अवधारणाः (The concept of holy campus of Lalita Prasad Vidharithi)

पवित्र परिसर की अवधारणा एल०पी० विद्यार्थी ने अपनी पुस्तक द सेक्रेड कॉम्प्लैक्स ऑफ हिंदू गया में दी थी। उन्होंने पवित्र और महान पारंपरिक हिंदू शहर गया का अध्ययन किया और विस्तार से तीन विश्लेषणात्मक अवधारणाओं का वर्णन किया। ये एक पवित्र भूगोल है, पवित्र का एक सेट है, प्रदर्शन और पवित्र विशेषज्ञों का एक समूह। इन तीन अवधारणाओं को सामूहिक रुप से पवित्र परिसर कहा जाता है। यह मान और छोटी परंपरा के बीच निरंतरता, समझौता और संयोजन का एक स्तर दर्शाता है। जीवन की अपनी विशिष्ट शैली के साथ एक जगह के पवित्र विशेषज्ञ भारत की ग्रामीण आबादी के लिए महान परंपरा

के कुछ तत्वों को प्रसारित करते हैं। एल०पी० विद्यार्थी ने हिंदू सभ्यता को संदर्भित किया है और संस्कृति के स्थान पर वह पवित्र भूगोल की विश्लेषणात्मक अवधारणाओं को विकसित करने के लिए पवित्र शब्द को लागू करता है। पवित्र प्रदर्शन और पवित्र विशेषज्ञ। उन्होंने पवित्र शब्द को सभी पवित्र तत्वों पर विचार करने वाले एकीकृत पैटर्न को इंगित करने के लिए प्रस्तुत किया है। पवित्र परिसर संशोधन और परिवर्तन की प्रक्रिया में रहा है। पवित्र परिसर ने विभिन्न प्रकार के लोगों और परंपराओं, जातियों, संप्रदायों, वर्ग और स्थिति के लिए एक मीटिंग जगह प्रदान की और एक समय में भी भारतीय एकता की भावना को पोषित किया। राष्ट्रवाद की कमी थी। पवित्र परिसर को माध्यमिक शहरीकरण के दौर से गुजरना पड़ा।

एक अन्य प्रमुख अवधारणा जिसे विद्यार्थी मानव विज्ञान क्षेत्र में लाया गया था। वह पवित्र परिसर का था। हिंदू गया में उनके काम द सेक्रेड कॉम्प्लैक्स को मानव विज्ञान के क्षेत्र में सबसे बड़ा योगदान माना जाता है। गया हिंदू तीर्थ यात्रा का एक पवित्र शहर है। उन्होंने गया को "पवित्र भूगोल", "पवित्र प्रदर्शन" और "पवित्र विशेषज्ञों" के एक समूह के संदर्भ में वर्णित किया। इन तीन अवधारणाओं में "पवित्र परिसर" शामिल है, जो अनिवार्य रुप से चरित्र में 'महान परंपरा' है। यह महान परंपरा वह है जो हिंदू धर्म को दर्शाती है और भारत के विविध लोगों को एकजुट करती है। हिंदू गया के विद्यार्थी के अध्ययन ने दर्शाया कि पवित्र परिसर हिंदू सभ्यता की परंपराओं के बीच निरंतरता और समझौता स्थापित करता है और बनाए रखता है।

3.3.2 ललिता प्रसाद विद्यार्थी की जनजाति की अवधारणाः (Concept of Tribes of Lalita Prasad Vidharithi)

जनजातीय एवं ग्रामीण धर्म की व्याख्या एवं विश्लेषण हेतु एल०पी० विद्यार्थी ने प्रकृति मानव ईश्वर संकुल की अवधारणा का विकास किया है। उन्होंने प्रकृति मानव ईश्वर संकुन की अवधारणा का विकास एवं परीक्षण झारखण्ड राज्य के समाज परगना में निवास करने सीरिया पद्धति के ऊपर किया है। एल०पी० विद्यार्थी का मानना था कि भारत में सामाजिक वैज्ञानिकों को वेदों, उपनिषद, स्मरिटिस, पुराण और महान महाकाव्य जैसे ग्रंथों का पता लगाना चाहिए, अगर वे भारत की सामाजिक वास्तविकताओं में संवेदनशील अंतर्दृष्टि प्राप्त कर रहे हैं। उन्होंने पारंपरिक धर्म की प्रशंसा के लिए वकालत की जो उन पश्चिमी विद्यानों द्वारा नहीं रोका जाए तो विकास पर धर्म के नकारात्मक प्रभाव का प्रचार करते हैं।

एल०पी० विद्यार्थी ने घोषित किया कि सामाजिक वैज्ञानिकों को श्री अरबिंदो, रवींद्र नाथ टैगोर, स्वामी विवेकानंद, राजा राम मोहन राय आदि जैसे भारतीय सामाजिक विचारकों को नजरअंदाज नहीं करना चाहिए, जिन्होंने "आध्यात्मिक मानवता, सार्वभौमिक प्रेम और अहिंसा" के संदर्भ में बात की थी। उन्होंने

जनजातीय लोगों के बारे में कहा– "यह भारतीय मानवविज्ञानों के लिए उन्हें गंभीरता से लेने और पश्चिमी विद्यानों के विशाल लेखों से दूर नहीं ले जाने के लिए है, जिन्होंने उन्हें 'एनिमिस्ट' और 'हिंदुओं के बहुत अलग रुप' कहा।"

1951 में विद्यार्थी ने मालेर जनजाति के बारे में सीखा, जो उनके अनुसार भारत में महान मानव विज्ञान संबंधी रुचि के कुछ आदिम जनजातियों में से एक था। जब उन्हें अलग मालर्स की अत्यधिक प्राथमिकता के बारे में पता चला, तो उन्होंने उन्हें अपनी वैज्ञानिक जांच का उद्देश्य बनाने का फैसला किया। विद्यार्थी ने समझाया कि जंगलों के पारिस्थितिक आधार और स्लैश–एंड–बर्न की खेती ने मलेर जनजाति के सामाजिक–आर्थिक जीवन को कैसे आकार दिया। उन्होंने मनुष्य के साथ संबंध में मनुष्य का अध्ययन किया। आखिरकार, उन्होंने पवित्र भूगोल, पवित्र प्रदर्शनों के ढांचे में चार प्रकार के मालर आत्माओं को प्रस्तुत किया, (गोसाइयन– उदार आत्माओं, जिवे उरक्क्य– पूर्वजों, अल्वी– बुरी आत्माओं और चेरगनी– चुड़ैल या जादूगर की आध्यात्मिक शक्ति) पवित्र विशेषज्ञ प्रकृति, मनुष्य और आत्मा आवश्यकता का सहभागिता। यह विद्यालय द्वारा प्रस्तावित नेचर–मैन–स्पिरिट कॉम्प्लैक्स की प्रसिद्ध अवधारणा का आधार था।

3.4 ललिता प्रसाद विद्यार्थी के शोध कार्यों का संक्षेपः (Short description of Lalita Prasad's Vidharithi research work)

एल०पी० विद्यार्थी ने विभिन्न पहलुओं में उल्लेखनीय योगदान दिया। वह गाँव के अध्ययन, पवित्र परिसर और तीर्थ स्थलों, लागू और क्रिया मानव विज्ञान, अनुसूचित जातियों, लोकगीत अनुसंधान, शहरी–औद्योगिक मानव विज्ञान, नेतृत्व अध्ययन, क्षेत्रीय कार्य परंपरा, मानव विज्ञान सिद्धांतों के अध्ययन से चिंतित थे। उन्होंने सामाजिक–आर्थिक कल्याण और जनजातियों के उन्नयन के लिए कड़ी मेहनत की।

3.4.1 औद्योगिकरण के प्रभाव का अध्ययनः (Study of Industrialization Effect)

भारतीय मानवशास्त्र के अन्तर्गत औद्योगिकरण के प्रभावों का अध्ययन भी आरम्भ किया गया। एल०पी० विद्यार्थी की पुस्तक "इंप्लिकेशन ऑफ इंडस्ट्रीलायजेशन इन इण्डिया (1970)" झारखण्ड राज्य की रॉची के हाटिया क्षेत्र के औद्योगिक संकुल के प्रभाव का विवरण प्रस्तुत करती है। इन्होंने इसमें यह दर्शाने का प्रयास किया है कि औद्योगिक संकुल से जनजाति पर प्रतिकुल प्रभाव हुआ है। ग्राम की संरचना नष्ट हो गयी है। विस्थापन एवं पुर्नव्यास की समस्या सामने आयी है। ग्रामीण संस्थाओं में विलोपन की समस्या, ऋणगस्तता की समस्या, मनोवैज्ञानिक कुंठा की समस्या, दैहिक शोषण की समस्या का सामना करना पड़ रहा है, इत्यादि बातें प्रकाश में लायी गयी हैं।

3.4.2 व्यावहारिक एवं क्रियात्मक अध्ययन एवं अनुसंधानः (Applied and Action Study or Research)

भारतीय मानवशास्त्र में व्यावहारिक एवं क्रियात्मक मानवशास्त्रीय अध्ययन की शुरुआत की गयी। विद्यार्थी की पुस्तक एप्लाइड एंथ्रोपोलॉजी इन इण्डिया (1968) ने अपने समय के प्रसिद्ध मानव शास्त्रियों द्वारा व्यावहारिक मानवशास्त्रीय अनुसंधान एवं अध्ययन पर लिखे शोध पत्रों का संकलन है। यह पुस्तक चार भागों में विभाजित है। इसमें कुल 36 शोध पत्रों का संपादन पुस्तक के रुप में किया गया। पहले खण्ड में व्यावहारिक मानवशास्त्र से संबंधित, सिद्धांत, अवधारणा तथा कार्य प्रणालीय पहलुओं को प्रकाश में लाया गया है। दूसरे भाग में शोध पत्र, जनजातीय कल्याण योजनाओं से सम्बन्धित है। तीसरे भाग में जनजाति अध्ययनों के वैयक्तिक अध्ययन है। चौथा भाग शारीरिक मानवशास्त्र की समस्या एवं व्यावहारिक पहलुओं पर प्रकाश डालता है।

3.5 सारांशः (Summary)

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप यह जान चुके हैं कि प्रो० एल०पी० विद्यार्थी ने अपने शोध कार्यों में किन–किन बहुआयामी क्षेत्रों में कार्य किया है। तीसरे विश्व मानव विज्ञान की अवधारणा पश्चिमी और औपनिवेशिक प्रतिमानों की मौजूदा विरासत से अलग थी। उनके अति महत्वपूर्ण कार्यों में पवित्र परिसर का हिंदू गया, द मालेर बिहार के हिल जनजातियों में परिसर, जनजातीय बिहार के सांस्कृतिक कंटूर, भारत में एप्लाइड मानव विज्ञान, भारतीय जनजाति संस्कृति आदि के बारे में प्रो० एल०पी० विद्यार्थी ने अपनी बातें कहीं हैं। इन्होंने मानव विज्ञान का उदय भारत में आदि पर कार्य किया है। इस इकाई के माध्यम से जान सकते हैं। प्रो० एल०पी० विद्यार्थी का मानव विज्ञान के क्षेत्र में अति महत्वपूर्ण योगदान है, जिसे मानव विज्ञानी भूल नहीं सकते हैं। उनका यह कार्य बहुआयामी क्षेत्र में था। इन बातों को आप इस इकाई का अध्ययन करने पर जान सकते हैं।

3.6 शब्दावलीः (Glossary)

1. जनजाति : एक जनजाति परिवार अथवा परिवार समूहों का एक ऐसा

संगठन संकलन है, जिसका एक सामान्य नाम विशिष्ट भाषा, समाज व्यवस्था, संस्कृति और उत्पत्ति सम्बन्धी एक पशु कला होती है, जो एक निश्चित भूगौलिक क्षेत्र में निवास करती है। एक जनजाति के लोग किसी एक पूर्वज की संतान के रुप में अपने आपको पारस्परिक संबंधी मानते हैं।

2. पवित्र परिसर : पवित्र परिसर से तात्पर्य महान परम्परा से है, जो हिन्दू धर्म को दर्शाती है और भारत के विविध लोगों को दर्शाती है।

3. क्रियामुखी शोध : व्यावहारिक शोध के ऐसे विशिष्ट रुप को क्रियात्मक/ क्रियामुखी शोध कहते हैं, जिसका उद्देश्य वांछित सामाजिक परिवर्तन के लिए प्रभावकारी साधनों की अंवेषणा करना है।

4. संघर्ष : जब दो से अधिक व्यक्ति अथवा समूह सीमित साधनों पर नियंत्रण प्राप्त करने के लिए शांतिपूर्ण तरीके अपनाते हैं तब वह स्थिति प्रतिस्पर्धा व जब इन सीमित उद्देश्यों एवं हितों की पूर्ति के लिये बल प्रयोग किया जाता है, संघर्ष कहलाता है।

5. नेतृत्व : नेता शब्द कुछ विशिष्ट विशेषताओं से सम्पन्न व्यक्ति विशेष को इंगित करता है, जबकि नेतृत्व की अवधारणा व्यवहार प्रतिमान का संकेत देती है।

3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तरः (Answer Questions of Practise)

प्र०1 ललिता प्रसाद विद्यार्थी का जन्म किस राज्य में हुआ?

(क) उत्तर प्रदेश (ख) मध्य प्रदेश

(ग) बिहार (घ) गुजरात

उत्तर– (ग)

प्र०2 ललिता प्रसाद विद्यार्थी ने सन् 1950 में स्नातक की परीक्षा किस महाविद्यालय से उत्तीर्ण की?

(क) मेरठ कॉलेज, मेरठ (ख) पटना कॉलेज

(ग) एन०ए०एस० कॉलेज, मेरठ (घ) डिगम्बर कॉलेज, डिबाई

उत्तर– (ख)

प्र०3 ललिता प्रसाद विद्यार्थी ने सन् 1951 में स्नातकोत्तर की परीक्षा किस विषय से उत्तीर्ण की?

(क) इतिहास विषय (ख) समाजशास्त्र विषय

(ग) भूगोल विषय (घ) हिन्दी विषय

उत्तर– (ग)

प्र०4 ललिता प्रसाद विद्यार्थी ने मानव विज्ञान में एम०ए० की परीक्षा किस विश्वविद्यालय से पास की?

(क) लखनऊ विश्वविद्यालय (ख) चौ० चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ

(ग) बरेली विश्वविद्यालय (घ) इलाहाबाद विश्वविद्यालय

उत्तर– (क)

प्र०5 तृतीय विश्व मानव विज्ञान की अवधारणा किसने दी?

(क) अरविन्दो (ख) एल०पी० विद्यार्थी

(ग) मनु (घ) ए०के० सरन

उत्तर– (ख)

प्र०6 दक्षिण एशिया में एक्शन एण्ड एप्लाइड मानव विज्ञान में संस्थापक पिता कौन थे?

(क) अरविन्दो (ख) श्रीनिवास

(ग) प्रो० सरन (घ) एल०पी० विद्यार्थी

उत्तर– (घ)

प्र०7 ललिता प्रसाद विद्यार्थी ने एक एक्शन रिसर्च यूनिट की स्थापना किस विश्वविद्यालय में की है?

(क) रॉची विश्वविद्यालय (ख) चौ० चरण सिंह विश्वविद्यालय

(ग) लखनऊ विश्वविद्यालय (घ) इलाहाबाद विश्वविद्यालय

उत्तर– (क)

प्र०8 पवित्र परिसर की अवधारणा किसकी है?

(क) एल०पी० विद्यार्थी (ख) श्रीनिवास

(ग) प्रो० ए०के० सरन (घ) मजूमदार

उत्तर– (क)

प्र०9 लोकगीत अनुसंधान का शोध क्षेत्र विषय है?

(क) देसाई (ख) सरन

(ग) मजूमदार (घ) विद्यार्थी

उत्तर– (घ)

प्र०10 शहरी औद्योगिक मानव विज्ञान पर कार्य किसने किया है?

(क) सरन (ख) दुबे

(ग) विद्यार्थी (घ) घुरिये

उत्तर– (ग)

प्र०11 क्षेत्रीय कार्य परम्परा की अवधारणा किसकी है?

(क) एस०सी० दुबे (ख) एल०पी० विद्यार्थी

(ग) मजूमदार (घ) देसाई

उत्तर– (ख)

प्र०12 क्रिया मानव विज्ञान का सिद्धांत किसका है?

(क) श्रीनिवास (ख) घुरिये

(ग) देसाई (घ) विद्यार्थी

उत्तर– (घ)

प्र०13 ललिता प्रसाद विद्यार्थी की मृत्यु कब हुई?

(क) 1989 (ख) 1986

(ग) 1985 (घ) 1987

उत्तर– (ग)

3.8 संदर्भ ग्रंथ की सूचीः (References)

1. प्रो० एल०पी० विद्यार्थी (1986), "जनजातीय बिहार के जैव–सांस्कृति प्रोफाइल"।
2. प्रो० एल०पी० विद्यार्थी (2000), "भारत की जनजातीय संस्कृति"।
3. प्रो० एल०पी० विद्यार्थी (1979), "काशी का पवित्र परिसर", भारतीय सभ्यता का एक सूक्ष्मदर्शी अध्ययन।

3.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्रीः (Useful Contain)

1. इंटरनेट से संकलित सामग्री को।

3.10 निबंधात्मक प्रश्नः (Essay Types Questions)

प्र०1 प्रो० ललिता प्रसाद विद्यार्थी के संक्षेप जीवन परिचय से आप क्या समझते हैं?

प्र०2 प्रो० ललिता प्रसाद विद्यार्थी की पवित्र परिसर की अवधारणा से आप क्या समझते हो?

प्र०3 प्रो० ललिता प्रसाद विद्यार्थी की जनजाति अध्ययनों से क्या तात्पर्य है?

प्र०4 प्रो० ललिता प्रसाद विद्यार्थी के शोध कार्यों का संक्षेप में वणन कीजिए।

प्र०5 आप उनके अध्ययन से औद्योगिकरण के प्रभाव से क्या समझते हैं?

प्र०6 प्रो० ललिता प्रसाद विद्यार्थी के क्रियात्मक शोध/व्यावहारिक अनुसंधान पर प्रकाश डालो।

प्र०7 प्रो० ललिता प्रसाद विद्यार्थी के क्रिया मानव विज्ञान से क्या तात्पर्य है?

प्र०8 प्रो० ललिता प्रसाद विद्यार्थी के शहरी औद्योगिक मानव विज्ञान से क्या तात्पर्य है?

प्र०9 प्रो० ललिता प्रसाद विद्यार्थी के "क्षेत्रीय कार्य परम्परा" का वर्णन करो।

प्र०10 प्रो० ललिता प्रसाद विद्यार्थी के मानव विज्ञान से क्या तात्पर्य है?

इकाई -4
डॉ. भीमराव अम्बेडकर

इकाई की रूपरेखा–

4.0 उद्देश्य
4.1 प्रस्तावना
4.1.1 जीवन परिचय
4.2 पद्धतिशास्त्र
13.2.1 डॉ. अम्बेडकर की विचारधारा
4.3 डॉ. अम्बेडकर का भारतीय सामाजिक व्यवस्था के सम्बन्ध में विचार
4.3.1 वर्ण व्यवस्था के सम्बन्ध में डॉ. अम्बेडकर के विचार
4.3.2 जाति व्यवस्था के सम्बन्ध में डॉ. अम्बेडकर विचार
4.3.3 जाति व्यवस्था के सम्बन्ध में डॉ. अम्बेडकर तथा महाँत्मा गाँधी के विचार
4.3.4 धर्मों के सम्बन्ध में डॉ. अम्बेडकर विचार
4.3.5 बौद्ध धर्म के सम्बन्ध में डॉ. अम्बेडकर के विचार
4.4 डॉ. अम्बेडकर का सामाजिक न्याय की अवधारणा
4.5 डॉ. अम्बेडकर का दलित उद्धार
4.6 निष्कर्ष
4.7 भावी अध्ययन
4.8अभ्यासार्थ प्रश्न
4.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

4.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के निम्न उद्देश्य हैं:–
1–डॉ. भीमराव अम्बेडकर के जीवन परिचय को जानना।
2–डॉ. अम्बेडकर के पद्धतिशास्त्र को जानना।
3–डॉ. अम्बेडकर का विचारों को जानना।
4–भारतीय सामाजिक व्यवस्था के सम्बन्ध में अम्बेडकर के विचार के जानना।
5–भारतीय जाति व्यवस्था के सम्बन्ध में अम्बेडकर के दृष्टिकोण को समझना।
6–धर्म के सम्बन्ध में अम्बेडकर के विचार एवं दृष्टिकोण को समझना।
7–बौद्ध धर्म के प्रति अम्बेडकर के लगाव व इसकी वैज्ञानिकता को समझना।
8–डॉ. अम्बेडकर का सामाजिक न्याय की आवधारणा को समझना।
9–डॉ. अम्बेडकर द्वारा दलितों के उद्धार के लिए किये गए प्रयास को समझना।

4.1 प्रस्तावना

परम्परागत भारतीय सामाजिक व्यवस्था वर्ण तथा जाति पर आधारित है। वर्ण व्यवस्था प्रारम्भ में कर्म पर आधारित था। जिसमें कोई भेदभाव छुआ–छूत नहीं था। व्यक्ति अपनी योग्यता एवं क्षमता के आधार पर किसी भी वर्ण का सदस्य हो सकता था। लेकिन कालान्तर में यह जन्म पर आधारित हो गया था। एवं यह व्यवस्था धीरे–धीरे जाति व्यवस्था में बदल गई। जाति व्यवस्था भारतीय समाज में वंशानुगत व्यवसाय, अंतःविवाह, खान–पान सम्बन्धी निषेध, शुद्धता एंव प्रदूषण आदि समाहित हो गया। जिससे जाति व्यवस्था में कठोरता आ गई। भारत में ब्रिटिश शासन के आने से अंग्रेजों द्वारा नये–नये नियम कानून लाए गए जो मानवतावादी सिद्धान्त पर आधारित था। प्रत्येक मनुष्य का कानून के नजर में समान बनाया गया है। प्रत्येक व्यक्ति को प्राकृतिक अधिकार प्रदान किये गए। इन सबका ही परिणाम था कि भारत में कई समाज सुधार आंदोलन प्रारम्भ हुए। इन आंदोलनों में विशेष रूप से महिला एवं दलितों के उद्धार एवं समानता की बात की गई। शिक्षा, स्वतंत्रता, समानता जैसे मुद्दे आंदोलनों के प्रमुख विषय रहे। इन्हीं का परिणाम था कि डॉ. अम्बेडकर जैसे दलित व्यक्ति को ऊपर उठने का मौका मिला जो आगे चलकर न सिर्फ दलितों के मसीहा बने बल्कि स्वतंत्रता के पश्चात् संविधान निर्माण में अपना योगदान दिया। डॉ. अम्बेडकर के दलित उद्धार एवं भारतीय सामाजिक व्यवस्था के सम्बन्ध में जानने से पहले उनका जीवन परिचय जानने का प्रयास करेंगे।

4.1.1 जीवन परिचय

डॉ. भीमराव अम्बेडकर का जन्म मध्य प्रदेश के इन्दौर जिले के महू नामक गाँव में 14 अप्रैल, 1891 में हुआ था। डॉ. अम्बेडकर के पिता का नाम रामजी सकपाल तथा माता का नाम भीमाबाई था। अम्बेडकर महार जाति से सम्बन्धित थे। महार मूलतः महाराष्ट्र की एक प्रमुख जाति है जो अछूत जाति से सम्बन्धित है। डॉ. अम्बेडकर के बचपन का नाम भीम सकपाल था। ये अपने माता पिता की चौदहवीं सन्तान थे। पाँच वर्ष की अवस्था में ही उनकी माता भीमाबाई का देहान्त हो गया। फलस्वरूप डॉ. अम्बेडकर का लालन–पालन उनकी चाची मीराबाई द्वारा किया गया। मीराबाई इन्हें प्यार से 'भीमा' नाम से पुकारती थी। अपनी चाची की प्रेरणा से अम्बेडकर ने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा प्रारम्भ की और अनेक कठिनाईयों के बाद भी किसी न किसी रूप में अपना अध्ययन जारी रखा।

डॉ. अम्बेडकर की प्रारम्भिक शिक्षा महाराष्ट्र के सतारा जिले के माके प्राथमिक विद्यालय से प्रारम्भ हुई तत्पश्चात् वे पिता के साथ बम्बई आ गए एवं बम्बई में ही इनका ऐलिफिंस्टन हाईस्कूल में नामांकन/दाखिला कराया गया जहाँ से अम्बेडकर ने 1907 में हाईस्कूल की परीक्षा पास की, उन दिनों महार जाति के एक बालक के लिए मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण करना बहुत बड़ी उपलब्धि थी। क्योंकि महार एक अछूत जाति थी एवं अछूतों के साथ विभिन्न प्रकार से भेद–भाव किये जाते थे। डॉ. अम्बेडकर प्रारम्भ से ही संस्कृत पढ़ना चाहते थे लेकिन संस्कृत के किसी भी शिक्षक ने उन्हें शिष्य के रूप में इस लिए स्वीकार नहीं किया क्योंकि वे जन्म से अछूत थे। स्कूल में शिक्षक तथा सहपाठी उनके साथ छुआ–छूत एवं

भेद–भाव करते थे। यहाँ तक कि शिक्षक डॉ. अम्बेडकर के कॉपी तथा कलम को भी नहीं छूते थे और न ही दूसरे बच्चों की तरह उन्हें शिक्षा देते थे। स्कूल में छुआ–छूत का यह आलम था कि उन्हें दूसरे बच्चों के साथ स्कूल में पानी भी नहीं पीने दिया जाता था जिसके कारण उन्हें पूरे दिन प्यासा रहना पड़ता था। हाईस्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण होने से पहले ही उसका विवाह रामाबाई नाम की लड़की से सन्1905 में हो गया। (1907 में सतारा में हाईस्कूल पास करने के बाद उन्होंने एलफिंस्टन कॉलेज मुम्बई में प्रवेश लिया) 1907 में अम्बेडकर ने हाईस्कूल पास किया तो इसके लिए सर्वत्र उनकी प्रशंसा की गई। उस समय महाराष्ट्र के सुप्रसिद्ध समाज सुधारक के. ए. केलूस्कर द्वारा एक सभा में अम्बेडकर का अभिवादन किया गया। केलूस्कर ने ही एक मेधावी छात्र के रूप उनकी भेंट बड़ौदा के महाराजा गायकवाड़ से करवाई। महाराजा ने अम्बेडकर से प्रसन्न होकर उच्च शिक्षा हेतु उन्हें प्रतिमाह पच्चीस रूपये की छात्रवृति देना स्वीकार किया। इस छात्रवृति ने अम्बेडकर की शिक्षा प्राप्त करने के लिए आत्म विश्वास को बढ़ाया। जिसके कारण अम्बेडकर कॉलेज की शिक्षा प्राप्त करने में सफल रहे। इसी छात्रवृति की वजह से वे सन् 1912 बम्बई के एलिफिंस्टन कॉलेज से स्नातक की परीक्षा उत्तीर्ण कर स्नातक की उपाधि प्राप्त की। स्नातक परीक्षा पास करने के बाद अम्बेडकर ने बड़ौदा राज्य की सेना में लैफ्टिनेंट के पद पर नौकरी करने लगे लेकिन उनके पिता गम्भीर रूप से बीमार हो गए जिसके कारण वे नौकरी छोड़कर 1913 में बम्बई आ गए। बम्बई में ही उनके पिता रामजी सकपाल का देहान्त हो गया। पिता के देहान्त के बाद पुनः अम्बेडकर ने अपनी शिक्षा को आगे जारी रखा। इसके उच्चशिक्षा के लिए बड़ौदा के महाराजा गायकवाड़ द्वारा छात्रवृति देना स्वीकार कर लिया। बड़ौदा के महाराजा स्वयं भी मानवतावादी एवं प्रगृतिशील विचार के व्यक्ति थे एवं अपने राज्य में सामाजिक समानता लाने के लिए अनेक प्रयत्न किये थे। उन्होंने अपने राज्य में दलितों की दशा में सुधार के लिए अनेक प्रत्यन्न किये। उन्हीं के द्वारा दी गई छात्रवृति की सहायता से सन् 1913 ई. पू. में डॉ. अम्बेडकर अमेरिका के कोलंबिया विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया और सन् 1915 ई. पू. कोलंबिया विश्वविद्यालय से अर्थशास्त्र में एम.ए. की उपाधि प्राप्त की। इस प्रकार डॉ. अम्बेडकर को महार जाति का पहला व्यक्ति होने का गौरव जिन्होंने विदेशों में जाकर उच्च शिक्षा प्राप्त किया। भारत के प्रथम अस्पृश्य व्यक्ति थे जिन्होंने इतनी उच्च शिक्षा प्राप्त की। अपने एम.ए. की पढ़ाई के दौरान उन्हें विश्व प्रसिद्ध अर्थशास्त्री सैलिगमैन का सानिध्य प्राप्त हुआ जिसका अम्बेडकर के विचार पर व्यापक प्रभाव पड़ा। 1916 में अम्बेडकर ने कोलंबिया विश्वविद्यालय से पीएच. डी. की उपाधि प्राप्त की। इस उपाधि को लेने के बाद 1916 में वे लंदन चले गए। जहाँ उन्होंने कानून की पढ़ाई की। 1921 में अम्बेडकर ने लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स में प्रवेश लिया और कार्यशास्त्र तथा राजनीतिशास्त्र का अध्ययन किया। यहाँ से अम्बेडकर ने मास्टर ऑफ साइंस और पीएच.डी. की उपाधि ली इनके पीएच.डी. का शोध विषय ''द प्राब्लम ऑफ रूपी'' था। यह उपाधि उन्हें लंदन विश्वविद्यालय से प्राप्त हुई साथ ही उन्होंने यहाँ से 'बार एट लॉ' भी किया।

अपनी शिक्षा समाप्त कर डॉ. अम्बेडकर सन् 1923 में भारत लौट आए और बम्बई वकालत शुरू की तथा वकालत के साथ साथ दलितों के उत्थान के लिए कार्य भी प्रारम्भ किया। अपने बचपन मे एक अस्पृश्य जाति से सम्बन्धित होने के कारण उन्होंने कई कठिनाईयों का सामना किया था। जब अम्बेडकर बड़ौदा राज्य की सेवा मे सचिव के पद पर नियुक्त हुए तब उच्च पदस्थ अधिकारी होने के बावजूद उन्हें निम्न जाति होने कारण वहाँ उन्हें कई अपमान जनक स्थितियों का सामना करना पड़ा। उन्हें पद के अनुसार न तो सुविधाएँ प्राप्त हुई और न ही उनसे निम्न पदाधिकारी या कर्मचारी उनकी आज्ञा का पालन करते थे। ऐसी अपमानजनक परिस्थितियों में अपने सम्मान के लिए बड़ौदा राज्य की नौकरी छोड़ दी। बाद में बम्बई

के एक कॉलेज में राजनीतिक अर्थशास्त्र के प्राध्यापक के रूप में नौकरी मिली। लेकिन यहाँ भी अम्बेडकर की दलित जाति के होने के कारण अस्पृश्य होन वेदना झेलनी पड़ी।

डॉ. अम्बेडकर के साथी प्राध्यापक भी उनके साथ छुआ–छूत की भावना रखते थे। कॉलेज छात्रों तथा प्राध्यापकों के इस अपमान जनक व्यवहार ने उन्हें चिंतन करने के लिए विवश किया कि दलितों का उद्धार कैसे किया जाए। डॉ. अम्बेडकर का मानना था कि यदि दलितों का उद्धार करना है तो उन्हें शिक्षित एवं जागरूक बनाया जाए। साथ ही संगठनात्मक क्षमता द्वारा दलितों को संगठित किया जाए। इसके लिए डॉ. अम्बेडकर ने सन् 1920 में दलितों की समस्याओं के प्रति लोगों का ध्यान आकृर्षित करने के लिए 'मूक नायक' नामक एक समाचार पत्र का सम्पादन/प्रकाशन प्रारम्भ किया। डॉ. अम्बेडकर ने दलितों को शिक्षित करने के लिए 'बहिस्कृत हितकारिणी सभा' की स्थापना की। बहिस्कृत हितकारिणी सभा के नेतृत्व मे कई स्कूल खोले गए जिसमें दलितों को शिक्षा दी गई।

4.2 पद्धतिशास्त्र

पद्धतिशास्त्र का सम्बन्ध वास्तविक ज्ञान की रचना से नहीं होता बल्कि इसके अन्तर्गत उस कार्यप्रणाली का अध्ययन किया जाता है जिसके द्वारा प्रत्ययों और तार्किक ज्ञान तथा शोध विधियों का निर्माण होता है। सामाजिक विज्ञानों में इसका प्रयोग विज्ञान के दर्शन में व्यापक अर्थों में किया जाता है। अर्थात सामाजिक वैज्ञानिक और अन्य अनुसंधानकर्ता किस प्रकार अपने अनुसंधानक को प्रारम्भ करता है किस प्रकार के गवेषणा करते हैं। किस प्रकार साक्ष्यों का मूल्याँकन करते हैं और क्या गलत है आदि। इस इकाई में हम यह जानने का प्रयास करेंगे कि डॉ. अम्बेडकर ने दलितों के अध्ययन के लिए किस पद्धतिशास्त्र का उपयोग किया तथा दलितों के सम्बन्ध उनका क्या विचार था।

डॉ. अम्बेडकर ने अपने पद्धतिशास्त्र में दलितों से सम्बन्धित तथ्य/आँकड़े एकत्रित करने के लिए व्यक्तिगत अध्ययन/एकल अध्ययन का उपयोग करते हैं। व्यक्तिक अध्ययन एक व्यक्ति, एक संस्था, एक परिवार, एक समुदाय, एक घटना, एक व्यवस्था या एक सम्पूर्ण संस्कृति हो सकता है। व्यक्तिगत अध्ययन तथ्य संकलन की एक प्रविधि होने की अपेक्षा अध्ययन विश्लेषण का एक उपागम है। एक शोध–प्रकल्प, या एक व्यूह रचना है जो अध्ययन के किसी एक इकाई को उसकी सम्रगता में अध्ययन करने पर बल देता है। डॉ. अम्बेडकर अपने अध्ययन में 1937 और 1947 के चुनावों का अध्ययन करते हैं। इन चुनावों में अनुसूचित जातियों के लिए आरक्षित निर्वाचन क्षेत्रों का अध्ययन करते हैं और अपने अध्ययन को मूल बिन्दू तक पहुँचाने के लिए डॉ. अम्बेडकर ने वैयक्तिक अध्ययन पद्धति का उपयोग किया हैं। डॉ. अम्बेडकर का ऐसा भी अध्ययन है जिसमें उन्होंने प्राचीन ग्रन्थों एवं पुरातत्वशास्त्र का उपयोग किया है। डॉ. अम्बेडकर ने अपने अध्ययन 'हू वॉज द शुद्राज' में प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद तथा मनुस्मृति का उपयोग किया जो कुछ विशिष्ट सैद्धान्तिक आधारों का परीक्षण था। इन समूहों में जो कुछ भी आधार है उसकी चर्चा उन्होंने की। डॉ. अम्बेडकर के अनुसार शुद्धता तथा प्रदूषण हिन्दू जाति व्यवस्था की जड़े पहले से 1000 और 1500 ई. पू. के बीच पहले से ही थी। जब आर्य सिन्धु नदी घाटी के पास बसे। ऋग्वैदिक अवधि एवं पवित्र पाद पारम्परिक हिन्दू समाज में चार वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की चर्चा है। ऋग्वेद में वर्णित चार वर्णों में 2000 से अधिक उपजातियाँ भी शामिल हैं। इन जातियों के अलावा पाँचवा जनसंख्या समूह है जो बिना किसी

जाति के शाब्दिक रूप से निर्वासित होते हैं। उनके साथ अछूत के रूप में व्यवहार किया जाता है। 1950 के भारतीय संविधान ने अस्पृश्यता को अवैध रूप में पेश किया आज ये लोग खुद को दलित कहते हैं। डॉ. अम्बेडकर के अनुसार हिन्दू धर्म वर्ण व्यवस्था पर आधारित है और यह वर्ण व्यवस्था ही सामाजिक असमानता एवं सामाजिक अन्याय का कारण है। हिन्दू धर्म के सम्बन्ध में डॉ. अम्बेडकर के विचार महात्मा गाँधी के विचारों से भिन्न हैं। डॉ. अम्बेडकर तथा गाँधी के विचारों में भिन्नता का विश्लेषण अगली इकाई में करेंगे।

4.2.1 डॉ. अम्बेडकर की विचारधारा

डॉ. भीमराव अम्बेडकर का भारतीय समाज की संरचना एवं पुनर्निर्माण में विशिष्ट योगदान है। डॉ. अम्बेडकर के अनुसार मानव जीवन अर्थपूर्ण है निरर्थक नहीं। डॉ. अम्बेडकर के ऊपर प्रो. ड्यूम्बी, टी. एच. ग्रीन, फेबियन्स एडविन सेलिगमैन जैसे विद्वानों के विचारों एवं आदर्शों का प्रभाव था। डॉ. अम्बेडकर, प्रो. ड्यूम्बी के मानवतावाद एवं उदारवाद के विचार से बहुत अधिक प्रमाणित थे। इनके अनुसार हमें अपनी पुरानी संस्कृति में से केवल उन्हीं बातों का चमन करना चाहिए जो उपयोगी हो। डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने ड्यूम्बी से उपयोगितावादी व्यवहारिकता का सिद्धान्त सीखा तथा उनकी गतिशील पद्धति एवं सिद्धान्तों का भी अनुकरण किया। जिसका सीधा सम्बन्ध नैतिकता, मनुष्यता, एवं समाज से था। डॉ. अम्बेडकर का दर्शन वास्तविक जीवन से सम्बन्धित था कोरी कल्पना से नहीं। वे स्वर्ग–नरक जैसी पारलौकिता में विश्वास नहीं करते थे। डॉ. अम्बेडकर का मानना था कि प्रत्येक समाज को एक व्यवहारिक नैतिकता व सामाजिक धर्म का पालन करना चाहिए और इसका मूल्याँकन आधुनिकता, तार्किकता एवं उपयोगिता के आधार पर होना चाहिए। डॉ. अम्बेडकर के अनुसार धर्म व्यक्ति के लिए है। व्यक्ति धर्म के लिए नहीं। धर्म हमेशा नैतिकता, तार्किकता, विवेक और मानवीय सम्बन्धों पर आधारित होना चाहिए। इनके अनुसार ऐसे धर्म ही समाज को स्वतंत्रता, समानता, एवं बंधुत्व के आदर्शों की तरफ ले जाता है। डॉ. अम्बेडकर ने भारत में प्रचलित हिन्दू धर्म, इस्लाम धर्म, इकाई धर्म, बौद्ध धर्म आदि का अध्ययन किया तथा पाया कि बौद्ध धर्म एक दूसरे के साथ प्रेम भावना पर आधारित है। इस प्रकार डॉ. अम्बेडकर के अनुसार बौद्ध सभी धर्मों से श्रेष्ठ धर्म है।

4.3 डॉ. अम्बेडकर का भारतीय सामाजिक व्यवस्था के सम्बन्ध में विचार

4.3.1 वर्ण व्यवस्था के सम्बन्ध में डॉ. अम्बेडकर के विचार–

डॉ. अम्बेडकर का मानना है कि वर्ण व्यवस्था के लिए मुख्य रूप से प्राचीन भारतीय ग्रन्थ ऋग्वेद और मनुस्मृति जिम्मेदार है। इसके अनुसार चार वर्णो की उत्पत्ति ऋग्वेद के 10 वें मंडल के पुरूषशुक्त में वर्णित है पुरूषशुक्त के अनुसार

ऊँ ब्राह्मणोडस्थ मुखमासीद् बाहू राजन्य कृतः।
ऊरूतदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां शुदों अजायतः।।

अर्थात उस महान पुरूष के मुख से ब्राह्मण और भुजाओं से क्षत्रिय उत्पन्न हुए और दोनों जंघाओं से वैश्य एवं पैर से शुद्र प्रकट हुए।

ऋग्वेद के अनुसार यह व्यवस्था कर्म पर आधारित थी जिसमें ब्राह्मण को पूजापाठ करना क्षत्रियों को राजकाज, वैश्य को आर्थिक गतिविधि एवं शूद्रों को उपरोक्त तीनों वर्णों की सेवा करना बताया बताया गया है। यह वर्ण व्यवस्था कर्म पर आधारित थी। जन्म पर नहीं डॉ. अम्बेडकर के अनुसार हिन्दू समाज का वर्तमान स्वरूप रूढ़िवादिता एवं विकृतियों से ग्रस्त हैं। इन्होंने वर्णव्यवस्था का विरोध किया और बताया कि शुद्रवर्ण के सदस्यों के सामाजिक अन्याय एवं भेदभाव पूर्ण व्यवहार के लिए मुख्य रूप से चतुवर्ण की व्यवस्था करने वाली 'मनुस्मृति' जिम्मेदार है। डॉ. अम्बेडकर के अनुसार यह वर्ण व्यवस्था न सिर्फ अवैज्ञानिक है बल्कि अन्यायकारी भी है। इस वर्ण व्यवस्था ने हिन्दू समाज के सदस्यों की स्थाई रूप से कैद कर उन्नति नहीं होने देती।

डॉ. अम्बेडकर के अनुसार मनु आधारित वर्ण व्यवस्था के बारे में मैंने जैसा सुना है कि यह कर्म पर आधारित थी यदि वैसी ही बनी ही बनी होती तथा समय के साथ इसमें जन्म आधारित नहीं होता तो सम्भवतः वर्तमान समय में भारत में जो स्थिति है वैसी समस्या का सामना नहीं करना पड़ता और केवल जातिवाद को छोड़कर कोई अन्य विषय चल रहा होता। जैसे गरीबी–अमीरी की बढ़ती रगई आदि तथा कम से कम सभी हिन्दू एक स्वर, एक मत व एक शरीर के विभिन्न हिस्से बने रहते। अर्थात सभी भारतीय समाज के एक लक्ष्य होती। लेकिन इस वर्ण व्यवस्था के विकृत रूप ने विदेशी ताकतों व देश के भीतर मौजूद राष्ट्र द्रोहियों को हमारे देश के टुकड़े–टुकड़े करने का स्वप्न देखते हैं। इस सामाजिक व्यवस्था ने ही विदेशी ताकतों की 'फूट डालो और शासन करो' की नीति उपलब्ध कराई।

डॉ. अम्बेडकर भारतीय सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत वर्ण व्यवस्था की कुट आलोचना करते हैं। इनके अनुसार वर्ण व्यवस्था न सिर्फ भारतीय समाज की प्रगृति, उन्नति को अवरूद्ध करता है बल्कि समाज में ऊँच–नीच का भेदभाव उत्पन्न कर सामाजिक अन्याय को भी बढ़ावा देता है। डॉ. अम्बेडकर मनुस्मृति की कटु आलोचना करते हैं और बताते हैं कि मनु समाज के तीन वर्णों ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य की तुलना में शूद्र को उनके सेवक के रूप में निम्न स्थान प्रदान किया साथ ही साथ शूद्रों से अपनी रक्षा करने की दृष्टि से उचित साधनों से भी वंचित कर दिया। शूद्रों को अपने अन्याय से प्रतिकार करने का कोई अधिकार एवं साधन नहीं था। इस प्रकार शूद्र स्थायी रूप से अधिकार एवं साधन विहिन होना उपरोक्त तीनों वर्णों के अन्याय का शिकार होने के लिए बाध्य थे। डॉ. अम्बेडकर के अनुसार 'सामाजिक अधिकारों की दृष्टि से मनुस्मृति निकृष्ट है। सामाजिक अन्याय का मनुस्मृति की तुलना में कोई भी नहीं होगा।'

डॉ. अम्बेडकर के ऋग्वेद तथा मनुस्मृति का उल्लेख करते हुए यह बताया कि आर्यों की मूल सामाजिक व्यवस्था में शूद्र वर्ण का कहीं उल्लेख नहीं है। इसके अनुसार प्रारम्भ में तीन वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य था बाद के समय में एक चौथा वर्ण शूद्र जुड़ा। चार वर्णों का वर्णन ऋग्वेद के 10 वें मंडल के पुरूषशुक्त में किया गया है। ऋग्वेद का दूसरे से लेकर नौवें मंडल प्राचीन है जबकि पहला और दसवाँ मंडल बाद में जोड़ा गया अर्थात दसवाँ मंडल का पुरूषशुक्त ऋग्वेद का मूल भाग नहीं है बल्कि बाद के समय में धर्माचार्यों द्वारा जोड़ा गया। डॉ. अम्बेडकरके अनुसार आर्य सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत तीन ही वर्ण थे एवं शूद्र क्षत्रिय वर्ण से सम्बन्धित थे। ब्राह्मणों ने इस क्षत्रिय वर्ण को पराजित किया तथा इस पराजित वर्ण को शूद्र वर्ण के रूप में परिवर्तित कर दिया साथ ही इन वर्णों को वैधानिक बनाने के लिए इसे धर्म के साथ जोड़ दिया और ये बताया कि इस व्यवस्था को हमने नहीं बल्कि ईश्वर ने बनाया है। डॉ. अम्बेडकर के

अनुसार या ब्राह्मणों का एक षड़यंत्र मात्र था जिसने शूद्रों को स्थाई रूप से आधार विहिन एवं साधन विहिन स्थिति में ला दिया। इस प्रकार भारतीय सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत वर्ण व्यवस्था मौलिक रूप से न तो वास्तविक है और न ही सामाजिक न्याय की दृष्टि से व्यवहारिक। अतः डॉ. अम्बेडकर का मानना है कि शूद्रों के उद्धार के लिए वर्ण व्यवस्था का समाप्त होना अति आवश्यक है और इसके लिए शूद्र वर्ण को जागरूकता की परम आवश्यकता है।

4.3.2 जाति व्यवस्था के सम्बन्ध में डॉ. अम्बेडकर विचार

डॉ. अम्बेडकर के अनुसार भारत में जाति व्यवस्था में दो अलग–अलग अवधारणाएँ हैं, पहली वर्ण और दूसरी जाति। वर्तमान समय में वर्ण की वास्तविकता समाप्त हो चुकी है और वह जाति में बदल चुकी है। पहले यह त्वचा के रंग के आधार पर था लेकिन बाद यह जन्म पर आधारित हो गयी। डॉ. अम्बेडकर के अनुसार जाति व्यवस्था हिन्दुओं की सामाजिक एवं धार्मिक संस्था है जिनकी जनसंख्या लगभग 80 प्रतिशत है। डॉ. अम्बेडकर के अनुसार जाति सामाजिक स्तरीकरण का कठोरतम रूप है जिसमें रैंक तथा स्थिति की गतिशीलता सम्भव नहीं है। इस जाति व्यवस्था ने मुसलमान, ईसाई और सिक्खों को भी प्रभावित किया है जिसके कारण इन तीनों में भी जातियाँ पाई जाती हैं। भारत में आर्य एवं दृविड़ सभ्यता से पहले आदिवासी समूह रहते थे जो पिछड़े वर्ग के सदस्य थे वे हिन्दू समाज का हिस्सा नहीं थे तब भी इन्होंने दलितों के प्रति अस्पृश्यता की शुरूआत कर दी–जिनके पास जाति का वर्चस्व है।

जाति व्यवस्था की उत्पत्ति–

डॉ. अम्बेडकर कहते हैं कि जब जाति व्यवस्था प्रारम्भ हुआ तब यह स्थापित करना कठिन था कि जाति की उत्पत्ति कैसे हुई लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं है कि शासक वर्ग ने अपनी सुविधा के लिए जाति नामक संस्था द्वारा सफल प्रशासन की ओर ले जाती है। जाति व्यवस्था के उत्पत्ति या स्थापना के विभिन्न सिद्धान्त हैं। ये धार्मिक, रहस्यमय, जैविक, सामाजिक एवं ऐतिहासिक सिद्धान्त हैं। धार्मिक सिद्धान्त के अनुसार महान पुरूष ने अपने शरीर के चार अंगों से चारों वर्णों को बनाया जिसकी चर्चा पहले की इकाई में किया जा चुका है, लेकिन उन्होंने यह नहीं बताया कि कैसे प्रत्येक वर्णों में अछूत स्थापित किये गए। अन्य धार्मिक सिद्धान्त भी यह दावा करता है कि दुनिया के निर्माता ने ही अपने शरीर के चार अंगों से चार वर्णों को बनाया। इरावती कर्वे के अनुसार चार रैंक प्रणाली सत्तारूढ़वर्ग की रचना थी जिसमें मूल रूप से तीन रैंक प्रणाली थी जिनमें रैंक के मतभेद सभी लोगों को जन्म से मृत्यु तक कुछ अनुष्ठानों और संस्कारों का अधिकार था।

जैविक सिद्धान्त यह दावा करता है कि सभी मौजूदा चीजों, एनिमेटेड और एनिमेटेड, अन्तर्निहित तीन गुणों में अलग–अलग विभागों में होता है। सत्व गुण, रजो गुण, तमों गुण। सत्व गुण ब्राह्मण में, रजों गुण क्षत्रिय में एव वैश्य में तमों गुण शूद्र में शामिल है। प्राचीन भारत में धर्म का महत्वपूर्ण स्थान था। राजा को भगवान माना जाता था। राजा ने विभिन्न कार्यात्मक समूहों के लिए अलग स्थिति दी। सेनर्ट ने जाति व्यवस्था की उत्पत्ति विधी सम्बन्धि भोजन के आधार पर समझाया।

सामाजिक ऐतिहासिक सिद्धान्त–

सामाजिक ऐतिहासिक सिद्धान्त के अनुसार जाति व्यवस्था भारत में आर्यों के आने के बाद शुरू हुई। डॉ. भीमराव अम्बेडकर का मानना है कि आर्यों से पहले भारत में अन्य समुदाय के लोग जैसे, मंगोलायड़, द्रविडियन और ऑस्ट्रालोइड्स रहते थे। इनके अनुसार जब आर्य भारत में आए तो आर्यों का सर्म्पक द्रविड़ियन और ऑस्ट्रालोइड्स के साथ हुआ। आर्यों ने यहाँ के स्थानीय लोगों को युद्ध में पराजित किया साथ ही आर्यों ने भारत के उत्तरी क्षेत्र पर नियंत्रण स्थापित कर लिया एवं यहाँ के मूल निवासियों को उत्तर भारत के दक्षिण में, जंगलों एवं पहाड़ों की ओर धकेल दिया। आर्यों ने उत्तर भारत क्षेत्र में अपनी स्थिति मजबूत करने के लिए सबसे पहले कार्यों के आधार पर अपने समाज को संगठित किया और आर्य समाज को तीन समूहों में विभक्त किया। पहला राजायण नामक योद्धा था जो बाद में अपना नाम क्षत्रिय बदल दिया। दूसरा समूह ब्राह्मणों का पूजारी था और तीसरे समूह के अन्तर्गत कारीगर एवं किसान आते थे। आर्यों ने अपनी स्थिति सुदृढ़ करने के लिए कुछ सामाजिक–धार्मिक योग्यता निर्धारित की जो सिर्फ उन्हें पुजारी, योद्धा और समाज के व्यवसायी होने की इजाजत देता था।

वर्ण शब्द का अर्थ त्वचा के रंग से है वर्ग से नहीं हिन्दू धार्मिक कहानियों में अच्छे आर्यों और गहरे रंग के राक्षसों के बीच कई युद्धों की चर्चा है, लेकिन वास्तविकता यह है कि काली चमड़ी दास वास्तव में भारतीय मूल के निवासी थे जिन्हें आर्यों ने राक्षस, शैतान, राक्षसों के रूप में गढ़ा था दास। इसलिए जाति व्यवस्था अचानक नहीं आई बल्कि यह भारतीय सामाजिक विकास की एक लम्बी प्रक्रिया का परिणाम था। डॉ. अम्बेडकर के अनुसार वर्तमान जाति व्यवस्था के विकास के लिए कई कारक जिम्मेदार रहे हैं:–

- वंशानुगत व्यवसाय
- ब्राह्मणों की स्वयं को शुद्ध रखने की इच्छा
- राज्य के कठोर एवं एकात्मक नियंत्रण की कमी
- अवतारवाद एवं कर्म के सिद्धान्त में विश्वास
- भारतीय प्रायद्वीप का भौगोलिक स्थिति
- हिन्दू समाज का स्थिर प्रकृति आदि

इन कारकों के समय–समय पर छोटे अंतर के आधार पर छोटे समूहों के गठन को बढ़ावा दिया।

4.3.3 जाति व्यवस्था के सम्बन्ध में डॉ. अम्बेडकर तथा महाँत्मा गाँधी के विचार

डॉ. अम्बेडकर और महाँत्मा गाँधी दोनों ही समानता तथा न्याय के आधार पर दलितों की दशा को सुधारने के लिए कटिबद्ध थे फिर भी उनके बीच में दूरी क्यों बनी रही ? यह सच है कि राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलनों के अन्तर्गत गाँधी जी यह समझ चुके थे कि दलित जातियों की स्थिति में सुधार किये बिना स्वतंत्रता आन्दोलन को मजबूत नहीं बनाया जा सकता लेकिन डॉ. अम्बेडकर को यह विश्वास नहीं था कि कुछ मामूली प्रयत्नों से दलित जातियों के साथ वास्तविक न्याय किया जा सकता है। समय–समय पर उन्होंने इस विषय पर गाँधी जी से लम्बे वार्तालाप भी किये लेकिन उनसे वह सन्तुष्ट नहीं हो सके। इसी आधार पर उन्होंने अपनी पुस्तक 'श्री गाँधी और अछूतों की मुक्ति' में अपने विचारों को विस्तार से स्पष्ट

करते हुए महाँत्मा गाँधी के प्रत्यनों से असहमति व्यक्त की। उन्होंने लिखा कि संसार के सभी राष्ट्रों में दासता, बेगार तथा दमन की स्थिति लगभग समाप्त हो चुकी है लेकिन कौन–सी दशाएँ हैं जिनके कारण भारत में अभी तक दलितों की दशाओं में कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं हो सका। उनका मानना था कि आज भी दलितों के प्रति उच्च जातियों की सोच में किसी तरह का परिवर्तन नहीं हुआ है। आज भी दलित नागरिक सुविधाओं से वंचित हैं तथा प्रकाश की कोई ऐसी किरण नहीं दिखायी पड़ रही जिसके सहारे वे आगे बढ़ सकें।

वैचारिक और व्यावहारिक धरातल पर डॉ. अम्बेडकर तथा महाँत्मा गाँधी के बीच जो मतभेद था, उन्हें मुख्यतः निम्नांकित तीन बिन्दुओं के आधार पर समझा जा सकता हैः–

1–महाँत्मा गाँधी यह मानते थे कि हिन्दू समाज के विघटन का मुख्य कारण जाति व्यवस्था है, वर्ण व्यवस्था नहीं। उनके अनुसार वर्ण व्यवस्था का आधार व्यक्ति के गुण तथा कर्म हैं। यह एक परिवर्तनशील व्यवस्था है जिसमें व्यक्ति अपने गुणों को बदलकर अपने वर्ण को बदल सकता है। वह मानते है कि सामाजिक स्तरीकरण एक सार्वभामिक नियम है तथा सभी लोगों के गुण और कर्म समान न होने के कारण उनके बीच पूर्ण समानता स्थापित नहीं की जा सकती। दूसरी ओर डॉ. अम्बेडकर का यह मानना है कि भारत में सामाजिक अन्याय तथा सामाजिक असमानता का मुख्य कारण वर्ण–विभाजन है। यदि वर्ण व्यवस्था न होती तो जाति व्यवस्था भी विकसित न हो पाती। इसका तात्पर्य है कि जब तब वर्ण विभाजन को ही समाप्त नहीं किया जाता, तब तक दलित जातियों को अमानवीय स्थिति से छुटकारा नहीं दिलाया जा सकता।

2–महाँत्मा गाँधी की एक मान्यता यह थी कि आनुवांशिक पेशे के द्वारा आजीविका उपार्जित करने से व्यक्ति को अपने व्यवसाय का विशेष ज्ञान प्राप्त होता है। तथा इससे समाज में बेरोजगारी नहीं फैलती। इसके विपरीत डॉ. अम्बेडकर का यह मानना था कि जब तक दलित जातियों को उनके आनुवांशिक व्यवसाय से मुक्ति नहीं मिलती, तब तक न तो उनके प्रति दूसरी जातियों के लोगों के विचारों में परिवर्तन होगा और न ही स्वयं दलित जातियाँ अपना विकास करने का अवसर प्राप्त कर सकेंगी।

3–गाँधी जी का विश्वास था कि हिन्दू सामाजिक संरचना में रहते हुए दलित जातियों की प्रस्थिति में सुधार किया जा सकता है। इसी कारण उन्होंने सदैव दलित जातियों के लिए पृथक् प्रतिनिधित्व देने का विरोध किया। डॉ. अम्बेडकर यह मानते है कि दलित जातियों के प्रति उच्च जातियों की मनोवृत्तियाँ इतनी भेदभावपूर्ण बन चुकी है कि जब तक दलित जातियों को अलग प्रतिनिधित्व नहीं मिलता, तब तक उनकी शक्ति में वृद्धि होना सम्भव नहीं है।

विचारों में भिन्नता के बाद भी डॉ. अम्बेडकर एक उदारवादी विचारक रहे। जब सन् 1932 में मैक्डॉनल्ड पंचाट के द्वारा प्रस्ताव रखा गया तो महाँत्मा गाँधी के आग्रह और आश्वासन के कारण डॉ. अम्बेडकर ने इस माँग पर जोर देना बन्द कर दिया। इसके साथ ही उन्होंने 'पूना समझौते' में दलित जातियों को हिन्दू

समुदाय का ही अभिन्न अंग मानना स्वीकार कर लिया। उनकी इस उदारतावादी विचारधारा का ही परिणाम था कि उन्होंने स्वयं भी धर्म परिवर्तन की बात छोड़ दी। गाँधी जी की मृत्यु के पश्चात् उन्होंने सन् 1956 में धर्म परिवर्तन किया।

4.3.4 धर्मों के सम्बन्ध में डॉ. अम्बेडकर विचार

डॉ. अम्बेड़कर का धर्म के सम्बन्ध में विचार सामाजिक समानता एवं न्याय क सम्बन्ध में विचारों से प्रभावति हैं। डॉ. अम्बेडकर ने सभी धर्मों के मूल विचार एवं सिद्धान्त का अध्ययन किया और उन सभी धर्मों के सामाजिक एवं व्यवहारिक पक्ष को समझा। डॉ. अम्बेडकर ने हिन्दू धर्म, इस्लाम धर्म, सिक्ख धर्म और ईसाई धर्म तथा बौद्ध धर्मों का अध्ययन किया। इनके अनुसार बौद्ध धर्म को छोड़कर किसी भी धर्म में व्यवहारिक रूप में पूर्ण समानता नहीं थी। हिन्दू धर्म के सम्बन्ध में डॉ. अम्बेडकर बताते हैं कि भारतीय जन–जीवन पर स्मृतिकालीन धर्म का इतना अधिक प्रभाव है कि समाज में अस्पृश्यों की अमानवीय दशा के लिए पूर्ण रूप से धार्मिक नियम–कानून किस हद तक जिम्मेदार है। डॉ. अम्बेडकर का यह भी मानना है कि ''धर्म व्यक्ति के लिए होता है व्यक्ति धर्म के लिए नहीं'' इनके अनुसार ''जो धर्म अपने मानने वालों के बीच ही भेदभाव करता है वह धर्म नहीं बल्कि मानवता का अपमान करने वाला एक साधन है।'' डॉ. अम्बेडकर का मानना था कि हिन्दू धर्म असमानता पर आधारित है जिसमें रूढ़ीवादिता अंधविश्वास बहुत है और जब तक अस्पृश्य जातियाँ हिन्दू सामाजिक व्यवस्था का अंग रहेंगी तब तक इनका विकास एवं प्रगति नहीं हो सकती। डॉ. अम्बेडकर के अनुसार अस्पृश्य जातियों का उद्धार एवं विकास हिन्दू धर्म के अन्तर्गत सम्भव नहीं है। यही कारण था कि डॉ. अम्बेडकर ने महार जाति के लोगों को बौद्ध धर्म अपनाने की सलाह दी। 1935 ई. में डॉ. अम्बेडकर ने धर्मान्तरण की घोषणा भी की। उन्होंने कहा था कि वे एक हिन्दू के रूप में मरना नहीं चाहते। डॉ. अम्बेडकर ने धर्मान्तरण की घोषणा के बाद ईसाई एवं मुस्लिम धर्म के प्रतिनिधियों ने अपने धर्म में आने का प्रस्ताव भेजा था लेकिन डॉ. अम्बेडकर ने इन सभी धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन किया और पाया कि जाति भेद की व्यवस्था का समर्थन ईसाई एवं इस्लाम नहीं करता लेकिन हिन्दुत्व के प्रभाव से भारत में ईसाई और इस्लाम समाज में भी जाति भेद उत्पन्न हो गए हैं। डॉ. अम्बेडकर ने यह महसूस किया कि ये दोनों समाज अपना जाति भेद बनाये रखना चाहते हैं। डॉ. अम्बेडकर ने अपने अध्ययन में पाया कि अस्पृश्य जातियों के लोगों ने ईसाई, इस्लाम, सिक्ख, धर्म को अपनाना था उनमें भी सामानता का व्यवहार नहीं किया जा रहा था। अतः डॉ. अम्बेडकर ने उपरोक्त सभी धर्मों को त्याग कर बौद्ध धर्म की ओर अपना ध्यान केन्द्रित किया। इनके अनुसार ईसाई धर्म भी हिन्दू तथा इस्लाम धर्म से अलग नहीं है उसमें भी वही सब चीजें मौजूद है जो हिन्दू और इस्लाम धर्म में हैं। इन धर्मों में जाकर अस्पृश्य जातियों ने न सिर्फ अपना और अपने धर्म का अस्तित्व खो देते हैं उन धर्म के अंधविश्वासों और पाखण्डों का ही शिकार हो जाते हैं। उनके बल पर उच्च वर्ग के ईसाई और मुसलमान उसी तरह शासक वर्ग बने रहते है जिस प्रकार उनके बल पर हिन्दू उच्च वर्ग शासक वर्ग बना हुआ है।

4.3.5 बौद्ध धर्म के सम्बन्ध में डॉ. अम्बेडकर के विचार

धर्म के सम्बन्ध में डॉ. अम्बेडकर के विचार स्पष्ट हैं इनका मानना था कि धर्म व्यक्ति के लिए होता है, व्यक्ति धर्म के लिए नहीं। डॉ. अम्बेडकर का मानना था कि जिस धर्म में सामाजिक असमानता, अंधविश्वास एवं रूढ़ीवादिता है उस समाज में कभी भी प्रगतिशील जीवन की आशा नहीं की जा सकती है। इन्होंने हिन्दू, इस्लाम, ईसाई, सिक्ख और बौद्ध आदि धर्मों का अध्ययन किया तथा बताया कि बौद्ध धर्म को छोड़कर सभी धर्म व्यवहारिक रूप में असमानता एवं भेदभाव पर आधारित हैं।

डॉ. अम्बेडकर बौद्ध धर्म को वैज्ञानिक, सामाजिक समानता एवं प्रेम तथा एकता की भावना पर आधारित मानते हैं। इनके अनुसार बौद्ध धर्म के प्रवर्तक बुद्ध की सोच वैज्ञानिक है। बुद्ध किसी बात को इसलिए मान लेने का निषेध करते थे कि वह किसी धर्मग्रन्थ में लिखी है या किसी आचार्य, महापुरूष अथवा धर्मगुरू ने कही है याह परम्परा से मानी जा रही है या उसे बहुत से लोग मानते है। बुद्ध की शिक्षा थी कि किसी बात को तभी माना जाए जब वह तर्क और अनुभव पर सिद्ध हो जाए। डॉ. अम्बेडकर ने देखा कि बौद्ध धर्म वेदों का खण्ड़न करता है। ब्राह्मण की श्रेष्ठता को नहीं मानता। बौद्ध धर्म समतावादी है, स्त्रियों की स्वतंत्रता के समर्थक हैं। बुद्ध गुरू हैं, पथ प्रदर्शक हैं तथा बौद्ध धर्म संस्कृत को नहीं बल्कि जन भाषा पाली को महत्व देता है। बौद्ध धर्म अनीश्वरवादी है यह आत्मा एवं ब्रह्मा को नहीं मानता। इस प्रकार बौद्ध धर्म में परलोकवाद, भाग्यवाद, जन्म–जन्मान्तरवाद, अवतारवाद, स्वर्ग–नर्क और अलौकिक सत्ता के सारे पाखण्डों से मुक्ति मिल जाती है। बौद्ध धर्म जातिवाद का विरोधी था। बौद्ध धर्म के संस्थापक बुद्ध पहले व्यक्ति थे जिन्होंने वर्ण व्यवस्था का विरोध कर सामाजिक क्षेत्र में क्रान्ति ला दी थी। डॉ. अम्बेडकर सभी धर्मों के अवलोकन के पश्चात् बौद्ध धर्म की विशेषताओं का उल्लेख करते हैं और कहते हैं किः–

- बौद्ध धर्म एक ऐसी नैतिकता पर आधारित है जिसमें मानवीय मूल्यों एवं उसके नैतिक विकास का समिश्रण है। इनके अनुसार कोई भी समाज नैतिकता के बिना छिन्न–भिन्न हो जाता है अतः धर्म में नैतिकता का होना परम आवश्यक है।
- बौद्ध धर्म के आचरण नियम सामाजिक समानता को महत्व देते हैं।
- बौद्ध धर्म केवल विश्वास पर आधारित नहीं है बल्कि यह स्वविवेक पर आधारित है।

इस प्रकार हम देखते है कि डॉ. अम्बेडकर बौद्ध धर्म से बहुत अधिक प्रभावित थे। साथ ही उनका यह मानना था कि जो दलितों की समस्या है उन समस्या का समाधान बौद्ध धर्म के अलावा किसी अन्य धर्म में नहीं था। यहीं कारण था कि डॉ. अम्बेडकर का झुकाव बौद्ध धर्म की ओर हुआ। डॉ. अम्बेडकर के अनुसार दलित धर्म के सिद्धान्त बौद्ध धर्म से पूर्ण संगति बैठती थी और केवल बौद्ध धर्म ही दलित धर्म का नया रूप ले सकता है। अंततः डॉ. अम्बेडकर अपने 5 लाख अनुयायियों के साथ 14 अक्टूबर 1956 को नागपुर में बौद्ध धर्म को स्वीकार कर लिया। इस अवसर पर उन्होंने यह कहा था कि हो सकता है कि दूसरे लोग बौद्ध धर्म को दलित धर्म कहें। लेकिन यदि बौद्ध धर्म दलित धर्म बन जाता है तो भारत में एक महान सामाजिक क्रान्ति होगी।

4.4 डॉ. अम्बेडकर का सामाजिक न्याय की अवधारणा

सामाजिक न्याय की अवधारणा एक व्यापक अवधारण है जिसमें एक व्यक्ति के नागरिक अधिकारों के साथ–साथ सामाजिक समानता के अर्थ भी निहित हैं। भारत में सामाजिक न्यास के प्रेरक डॉ. अम्बेडकर आधुनिक विचारकों में से एक हैं जिन्होंने भारतीय समाज को एक नई दिशा प्रदान की। डॉ. अम्बेडकर के अपने व्यक्तिगत जीवन के अनुभव तथा भारतीय समाज का गहन अध्ययन ने भारतीय समाज में व्याप्त वर्ण, धर्म, जाति आधारित छुआ–छूत असमान एवं शोषण के विरूद्ध सामाजिक न्याय की अवधारणा को संविधान की मूल पृष्ठभूमि में स्थान दिलाया। सामाजिक न्याय की अवधारणा का मुख्य उद्देश्य यह है कि नागरिक–नागरिक के बीच कोई भेद–भाव न हो। प्रत्येक नागरिक को विकास के समान अवसर प्राप्त हो। सामाजिक न्याय का अंतिम उद्देश्य समाज के कमजोर एवं पिछड़े वर्ग को विकास की मुख्य धारा में लाना तथा उनकी विकास में भागीदारी सुनिश्चित करना है। विश्व की सभी वर्तमान की न्याय व्यवस्था का अंतिम लक्ष्य सबसे कमजोर वर्ग का हित सुरक्षित करना है। यदि हम वर्तमान भारतीय न्याय व्यवस्था की बात करें तो सभी का सम्बन्ध किसी न किसी रूप में उसका सम्बन्ध सामाजिक न्याय से है। अतः सामाजिक न्याय पिछड़े एवं वंचित वर्ग के सशक्तिकरण से सम्बन्धित है। जो सामाजिक न्याय के माध्यम से समाज में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक समानता की स्थापना करना चाहती है। इस प्रकार सामाजिक न्याय समानता का एक दर्शन है। जिसके अन्तर्गत निम्न बिन्दु हैं–

1–जातीय भेद–भाव को समाप्त करना

2–धार्मिक भेद–भाव को समाप्त करना

3–लैंगिक भेद–भाव को समाप्त करना

4–क्षेत्रीय भेद–भाव को समाप्त करना

डॉ. अम्बेडकर के सामाजिक न्याय की अवधारणा पर महाराष्ट्र के महान समाज सुधारक ज्योतिबा फुले का प्रभाव था। 19 वीं शताब्दी में ज्योतिबा फुले एक मात्र ऐसे सामाजिक सुधारक थे जो दलित जातियों की दशा में सुधार के लिए प्रयासरत थे। डॉ. अम्बेडकर ने इन्हीं से प्रेरणा लेकर हिन्दू सामाजिक व्यवस्था के विरूद्ध संघर्ष करने का संकल्प लिया। डॉ. अम्बेडकर के अनुसार हिन्दू सामाजिक व्यवस्था मनु स्मृति पर आधारित है मनु स्मृति के नियम भारत के न्याय प्रणाली में अपना महत्व रखते हैं। जैसे पिता की सम्पत्ति में सिर्फ पुत्र को ही अधिकार है पुत्री को नहीं आदि। परम्परागत भारतीय सामाजिक व्यवस्था जो प्राचीन ग्रन्थों पर आधारित है में यह सिद्ध करने का प्रयास किया गया है कि हिन्दू समाज की जो व्यवस्था है उसे हमने नहीं बल्कि ईश्वर ने बनाया है। डॉ. अम्बेडकर के अनुसार ऐसा करने का एकमात्र लक्ष्य किसी खास जाति विशेष, लिंग विशेष को बिना परिश्रम के सुख सुविधा उपलब्ध कराना था। इनके अनुसार परम्परागत भारतीय सामाजिक व्यवस्था में हमें तीन चीजें दिखाई देती हैं–

1–परम्परागत मूल्यों के प्रति अंधविश्वास।

2–जातीय उच्चता एवं निम्नता।

3–लैंगिक भेद–भाव।

डॉ. अम्बेडकर का सामाजिक न्याय का सिद्धान्त प्राकृतिक न्याय की अवधारणा के समीप दिखाई देता है। डॉ. अम्बेडकर मानते है कि जिस सामाजिक न्याय सिद्धान्त में जातिगत ऊँच–नीच, लिंग भेद, धार्मिक कट्टरता, पूर्व जन्म की कल्पना को मान्यता दी जाती है वह सामाजिक न्याय हो ही नहीं सकता। डॉ.

अम्बेडकर इस न्याय सिद्धान्त को ब्राह्मणवादी न्याय सिद्धान्त कहते हैं क्योंकि इस सिद्धान्त से एक विशेष जाति, विशेष लिंग के हित सुरक्षित होते हैं, यही कारण है कि डॉ. अम्बेडकर ने जिस सामाजिक न्याय की अवधारणा को प्रतिपादित किया वह नस्ल भेद, लिंग भेद और क्षेत्रीय भेद से मुक्त हो जाता है। इनकी अवधारणा में समाज के दबे–कुचले वर्ग के साथ न केवल न्याय हो बल्कि उनके अधिकार और हित सुरक्षित हों। डॉ. अम्बेडकर ने अपने न्याय सिद्धान्त में परम्परागत भारतीय सामाजिक व्यवस्था के कई सामाजिक इकाईयों एवं संस्थाओं तथा सामाजिक नियमों का विरोध करते हैं। जिसे हम निम्नलिखित रूप में समझ सकते हैं–

1–परम्परागत जाति व्यवस्था का विरोध डॉ. अम्बेडकर मानते है कि चार वर्णों पर आधारित वर्ण व्यवस्था के कारण ही जाति व्यवस्था का जन्म हुआ और साथ ही अस्पृश्यता जैसी असमानता सामाजिक व्यवस्था आई। जो सामाजिक अन्याय और सामाजिक असमानता का चरण है। डॉ. अम्बेडकर के अनुसार प्रारंभिक अवस्था में भारतीय समाज में किसी प्रकार का जातिय विभाजन नहीं था। लेकिन बाद में कुछ समूहों द्वारा अपने हितों की पूर्ति के लिए समाज को विभिन्न जातियों में विभाजित किया गया ताकि शक्तिशाली लोगों द्वारा कमजोर लोगों से उनकी इच्छा के विरूद्ध काम ले सकें। इसके लिए शक्तिशाली समूह द्वारा कमजोर समूह को शिक्षा, धन, लाभप्रद व्यवसाय एवं हथियार रखने से वंचित किया गया। इसके साथ ही धार्मिक पैजामा पहनाने का प्रयास किया गया कि व्यक्ति को अपने वर्ग एवं जाति के अनुसार ही कर्म करना चाहिए। इसका परिणाम यह हुआ कि निम्न जातियाँ निम्न होती गई और उच्च जातियाँ और शक्तिशाली। डॉ. अम्बेडकर का मानना है कि समाज में जब तक जाति व्यवस्था बनी रहेगी तब तक निम्न जाति में सुधार नहीं हो सकता। अतः इस जाति असमानता को दूर करने का एक ही रास्ता है अन्तर्जातीय विवाह। इनके अनुसार रक्त मिलन ही विभिन्न जातियों के बीच निकटता की भावना पैदा कर सकता है। डॉ. अम्बेडकर जाति व्यवस्था को हिन्दू धर्म की सबसे बड़ी बुराई मानते थे। अतः इस जाति व्यवस्था को समाप्त करने के लिए उन्होंने मंदिरों में लोकतांत्रिक आधार पर पुजारी नियुक्त करने की बात कही। इनका मानना था कि जैसे–जैसे जाति व्यवस्था के परम्परागत नियम कमजोर होंगे दलित जाति की स्थिति में सुधार होगा।

2–समाज मे लैंगिक भेद–भाव का विरोध–यदि हम परम्परागत भारतीय समाज में स्त्रियों की दशा को देखें तो उनकी स्थिति बहुत ही निराशा जनक थी। स्त्रियों शिक्षा तथा पिता की सम्पति के अधिकार से वंचित रखा गया था। इन्हें पुनर्विवाह एवं तलाक जैसे अधिकार नहीं थे। स्त्रियों की इस हीन दशा के लिए डॉ. अम्बेडकर मुख्य रूप से हिन्दू धर्म ग्रन्थ मनुस्मृति को मानते थे। मनुस्मृति में यह प्रतिपादित किया गया कि स्त्रियों को हमेशा संरक्षण में रहना चाहिए। अर्थात वे बाल्यावस्था में पिता के संरक्षण में, युवाअवस्था में पति के संरक्षण में तथा वृद्धाअवस्था में पुत्र के संरक्षण में रहें। अर्थात वे सदैव पुरूषों के ही संरक्षण में रहें। डॉ. अम्बेडकर स्त्रियों के इस परतंत्रता से मुक्त कराना चाहते हैं। इन्होंने इस बात का विरोध किया कि परिवार में स्त्रियों की प्रस्थिति पुरूषों के अधीन होना चाहिए इस सम्बन्ध में डॉ. अम्बेडकर मनुस्मृति की कटु आलोचना करते हैं। और कहते हैं कि इसमें दिये गए विधान सामाजिक न्याय के सिद्धान्त के विरूद्ध है। इनके अनुसार स्त्रियों में वे सारे गुण मौजूद हैं जो पुरूषों में हैं। अतः सामाजिक जीवन में पुरूषों के समान ही सभी क्षेत्रों में इनके अधिकर होने चाहिए। इसके लिए डॉ. अम्बेडकर ने वैधानिक दृष्टि से समाप्त किये जाने के पक्ष में थे। इसके लिए इन्होंने हिन्दू कोड बिल को पारित करवाने में अपनी सक्रिय भूमिका निभाई।

'हिन्दू कोड बिल' के तहत महिलाओं को विवाह–विच्छेद का अधिकार, बहुपत्नी पर प्रतिबंध, विधवाओं तथा अविवाहित कन्याओं का पति तथा पिता की सम्पति में अधिकार था।

डॉ. अम्बेडकर का मानना था कि वास्तविक प्रजातंत्र तब आएगा जब महिलाआकें को पैतृक सम्पति में बराबरी का हिस्सा मिलेगा और उन्हें पुरूषों के समान अधिकार दिए जाएगें। डॉ. अम्बेडकर का विश्वास था कि महिलाओं की उन्नति तभी सम्भव है जब उन्हें घर, परिवार और समाज में सामाजिक बराबरी का दर्जा मिलेगा। शिक्षा और आर्थिक उन्नति उन्हें सामाजिक बराबरी दिलाने में मदद करेगी।

डॉ. अम्बेडकर लैंगिक भेद–भाव का विरोध करने के लिए महिलाओं को शिक्षित करना अति आवश्यकत मानते थे। इनके अनुसार इससे न सिर्फ महिलाओं में आत्म–निर्भरता बढ़ेगी साथ ही उनकी सामाजिक प्रस्थिति भी ऊँची होगी। डॉ. अम्बेडकर ने महिलाओं को अपने संबोधन मे कहा था कि अपने बच्चों को शिक्षा प्राप्त करने के लिए स्कूल भेजो और उन्हें महत्वाकाँक्षी बनाओं। डॉ. अम्बेडकर भारत में लैंगिक न्याय पर आधारित समाज की स्थापना के लिए लोकतांत्रिक मूल्यों की स्थापना की बात करते हैं जिससे स्वतंत्रता समानता एवं बंधुत्व की स्थापना हो सके।

4.5 डॉ. अम्बेडकर का दलित उद्धार

डॉ. अम्बेडकर भारतीय सामाजिक व्यवस्था का गहन अध्ययन करते है और बताते है कि भारतीय सामाजिक व्यवस्था में जातिप्रथा, वर्णव्यवस्था, धर्म के आधार पर छुआ–छूत, असमानता एवं शोषण व्यापक रूप से विद्यमान है। हिन्दू धर्म के अन्तर्गत वर्णव्यवस्था में शूद्रों की स्थिति अति दयनीय है। शूद्रों को अस्पृश्य माना जाता था। शूद्र सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक रूप से वंचित थे। शूद्रों को धार्मिक रूप से और सभी मानवाधिकारों से वंचित रखा गया था। शूद द्विजों के लिए सेवक थे जिनका कार्य सिर्फ ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्यों की सेवा करना था। डॉ. अम्बेडकर के अनुसार भारतीय हिन्दू समाज में अंधविश्वास रूढ़ी और व्यर्थ के कर्मकाण्ड़ व्याप्त थे। यहीं कारण है कि डॉ. अम्बेडकर हिन्दू धर्म में व्याप्त जाति व्यवस्था के घोर विरोधी थे। डॉ. अम्बेडकर जीवन पर्यन्त समाज के वंचित वर्गों को समाज की मुख्यधारा में लाने के लिए संघर्ष करते रहे। डॉ. अम्बेडकर हिन्दू धर्म में व्याप्त छुआ–छूत के लिए हिन्दू धर्म को मानते हैं। वे कहते है कि ''हिन्दू धर्म अपने ही समाज के एक वर्ग के व्यक्तियों के प्रति छुआ–छूत का व्यवहार करने का आदेश देता है और साथ ही अस्पृश्य व्यक्तियों को इस स्थापित व्यवस्था के विरोध में न केवल विद्रोह करने से रोकता है, बल्कि उन्हें यह भी आदेश देता है कि अस्पृश्यों का यह कर्तव्य है कि वे इस दैवीय एवं पवित्र व्यवस्था को बनाये रखें।''

डॉ. अम्बेडकर के अनुसार ''जाति प्रथा से लड़ने के लिए चारों तरफ से प्रहार करना होगा। जाति ईंट की दीवार जैसी कोई भौतिक वस्तु नहीं है। यह एक विचार है। एक मनःस्थिति है जिसकी नींव धर्म शास्त्रों की पवित्रता में है। वास्तविक उपाय यह है कि प्रत्येक स्त्री–पुरूष को शास्त्रों के बन्धन से मुक्त किया जाए, उनकी पवित्रता को नष्ट किया जाए, इसका सही उपाय है, अन्तर्जातीय विवाह' तभी वे जात–पात का भेदभाव बन्द करेंगे। जब जाति का धार्मिक आधार समाप्त हो जाएगा, तो इसके लिए रास्ता खुल जायेगा। खून के मिलने से ही अपनेपन की भावना पैदा होगी और जब तक यह जाति प्रथा द्वारा पैदा की गई

अलगाव की भावना समाप्त नहीं होगी।'' डॉ. अम्बेडकर भारतीय समाज में व्याप्त बुराईयों को समाप्त करने के लिए मार्क्सवादी विचारधारा का उपयोग करते हैं और कहते है ''अस्पृश्यता की समस्या एक वर्ग संघर्ष का मामला है'' साथ ही वे अस्पश्यों में चेतना लाने के लिए हिन्दू समाज में क्रान्ति एवं हिन्दुओं के हृदय में परिवर्तन की बात करते हैं।

डॉ. अम्बेडकर दलितों के उद्धार हेतु निम्न प्रयास करते हैं–

1–जाति प्रथा का विरोध।

2–बौद्ध धर्म का समर्थन।

3–अन्तर्जातीय विवाह का समर्थन।

4–स्त्रियों के प्रस्थिति में सुधार हेतु प्रयास।

5–दलितों को सार्वजनिक स्थानों पर प्रवेश का अधिकार दिलाना।

6–सरकारी नौकरियों में आरक्षण।

7–औद्योगीकरण का समर्थन।

4.6 निष्कर्ष

डॉ. भीमराव अम्बेडकर आधुनिक भारत में दलितों के मसीहा के रूप में जाने जाते है। दलित वर्ग को समाज में महत्वपूर्ण स्थान दिलाने के लिए आजीवन संघर्ष किया। डॉ अम्बेडकर ने दलितों के उद्धार के लिए शिक्षा पर जोड़ दिया। उनका मानना था कि अशिक्षा सभी बुराईयों की जड़ है। शिक्षा व्यक्ति में तार्किकता एवं बौद्धिकता को जन्म देती है। शिक्षा ह ीवह माध्यम है जिससे व्यक्ति में किसी भी घटना को सही तरह से व्याख्या करने एवं घटना के पीछे हुए कारणों को समझने में मदद देता है। अम्बेडकर ने दलितों के उद्धार के लिए न सिर्फ उनमें जागरूकता फैलाने का प्रयास किया बल्कि उन्हें सामाजिक न्याय दिलाने के लिए भी प्रयासरत रहे। डॉ. अम्बेडकर ने हिन्दू समाज में व्याप्त बुराइयों की आलोचना की एवं यह माना कि हिन्दू समाज में रहते हुए कभी भी दलितों का उद्धार नहीं हो सकता। क्योंकि हिन्दू समाज असमानता पर आधारित है यहीं कारण था कि उन्होंने दलितों को बौद्ध धर्म अपनाने को बात की। डॉ. अम्बेडकर के अनुसार बौद्ध धर्म वैज्ञानिक है जो सामाजिक समानता एवं प्रेम पर आधारित है।

4.7 भावी अध्ययन

1–कास्ट इन इण्डिया, 1961

2–स्मॉल होल्डिग्स इन इण्डिया एण्ड देयर रेमेडीज, 1918

3–प्रॉब्लेम ऑस रूपी, 1923

4–द इवोलूशन ऑफ प्राविन्शियल फाइनेन्स इन द ब्रिटिश इण्डिया, 1924

5–द अनटचेबिल्स, हू आर दे ?

6–एन्हीलेशन ऑफ कास्ट, 1935

7–मिस्टर गाँधी एण्ड इमेन्सीपेशन ऑफ अनटचेबिल्स, 1938

8–व्हाट कांग्रेस एण्ड गाँधी हैव डन टू द अनटचेबिल्स, 1945

9–पाकिस्तान एण्ड माइनॉरटीज, 1947

10–स्टेटस एण्ड माइनॉरटीज, 1947

11–थॉट ऑन लिंग्युस्टिक स्टेटस, 1953

4.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न–

1–सामाजिक न्याय पर डॉ. अम्बेडकर के विचारों का विवेचना कीजिए।

2–डॉ. अम्बेडकर के बौद्ध धर्म सम्बन्धी विचारों का उल्लेख कीजिए।

3–जाति प्रथा एवं वर्ण व्यवस्था के बारे में डॉ. अम्बेडकर के विचारों की समीक्षा कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न–

1–अल्पसंख्यकों पर डॉ. अम्बेडकर के विचारों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

2–दलितवादी परिप्रेक्ष्य क्या है?

3–बौद्ध धर्म एक तार्किक धर्म है स्पष्ट करें।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1–डॉ. अम्बेडकर के अनुसार प्रजातंत्र के कितने आधार स्तम्भ है?

(अ) दो (ब) तीन (स) चार (द) पाँच

2–डॉ. अम्बेडकर का जन्म कब हुआ?

(अ) 14 अप्रैल 1891 (ब) 18 अप्रैल 1891

(स) 14 जुलाई 1897 (द) इनमें से कोई नहीं

3–भीमाबाई के मरने के बाद डॉ. अम्बेडकर का पालन किसने किया?

(अ) लक्ष्मीबाई (ब) मीराबाई

(स) राधाबाई (द) नर्मदाबाई

4–किसने कहा था सामाजिक सुधार के बिना राष्ट्रीय भावना का विकास नहीं हो सकता?

(अ) डॉ. अम्बेडकर (ब) अरविंद घोष

(स) सुरेन्द्र नाथ बनर्जी (द) महादेव गोविन्द रानाडे

4.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. Ambedkar, B.R (1916) (Reprint in 1977), Cadstes in India : Their Mechanism, Genesis and Development, Jalandhar : Bheem Patrika Publications.

-(1936) (Reprint in 1995), ammihilation of caste, jalandhar : Bheem Patrika Publication.

-(1946) Who were Sudras ? Bombay : Thacker and Co.

-(1946) The Untouchables : Who were They and why They Become Untouchables ? New Delhi. Amrit Co.

2. Baxi, Upendra (1995), "Emancipation as Justice: Babasaheb Amebedkar's Legacy and Vision" in Upendra Baxi and Bhikhu Parikh (eds), Crisis and change in Contemporary india, New Delhi, sage.
3. Bharill, c (1977), Social and Poitical Ideology of B.R Ambedkar, Jaipur: Alekh Publicatiions.
4. Gore, M.S. (1993), The Social Context of an Ideology: Ambedkar's Political and Social Thought, New Delhi, Sage.
5. Keer, Dhananjay (1971), Ambedkar: Life and Mission, Bomby:Popular Prakashan,
6. Kuber, W.N, (1973), B.R. Ambedkar: A Critical Study, New Delhi: Puople's Publishing House.
7. Lobo. Lancy (2001), Vission Illusions and Dilemmas

इकाई–5
रणजीत गुहा (Ranajit Guha)

इकाई की रूपरेखा–

5.0 उद्देश्य

5.1 परिचय

5.1.1 जीवन परिचय

5.2 पद्धतिशास्त्र

5.2.1 अधीनस्थ समूह परिप्रेक्ष्य

5.2.2 अधीनस्थ समूहों के अध्ययन द्वारा अधीनस्थ समूह परिप्रेक्ष्य निर्मित करना।

5.2.3 अधीनस्थ समूहों के अध्ययनों को किस प्रकार मान्यता मिल सकती है, इस पर कार्य।

5.2.4 अधीनस्थ समूह परिप्रेक्ष्य व विचार की समीक्षा।

5.2.5 उभरता अधीनस्थ समूह परिप्रेक्ष्य।

5.2.6 अधीनस्थ समूह परिप्रेक्ष्य के साथ जुड़ी हुई गुणवत्ता।

5.2.7 कृषक विद्रोह।

5.3 निष्कर्ष

5.4 भावी अध्ययन

5.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

- दीर्घ उत्तरीय प्रश्न
- लघु उत्तरीय प्रश्न
- वस्तुनिष्ठ प्रश्न

5.6 सन्दर्भ ग्रंथ

5.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित उद्देश्य है–

1–सबअलर्टन अध्ययन के माध्यम से Subaltern Studies अधीनस्थ समूह परिप्रेक्ष्य परिभाषित करना।
2–उपनगरीय अध्ययनों की पहचान करना।
3–अधिनस्थ परिप्रेक्ष्य को समझना।
4–अधिनस्थ समूह के उभरते परिप्रेक्ष्य को समझना।
5–सामाजिक अध्ययन में अधिनस्थ समूह के महत्व को समझना।
6–अधिनस्थ समूह के माध्यम से कृषक विद्रोह को समझना।

5.1 परिचय

भारतीय समाज के अध्ययन के कई परिप्रेक्ष्य रहे हैं जैसे संरचनात्मक प्रकार्यवाद परिप्रेक्ष्य, सभ्यतावादी परिप्रेक्ष्य, मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य और दलितवादी परिप्रेक्ष्य। इन सभी परिप्रेक्ष्यों मे दलितवादी परिप्रेक्ष्य या अधीनस्थ समूह परिप्रेक्ष्य सबसे नया परिप्रेक्ष्य है जिसका विकास 20 वीं शताब्दी में 90 के दश में हुआ। इस परिप्रेक्ष्य के माध्यम से कई समाजशास्त्री जैसे डॉ0 भीमराव अम्बेडकर, डेविड हार्डीमेन एवं रणजीत गुहा ने भारतीय समाज का अध्ययन किया। रणजीत गुहा इस परिप्रेक्ष्य का उपयोग करते हुए इसके विकास एवं महत्व तथा उसकी गुणवत्ता की बात करते हैं एवं अधीनस्थ समूह परिप्रेक्ष्य का उपयोग करते हुए अपने अध्ययन में भारत में हुए कृषक विद्रोहों की समीक्षा करते हैं। इस अध्याय में हम रणजीत गुहा द्वारा किए गए कार्यों की भी चर्चा करेंगे।

5.1.1 जीवन परिचय

रणजीत गुहा सम्भवतः औपनिवेशिक और अधीनस्थ समूह परिप्रेक्ष्य अध्ययनों में सबसे प्रभावशाली व्यक्ति हैं। अधीनस्थ समूहों के अध्ययन के वे संस्थापक सदस्य थे। इन्होंने इतिहास का अध्ययन किया तथा इंग्लैण्ड के ससेक्स विश्वविद्यालय में कई वर्षों तक इतिहास पढ़ाया और इतिहास के प्रोफेसर, रिसर्च स्कूल ऑफ पैसिफिक स्टडीज ऑस्ट्रेलिया नेशनल यूनिवर्सिटी और कैनबरा के रूप में भी कार्य किया। गुहा के कामों ने न केवल महाद्विपीय इतिहास के लेखन बल्कि विश्व भर में ऐतिहासिक जाँच, साथ ही सांस्कृतिक अध्ययन, साहित्यिक सिद्धान्तों और सामाजिक विश्लेषणों को भी प्रभावित किया है।

5.2 पद्धतिशास्त्र

रणजीत गुहा ने अपने अध्ययनों जिन पद्धतिशास्त्र का प्रयोग किया वह है अधीनस्थ समूहों का परिप्रेक्ष्य रणजीत गुहा अधीनस्थ समूह परिप्रेक्ष्य के प्रतिपादकों में एक है। यह परिप्रेक्ष्य भारतीय समाज के अध्ययन का एक तरीका है। इस परिप्रेक्ष्य के माध्यम से आदिवासी तथा किसान आंदोलनों की समझा जा सकता है। यह समाज के उच्च तथा निम्न लोगों के बीच राजनीति का समझने का एक महत्वपूर्ण परिप्रेक्ष्य है। अधीनस्थ समूह परिप्रेक्ष्य इतिहास को समझने का एक नया नजरिया प्रदान करता है। यह परिप्रेक्ष्य स्वयं का

ही अपना इतिहास बनाने का प्रयास करता है आदिवासियों, किसान, दलित एवं कृषक मजदूर अभी तक सिर्फ इतिहास के पात्र रहे हैं लेकिन यह परिप्रेक्ष्य उनके द्वारा स्वयं के इतिहास लेखन की क्रिया है। यह बदलती हुई परिस्थितियों में उत्पन्न जागरूकता की हैं।

5.2ण्1 अधीनस्थ समूह परिप्रेक्ष्य

अधीनस्थ समूह परिप्रेक्ष्य भारतीय समाज में दलितों, शोषितों एवं निम्न वर्ग के लोगों का अध्ययन का एक तरीका है। रणजीत गुहा ने इस परिप्रेक्ष्य का उपयोग कर भारतीय समाज का अध्ययन किया। इस परिप्रेक्ष्य का उपयोग कर भारतीय समाज का अध्ययन करने वाले प्रमुख विद्वान डॉ. भीमराव अम्बेडकर, रणजीत गुहा, रणजीत गुहा तथा कपिल कुमार आदि हैं। अधीनस्थ समूह परिप्रेक्ष्य यह बताता है कि इतिहास सिर्फ राजाओं महाराजाओं एवं राष्ट्रवाद का वर्णन नही है बल्कि इसमें कमजोर, दलित एवं शोषित लोगों के आवाज इसमें शामिल हैं। अतः इतिहास का पुनःलेखन किया जाना चाहिए। यही कारण है यह परिप्रेक्ष्य राजाओं, महाराजाओं के इतिहास को छोड़कर अधीनस्थ समूह जैसे किसान, गरीब, दलित, भूमिहीन श्रमिक एवं शोषित किसान पर अपना ध्यान केन्द्रित करता है। यह परिप्रेक्ष्य इस बात पर भी बल देता है कि कैसे अधीनस्थ समूह में स्वयं के प्रति चेतना आती है। इस चेतना के पीछे अधीनस्थ समूह के विभिन्न आंदोलनों का हाथ है जो किसानों, आदिवासियों एवं साहूकारों तथा नगरीय व्यापारियों के बीच हन्द के कारण उत्पन्न हुआ। ब्रिटिश शासन व्यवस्था के विरूद्ध भी अधीनस्थ समूह के लोगों ने संघर्ष किया। इन संघर्षों का ही परिणाम था कि अधीनस्थ समूह के लोगों में जागृति आई एवं वे अपनी स्थिति सुधारने में सफल रहे।

5.2.2 अधीनस्थ समूहों के अध्ययन द्वारा अधीनस्थ समूह परिप्रेक्ष्य निर्मित करना

भारत में अधीनस्थ समूह परिप्रेक्ष्य का विकास 90 के दशक में हुआ जब रणजीत गुहा एवं उनके साथियों द्वारा इस विषय पर कई आकादमिक लेख लिखे गए। 80 के दशक तक भारत में अधीनस्थ का अर्थ सिर्फ फौडा में एक कनिष्ठ अधिकारी के रूप में ही लिया जाता था। साथ ही साथ ज्यादा से ज्यादा अधीनस्थ शब्द का अभिप्राय वैकल्पिक तथा अधीनस्थ से सम्बन्धित था। 90 के दशक में विशेषकर 1982 से 1984 के बीच में निबन्ध के रूप में नियमित रूप से प्रकाशित हुए लेकिन बाद में इनकी संख्या घटी। 'सबआल्टर्न स्टडीज' के नाम से एक श्रंखला भी प्रकाशित की गई ताकि समाजशास्त्री इस दिशा में काम कर सकें। रणजीत गुहा और उनके साथियों द्वारा लिखे गए लेख को पढ़ने के बाद यह आसानी से समझा जा सकता है कि अधीनस्थ समूह परिप्रेक्ष्य क्या है ? लेकिन पिछले ही शताब्दियों के प्रयास के बावजूद अब तक इस परिप्रेक्ष्य के विकास का कोई ठोस परिणाम प्राप्त नहीं हुए हैं।

यद्यपि यह कहना विचित्र होगा, पर अनुभवों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि परिप्रेक्ष्य को परिभाषित करने के लिए यही श्रेष्ठ है कि प्रकाशित लेखों और विश्लेषणों का सहारा लिया जाए। प्रकाशित ग्रंथों की श्रंखला एक से पांच में राजनीति और विद्रोह का उल्लेख था। बाद में राजनीति और विद्रोह पर चर्चा कम हुई और उसके स्थान पर अधीनस्थ मुद्दों की संस्कृति और उनकी उपनिवेशवादी, प्रभुत्वशाली संस्कृति की गहनता तथा उसके प्रतिरोध के विविध स्वरूपों का विश्लेषण अधिक होने लगा। अधीनस्थ समूहों के परिप्रेक्ष्य के दूसरे चरण में ये विषय प्रमुख थे।

'सबआल्टर्न स्टडीज' के एक से दस भागों में 76 निबन्ध प्रकाशित हुए थे। इन लेखकों में थे, रणजीत गुहा व पार्था चटर्जी (प्रत्येक के सोलह निबन्ध), डेविड आर्नोल्ड, डेविड हार्डीमेन, ज्ञानेन्द्र पांडे (पांच निबन्ध), दीपेश चक्रवर्ती, गौतम भद्र, ज्ञान चक्रवर्ती, स्पिवाक तथा शाहिद अमीन (एक से अधिक निबन्ध) पाँचवें खण्ड के प्रकाशित होने के बाद इस परिप्रेक्ष्य में व्यापक परिवर्तन आया और इसी के बाद सांस्कृतिक आधारों पर अधिक ध्यान दिया जाना प्रारम्भ हुआ। यहीं से इतिहास पक्ष का प्रयोग कम होना प्रारम्भ हुआ।

5.2.3 अधीनस्थ समूहों के अध्ययनों को किस प्रकार मान्यता मिल सकती है, इस पर कार्य

दो कारणों से अधीनस्थ समूहों के अध्ययनों को मान्यता मिली। पहला और सर्वप्रथम तो यह कि इन अध्ययनों ने इस मान्यता पर जोर दिया और दूसरे अन्य लोगों ने इस तथ्य को स्वीकार किया। इन लेखकों का प्रयास एंव उत्साह है, जिन्होंने इतिहास के उन पक्षों को उठाया और उन परिस्थितियों का परिचय दिया जो अज्ञात थे। भारत के समाज विज्ञानों में यह एक बिल्कुल नया परिप्रेक्ष्य था। यह कुछ ऐसा ही था जैसा विज्ञान में थामस कुन ने अपनी पुस्तक ''द स्ट्रक्चर ऑफ साइंटिफिक रेवोल्युशन्स' में कहा था कि विज्ञान में क्रान्ति का सोच कैसे बदला उनका विचार था कि जब समय आता है तब या तो किसी विषय पर प्रयास बीच जाने के कारण या उस क्षेत्र में शोध की बहुतायत से एक नये परिप्रेक्ष्य की सृष्टि हो जाती है।

5.2.4 अधीनस्थ समूह परिप्रेक्ष्य व विचार की समीक्षा

'सबआल्र्टन स्टडीज' के पहले खण्ड में रणजीत गुहा ने अपने कथन में कुछ आरोपों जैसी बात की थी। उनकी मान्यता थी कि अब तक जो ऐतिहासिक विश्लेषण चल रहे हैं उनकी महत्ता धीरे–धीरे कमजोर पड़ रही है और उनका कोई अर्थ भी नहीं है। उनका केन्द्र तथा सीमाएँ धीरे–धीरे शिथिल पड़ रही हैं। अर्थ यही था कि इतिहास के पुराने विश्लेषण को तिलांजलि दे देनी चाहिए। इसी क्रम में उन्होंने सुझाया कि हमारा ध्यान अब दबे कुचले समूहों पर होना चाहिए। यह वह परिप्रेक्ष्य है जिसकी चर्चा होती रही है। ऐसे लोगों, जो युद्ध में तोपों को घसीटते रहे और तोप छोड़ने के लिए सहयोग देते रहे, की परवाह अब करनी चाहिए।

इसके अतिरिक्त राबर्ट के. मर्टन द्वारा प्रतिपादित यह आधार कि कुछ नये पैराडाइम अध्ययनों को समझने के लिए होने चाहिए, ने नयी सोच पैदा की और इसीलिए पुरानी सोच को समझने का प्रयास प्रारम्भ किया। यह कुछ ऐसा था जैसे किसी शास्त्र के पुराने सन्दर्भ समाप्त कर किन्हीं नये सन्दर्भों के आधार पर नयी व्यवस्थाएँ स्थापित की जाएँ। बौद्धिक विश्लेषणात्मक निबन्धों का लगातार प्रकाशन और उसमें निहित अकादमिकता ने इन प्रयासों को एक नयी वैधता दी।

प्रारम्भिक वर्षों में जो लोग अधीनस्थ समूह के परिप्रेक्ष्य के साथ जुड़े हुए थे, उन्होंने अकादमिक संस्थानों में बहुत हस्तक्षेप नहीं किया। लेकिन ऐसे लेखकों के प्रयास काफी प्रभावशाली थे। दो दशाब्दियों में 6 पुस्तकें तथा 24 लेख लिखे गये थे। इनमें से कुछ भारतीय भाषाओं से अनुमोदित किए गए थे। बौद्धिक उत्पादन का यह बड़ा उत्कृष्ट उदाहरण था। अपनी–अपनी रूचि के आधार पर यह लेखन पन्द्रह भागों में प्रकाशित हुआ था। इस सारे लेखन में एक ही बात समान थी कि यह सारा लेखन अधीनस्थ समूहों के परिप्रेक्ष्य में

लिखा गया था। यह सभी लेखन शोधपूर्ण क्षमता के आधार पर हुआ था। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस सब को देखकर इस नये परिप्रेक्ष्य के प्रति मानसिकता विकसित हुई।

'सबआर्ल्टन स्टडीज' के खण्डों के प्रकाशन और उसके प्रति लोगों का आकर्षण तथा उसकी लोकप्रियता ने कम से कम यह स्पष्ट कर दिया था कि नया परिप्रेक्ष्य विकसित हो गया है। यह कहा जा चुका है कि अधीनस्थ समूह के सन्दर्भ में इतिहास परिप्रेक्ष्य थे। इसीलिए इस परिप्रेक्ष्य के आलोचक भी थे। 1988 में मृदुला मुखर्जी के समर्थकों ने कहा था कि यह परिप्रेक्ष्य पुरानी बोतल में नयी शराब की तरह है। इस पर इस परिप्रेक्ष्य के समर्थकों ने कहा था कि इस परिप्रेक्ष्य पर विद्वान पहले से ही सशंकित थे और उनको इस परिप्रेक्ष्य के प्रति शंकाएँ थीं। लेकिन इस बीच कई लोगों ने इस परिप्रेक्ष्य के सम्बन्ध में सहमति व्यक्त करना प्रारम्भ कर दिया था। उनका विश्वास था कि नया परिप्रेक्ष्य किन्हीं स्पष्टीकरणों को प्रस्तुत करने में समर्थ है।

5.2.5 उभरता अधीनस्थ समूह परिप्रेक्ष्य

अधीनस्थ समूहों के सम्बन्ध में पहला वक्तव्य 'सबआर्ल्टन स्टडीज' के पहले भाग में दिया गया है। गुहा ने उसका समर्थन किया है। यह वक्तव्य विभिन्न बिन्दुओं में निहित था। वक्तव्य में कहा गया था कि अब तक इतिहास ने केवल श्रेष्ठजनों के सम्बन्ध में ही लिखा है। अधीनस्थ समूहों, गरीबों और दबे कुचलों की इसने अवहेलना की है। अब तक इतिहास में भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के सम्बन्ध में जो कुछ भी लिखा गया वह राष्ट्रीय आन्दोलन की सेवाओं के परिप्रेक्ष्य में लिखा गया था। जैसा कि भी है यह स्पष्ट है कि भारतीय इतिहास को लिखते समय ऐसे समूह अछूते छोड़ दिए गए या राष्ट्रीय आन्दोलन में इन लोगों के योगदान की कोई विशेष परवाह नहीं की गई। गुहा का मत था कि अधीनस्थ समूह का परिप्रेक्ष्य आवश्यक है, जिससे भारतीय समाज के उन लोगों को देखा जा सके जो राष्ट्र की मुख्य धारा थे और इतिहास में विभिन्न संघर्षों के वाहक थे।

भारतीय समाज वैज्ञानिकों की उपर्युक्त चिन्ताओं का यह समर्थन है। भारतीय सामाजिक क्षमताओं की समझ के लिए वे यह मानते है कि यह वर्ग उनसे छूट गया है। इतिहास और नृजातीयशास्त्र ने कृषक तथा आदिवाशी आन्दोलनों के लिए काफी महत्वपूर्ण विश्लेषण प्रस्तुत किये हैं। अधीनस्थ समूहों का इतिहास लेखन श्रेष्ठजनों द्वारा की जाने वाली राजनीति तथा उन राजनीति के बीच संतुलन लाने का प्रयास है। (धनागरे, 1993)। जन द्वारा इतिहास में योगदान, सम्भवतः इसलिए स्थान नहीं पा सका क्योंकि वे गरीब थे, उनकी कोई पहचान नहीं थी और उनके बारे में कुछ लिखा भी नहीं गया था। न उनके पास साधन थे और न ही उनके पास कोई व्यवस्था थी, जिससे वे अपनी पहचान बना पाते। अधीनस्थ समूहों के इतिहास लेखन में इन समूहों का अर्थ था, वे समूह जो स्वतंत्र थे और जिनका श्रेष्ठजनों के साथ सम्बन्ध नहीं था। विचारधारा की दृष्टि से इस परिप्रेक्ष्य के अर्थ श्रेष्ठजन के साथ नहीं जुड़ते थे। वस्तुतः अधीनस्थ समूहों के सन्दर्भ में विचारधारा इतनी गुणात्मक और विश्लेषणात्मक नहीं थी। ज्यादातर यह भी कहा गया कि इसका सम्बन्ध एक विशिष्ट वर्ग से ही था (सिंधी 1996)। भूतकाल के विश्लेषण के लिए गुहा की योजना केवल इतनी थी कि वर्तमान में भविष्य में परिवर्तन के लिए पहले किये गए उनके प्रयासों को समझा जा सके।

एक अभ्युदय परिवर्तनवादी चेतना का रूपान्तरण इससे समझा जा सके (धनागरे, 1993)। कृषक तथा किसान आन्दोलनों को मात्र खोज का विषय नहीं समझना चाहिए बल्कि उनके प्रयासों को इतिहास निर्माण के रूप में समझा जाना चाहिए। स्पष्टतः ऐसी सोच मार्क्सवादी थी। भारतीय समाजशास्त्रियों द्वारा मार्क्सवाद की स्वीकारोक्ति अनेक कारणों से थी। मार्क्सवाद ने भारतीय समाज में भविष्य के विकल्प को समझने के लिए ठोस समाजशास्त्रीय सैद्धान्तिक आधार प्रदान किया था। बुद्धिजीवियों के लिए यह सब कुछ भावात्मक और पहचान किये जाने वाले प्रसंग थे। मार्क्सवाद पर अपार साहित्य ने भी पाश्चात्य समाजवाद के विरूद्ध एक विशिष्ट मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य से नयी सोच को विकसित करने में मद्द करने में भी मद्द की। मार्क्सवाद का पेराडाइम नव बौद्धिकों के लिए महत्वपूर्ण था।

अधीनस्थ समूह अध्ययनों ने उन सम्भावनाओं को जन्म दिया जिनके आधार पर जन जीवन, संस्थाओं, उनकी समस्याओं, आन्दोलनों और मूल्यों को स्थापित तथा क्षेत्रीय स्तर पर समझाा जा सकता था। इसीलिए इतिहास के इस लेखन को मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य में नहीं इतिहास लेखन तथा संस्कृति लेखन के सन्दर्भ में समझा जाना चाहिए। भारतीय संस्कृति लेखन परिप्रेक्ष्य को विचारात्मक सैद्धान्तिक तथा आनुभविक सन्दर्भों में संयोजित किया जा सकता है। यह भारत के व्यक्तियों, उनके द्वारा किए जा रहे स्वयं के सामाजिक प्रबंध स्थानीय सूक्ष्म स्तर पर और क्षेत्रीय वृहद् पर समझने में समर्थ हो सकता है। यह एक ऐसी योजना है जिससे वर्तमान समाज की बहुलता, वैचारिकता और समाज में व्याप्त विभिन्न आधारों को समझा जा सकता है।

किसानों और श्रमिकों के आन्दोलनों की व्याख्या, जो अधीनस्थ समूहों के अध्ययनों में की गई है, यह दर्शाती है कि भारतीय समाज का एक पक्ष जन के समाजशास्त्र से समझा जा सकता है। आन्दोलन एक प्रक्रिया है, जो विरोध के सन्दर्भ में उन सम्बन्धों को व्यक्त कर सकती है, जिनका आधार अधीनता, शोषण और उत्पीड़न से है। इन्हीं के विरूद्ध संगठित होकर उसके विरोध करने के प्रयास हैं। यही प्रयास विचारधारा में बदल सकते हैं। समाज में व्यक्ति कई स्थानों पर विचारधारा से ही प्रभावित होते हैं। धर्म, सामाजिक संस्थाएँ राजनीतिक और सामाजिक प्रचलन सभी कुछ विचाराधारात्मक हैं।
स्थानीय नायकों, सामुदायिक नेतृत्व, बहुत से व्यक्तियों, अकादमिक तथा साहित्यक छवियाँ, जो विचारधाराओं से जुड़ी हुई हैं, को मात्र विचारधाराओं के तत्व और विचारों के सन्दर्भ में नहीं समझा जा सकता है, बल्कि व्यक्तियों के सामाजिक जीवन और अस्तित्व के स्तर पर उनके दिन–प्रतिदिन के जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों के सन्दर्भ में भी समझा जा सकता है।

5.2.6 अधीनस्थ समूह परिप्रेक्ष्य के साथ जुड़ी हुई गुणवत्ता।

अधीनस्थ समूह परिप्रेक्ष्य अब भी निष्क्रियता में है। परिप्रेक्ष्य एक प्रचलन सा बन गया है। यद्यपि अब भी यह स्थापित करना शेष है कि शोध कार्यों और विश्लेषण में पूर्व स्थापित साधनों से यह कहा तक श्रेष्ठ है। समाज विज्ञानों में इनका अपना अस्तित्व क्या है ? प्रारम्भिक समाजशास्त्र जो समय के साथ मार्क्सवादी या व्यावहारिक विश्लेषण के प्रवेश के साथ भी यह प्रश्न उठ खड़े हुए थे। इनका प्रयोग भी बड़ा था। अब प्रश्न यह है कि अधीनस्थ समूहवादी कितने हैं ? कुछ लोगों का विचार है कि इस परिप्रेक्ष्य की स्वीकारोक्ति या इसका विरोध वस्तुतः लोगों के व्यक्तिगत परिप्रेक्ष्य पर निर्भर है। उदाहरण के लिए सुमित सरकार जो पहले

अधीनस्थ समूह के अध्येता थे, बाद में इसके आलोचक हो गए। उन्होंने अपने अध्ययन साहित्य तथा संस्कृति के आधार पर करने प्रारम्भ किए। यही पद्धति प्रभावशाली होने लगी। उनका विरोध इस परिप्रेक्ष्य से राजनीति को हटाने से था, जो बाद में चलकर अधीनस्थ समूहों के आधारों में सम्मिलित हुआ। उनका आरोप था कि मात्र प्रभुत्ता तथा पराधीनता की संस्कृति के स्वरूपों को समझने से ही समस्या हल नहीं होती। राजनीति का जो प्रभुत्वशाली आधार है, उसका विस्तृत अध्ययन अधीनस्थ समूहों के अध्ययनकर्ताओं ने नहीं किया है, जो उनके समक्ष थे। लगातार संस्कृति पर विचारों और अधीनस्थ समूहों की संस्कृति की वैधानिकता पर प्रश्न क्या देशी स्थानीय संस्कृतियों को मजबूत नहीं करेगी, जो देशी है वही ठीक है, की भावना वस्तुतः एक प्रकार के प्रभुत्व को पैदा करती है काफी समय से अधीनस्थ समूहों पर शोध कार्य कर रहे विद्वानों के लिए ऐसी आलोचनाएँ चिन्ता का विषय नहीं है।

अधीनस्थ समूहों के ये अध्ययन निरन्तर बढ़ते रहे हैं और उनकी एक संरचना स्थापित हुई है। ऐसे अध्ययनों को इतिहासकारों द्वारा प्रशंसा भी मिली और आलोचना भी। मृदुला मुखर्जी ने इकोनॉमिक्स एंड पोलिटिकल वकीलों में अपने एक लेख में लिख है कि उन्हें ऐसे अध्ययनों पर कोई ऐतराज नहीं है। वे स्वयं परिप्रेक्ष्य के प्रति संवेदलशील है। हालांकि अपनी चिन्ताओं के लिए वे अधीनस्थ शब्द का प्रयोग नहीं करतीं। समाजशास्त्री तथा मानवशास्त्री, जो किनारे खड़े इतिहासकारों के संघर्ष को देख रहे थे, वस्तुतः कुछ कि कर्तव्यविमूढ़ की मुद्रा में थे। 'कन्ट्रीब्यूशन्स टू इंडियन सोश्योलॉजी' में अधीनस्थ समूह के अध्ययनों पर समीक्षाएँ तथा समीक्षा लेख प्रकाशित हुए थे। उनके अनुसार औपचारिक संस्थागत आधारों के प्रति यह परिप्रेक्ष्य संवेदलनशील रहा है। समाजशास्त्रीय तथा सामाजिक मानवशास्त्रियों की मान्यता थी कि जाति और ग्रामीण अध्ययनों में पहले ही अधीनस्थ समूह के कई पक्षों का अध्ययन किया जा चुका है। जाति व्यवस्था और ग्रामीण व्यवस्था के अध्ययनों में इन आधारों की ओर ध्यान आकर्षित किया जा चुका है। 1990 तक समाजशास्त्रियों की अकादमिक कड़ियाँ इतिहास से जुड़ी हुई थीं। समाजशास्त्रियों ने इतिहास की समझ के लिए इस परिप्रेक्ष्य को भी स्वीकार कर लिया था। अमिताभ घोष ने कई रचनाएँ लिखीं। क्या यह इस बात का सूचक है कि कहा जाए कि अधीनस्थ समूह परिप्रेक्ष्य अब आ गया है।

5.2.7 कृषक विद्रोह

भारत में कृषक विद्रोह के सम्बन्ध में हमें जानकारी ब्रिटिश शासनकाल के दौरान अंग्रेजों के औपनिवेशिक नीति के कारण मिलती है। अंग्रेजों के आने से पहले यदि हम भारत के इतिहास को देखें तो राजे–महाराजे तथा सुल्तान एवं बादशाह के शासन काल में हमें कृषक विद्रोह देखने को नहीं मिलता है। इसका कारण यह था कि भारत के शासकों द्वारा कर निर्धारित था एवं आकाल तथा सुखा के समय कृषकों के कर माफ भी कर दिया जाता है। किसान कृषि कर चुकाने के लिए शाहूकारों या शूदखोरों से कर्ज लेकर शायद ही चुकाता था। किसान जितना की अंग्रेजों के शासन काल में था। ब्रिटिश शासन के दौरान जो पहले सामंत एवं किसानों के बीच आत्मीय सम्बन्ध थे वे टूट गए। ब्रिटिश शासन ने अपनी आय या राजस्व को ज्यादा से ज्यादा बढ़ाने के लिए भारत में भू–राजस्व नीति लाई। इस नीति के तहत ही भारत में जमींदारी प्रथा, रैयतवाड़ी प्रथा एवं महलवाड़ी प्रथा की शुरूआत हुई। इस प्रथा में अंग्रेजों ने उस व्यक्ति का भूमि का मालिक माना जो ज्यादा से ज्यादा बोली लगाकर उसे ले। इस प्रकार से ऊँची बोली वाले लोग जमींदार हो गए। बाद में अंग्रेजों ने इस प्रथा को स्थाई बना दिया। जमींदार तभी तक जमीन का मालिक होता था जब

तक जमींदार एक निश्चित अवधी से पहले तक लगान देता था। यदि निश्चित समय तक लगान जमींदार नहीं देता था तो उसकी जमींदारी का निलाम कर दिया जाता था। इस प्रकार हम देखते है कि जमींदारों पर भी अंग्रेजों को कर/लगान देने के बाध्य थे। यदि वे ऐसा नहीं करते तो उनकी जमींदारी ही खतरे में पड़ जाती थी। अंग्रेजी सरकार को सिर्फ एवं सिर्फ लगान से मतलब था चाहे सुखा हो या आकाल। किसान भी भूमि कर देने के लिए बाध्य था चाहे कृषि का उत्पादन हो या न हो। सुखा हो या आकाला प्रत्येक स्थिति में किसान कर देने के बाध्य था। इस कर को देने के लिए किसानों द्वारा शाहूकारों से ऋण लिया जाता था एवं किसान ऋण के जाल में फंस जाता था कि वह कभी भी इससे मुक्त नहीं हो पाता था। किसानों के लिए सिर्फ दो ही रास्ते बचते थे या तो सपरिवार आत्महत्या करे या सरकार के विरूद्ध विद्रोह। भारत के कई हिस्सों में असंतोष व्याप्त हो गया। इसी असंतोष का परिणाम विद्रोह के रूप में उभरा जिसे हम किसान/कृषक विद्रोह के रूप में जानते हैं।

भारत में कृषक विद्रोह की ऐतिहासिकता अक्सर ग्रामीण क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर विद्रोह से निपटने के लिए औपनिवेशिक प्रशासन के प्रयासों का रिकार्ड रहा है। ब्रिटिश शासन ने किसान विद्रोह को अपराध या पैथोलॉजी के रूप में देखा। उन्होंने कभी भी इसे सामाजिक न्याय के लिए संघर्ष के रूप में नहीं देखा। रणजीत गुहा भारत के ग्रामीण क्षेत्रों के किसान संघर्ष को समझना चाहते थे। रणजीत गुहा अपनी पुस्तक **''एलिमेंट्री आस्पेक्ट्स ऑफ पीजेंट इनसर्जेन्सी इन कोलोनियल इंडिया''** में औपनिवेशिक भारत में किसान विद्रोह के प्राथमिक पहलुओं के अध्ययन में (1983) विद्रोहियों के उद्देश्यों और उद्देश्यों को समझने की विफलता को सही करने की कोशिश करता है। रणजीत गुहा ने किसान के दृष्टिकोण को अपनाया और ''किसान विद्रोही की अपनी दुनिया के बारे में जागरूकता और उसकी इच्छा बदलने की जाँच'' की जाँच की। 1783–1900 के बीच की अवधि में रणजीत गुहा ने उन प्राथमिक बुराइयों को समझने का प्रयास किया जो उस अवधि की किसानी मानसिकता को स्पष्ट करते थे।

इस अध्ययन का उद्देश्य संघर्षों की श्रंखला को समझना नहीं था बल्कि पुरा उद्देश्य एक सामान्य अवस्था को समझने का था जो किसानों की अधीनस्थता और उससे मुक्ति पाने के प्रयासों के साथ जुड़ा हुआ था। यदि कोई राष्ट्रवादी और कम्युनिष्ट नेतृत्व के लिए मान्यता प्राप्त लोकप्रिय आन्दोलनों पर ध्यान से देखें तो रोलेट एक्ट के विरूद्ध सत्याग्रह हो या भारत छोड़ो आन्दोलन हो या तेभागा आन्दोलन हो या तेलंगाना आन्दोलन ही जो अपनी ही तरह के थे, उनकी संरचनाओं में बहुत कुछ समानताएँ थी।
इस पुस्तक मे आठ अध्याय शामिल हैं जिनमें परिचय और उपन्यास शामिल हैं। मुख्य अध्याय हैं–नकारात्मक, अस्पष्टता, मॉडेलिटी, एकता, ट्रांसमिशन और क्षेत्रीयता।

अध्ययन उन ऐतिहासिक सम्बन्धों की चर्चा करता है जो प्रभुत्वशाली अधीनता के थे। ब्रिटिश सत्ता में सारे भारत में अधीनता का यही स्वरूप था ऐसा स्वरूप 1900 तक चलता रहा। यह कहा गया कि सभी समाजों के इतिहास में परस्पर विरोधी वर्ग व्यवस्था रही है। विभिन्न समयों में इसकें स्वरूप अलग–अलग रहे हैं। लेकिन चाहे जो स्वरूप रहे हों, एक बात सामान्य रही है कि एक वर्ग दूसरे वर्ग का शोषण करता रहा है। यह कथन समस्त युगों पर समान रूप से लागू है।भौतिक तथा आध्यात्मिक परिवेश में परस्पर विरोध रहा है। श्रेष्ठजन और किसानों के बीच आमूलचूल परिवर्तन के आन्दोलन इस प्रकार के विभेदों को मिटाने के

लिए होते रहे हैं। ऐसी वर्ग संरचना एक–दूसरे की पूरक है।यह बात साफ है कि भारतीय राष्ट्रवादी आन्दोलन वह नहीं है जैसा कि श्रेष्ठ इतिहासकारों के बयान किया है। वस्तुतः विद्रोह की परम्परा पहले से ही इस देश में मौजूद थी। भारतीय राजनीति में महात्मा गांधी के प्रवेश तथा जवाहर लाल नेहरू के भारत की खोज से भी पहले किसानों के विद्रोह की परम्पराएँ मौजूद थी। स्वाधीनता संग्राम के आन्दोलन उसी परम्परा को निभा रहे थे।

5.3 निष्कर्ष

रणजीत गुहा अधीनस्थ समूह अध्ययन के पहले सम्पादक थे जिन्होंने अधीनस्थ का अर्थ सिर्फ कनिष्ठ अधिकारी नहीं होता बल्कि इस शब्द का प्रयोग अकादमिक लेख के रूप में किया। रणजीत गुहा ने अधीनस्थ समूह अध्ययन के नाम से एक श्रृंखला प्रकाशित की जिनका उद्देश्य समाजशास्त्र के अध्ययन के क्षेत्र में एक अलग अध्ययन का तरीका उपलब्ध कराना था। गुहा ने इस परिप्रेक्ष्य का उपयोग समाज के कमजोर लोगों के दृष्टिकोण से अध्ययन में करते हैं गुहा ने इस परिप्रेक्ष्य का उपयोग करते हुए भारत में औपनिवेशिक काल में हुए किसान विद्रोह की व्याख्या करते हैं और कहते हैं कि उपनिवेशवादियों ने विद्रोह की अपराध के रूप में देखा कभी भी सामाजिक न्याय के रूप में संघर्ष को नहीं देखा।

5.4 भावी अध्ययन

1) A rule of Property for Bengal:An easy on the idea of the permanent settlement (1963)
2) Subaltern Studies
3) Elementary Aspects of insurgency in colonial india

5.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न–Long Questions

1–भारत में विद्रोह के सम्बन्ध में रणजीत गुहा के विचारों को स्पष्ट करें।

2–अधीनस्थ समूह परिप्रेक्ष्य के सन्दर्भ में डेविड हार्डीमैन तथा रणजीत गुहा के अध्ययन में तुलनात्मक सम्बन्ध स्थापित करें।

लघु उत्तरीय प्रश्न–Short Questions

1–रणजीत गुहा के अनुसार अधीनस्थ समूह अध्ययन में कैसे गुणवत्ता लाई जा सकती है।

2–अधीनस्थ समूह से सम्बन्धित इतिहास शास्त्रीय पद्धति क्या है।

3–अधीनस्थ समूहों का उभरता परिप्रेक्ष्य से क्या तात्पर्य है।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न– Objective Questions

1–इनमें से कौन अधीनस्थ समूह अध्ययन से सम्बन्धित नहीं है?

(क) रणजीत गुहा (ख) डेविड हार्डीमैन

(ग) डॉ. भीमराव अम्बेडकर (घ) योगेन्द्र सिंह

2–इनमें से कौन सी रचना रणजीत गुहा की है?

(क) ए रूल ऑफ प्रापर्टी फार बंगाल (ख) फिडिंग द बनिया (ग) हू वर शूद्रा (घ) कास्ट इन इण्डिया

3–इनमें से कौन सी रचना रणजीत गुहा की नहीं है?

(a) A rule of Property for Bengal
(b) Subaltern Studies
(c) The coming of Devi
(d) Elementary Aspects of insurgency in colonial india

4. कृषक विद्रोह के अध्ययन के लिए रणजीत गुहा ने किस अध्ययन पद्धति का प्रयोग किया।

(क) संरचनात्मक पद्धति (ख) प्राकार्यात्मक पद्धति

(ग) अधीनस्थ समूह पद्धति (घ) संघर्षवादी पद्धति

उत्तर– 1–द, 2–क, 3–C, 4–स

5.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1-Dhanagare, D.N (1993), Themes And Perspectives In Indian Sociology, Jaipur : Rawat Publications.

2-Guha, Ranjit, (1963), A Ruke Of Property For Bengal : An Eassay On The Idea Of The Permanent Settlement, Paris.

3-Guha, Ranjit (1983), Elementary Aspects Of Insurgency In Colonal India, Delhi : Oxford University Press.

4-Laclau, Ernesti, (1979), Polotics And Ideology In Marxist Theory, Loadon: Verso Publications.

5-Singhi, N.K. (Ed.), (1996), Theory And Ideology In Indian Sociology, Jaipur: Rawat Publications.

6-बी.के. नागला, भारतीय समाजशास्त्री चिन्तन, रावत पब्लिकेशन, जयपुर

इकाई–6

डेविड हार्डीमैन (David Hardiman)

इकाई की रूपरेखा–

6.0 उद्देश्य

6.1 परिचय

6.2 पद्धतिशास्त्र

6.3 अधीनस्थ समूह परिप्रेक्ष्य

6.4 डेविड हार्डीमैन द्वारा किया गया अध्ययन

6.4.1 दक्षिण गुजरात में देवी आंदोलन

6.4.2 प्रतिरोध की उत्पति

6.4.3 बनिया को दूध पिलाना

6.5 निष्कर्ष

6.6 भावी अध्ययन

6.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

- दीर्घ उत्तरीय प्रश्न
- लघु उत्तरीय प्रश्न
- वस्तुनिष्ठ प्रश्न

6.8 संदर्भ ग्रंथ

6.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के निम्न उद्देश्य हैं:

1. डेविड हार्डीमैन के जीवन परिचय को जाने का प्रयास करना।
2. डेविड हार्डीमैन के कार्यों और प्रसंगों को समझना ।
3. भारत में प्रभुत्वशाली वर्ग तथा अधीनस्थ वर्ग के मध्य सम्बन्ध को समझना।
4. अधीनस्थ समूह परिप्रेक्ष्य के माध्यम से यह समझना की कैसे प्रभुत्वशाली वर्ग अधीनस्थ वर्गों का शोषण करते हैं।

5. गुजरात में देवी आंदोलन की उत्पति एवं वहाँ के लोगों में आई जागरूकता को समझना।
6. बनियों द्वारा आकाल एवं सूखा के समय स्थानीय लोगों आर्थिक सहायता देना तथा बाद में बनियों के द्वारा इनका शोषण करना।
7. आदिवासीयों में आई जागरूता को समझना एवं स्वयं को बनियों तथा जमीनदारों से होने वाले शोषण से बचाना।

6.1 डेविड हार्डीमैन का जीवन परिचय

डेविड हार्डीमैन जन्म अक्टुबर 1947 ई0 में पाकिस्तान के रावलपिंडी में हुआ। आपने लिक्सेस्टर विश्वविद्यालय तथा ऑक्सफोर्ड विश्व विद्यालयों में अध्ययन किया वर्तमान में यह यूनिवर्सिटी ऑफ वारविक, यूके से सम्बद्ध है। 1980 में आप सूरत स्थित 'सेंटर फॉर स्टडीज इन सोशल साइंसेज' के रिसर्च फेला के छात्र रहे। 1981 ई0 में डेविड हार्डीमैन सामाजिक विज्ञान संस्थान कलकत्ता से सम्बद्ध रहे। आप एक विशद लेखक रहे हैं इसके साथ ही आपके द्वारा अधीनस्थ समूह परिप्रेक्ष्य को विकसित किया गया। डेविड हार्डीमैन इस अधीनस्थ समूह अध्ययन समूह के संस्थापक सदस्य थे सबसे उल्लेखनीय बात यह रही कि 1982 ई0 के बाद आपकी जो भी रचनाएँ प्रकाशित हुई वे सब के सब अधीनस्थ समूह परिप्रेक्ष्य से सम्बन्धित भी।

आप (डेविड हार्डीमैन) एक समाजशास्त्रीय, संवेदनशील इतिहासकार हैं। आपका सबसे बड़ा योगदान सब अधीनस्थ समूह परिप्रेक्ष्य की विकसित करने में रहा। एक इतिहासकार के रूप में आपकी विशेषज्ञता आधुनिक भारत के इतिहास के संदर्भ में रही। 1960 के दशक में आपने अपने आप को दक्षिण एशिया के इतिहास पर अध्ययन पर केंद्रित किया और इस अवधि में आपने भारत में रहते हुए दक्षिण एशिया में उपनिवेशीय आधारों को समझने के लिए विशेषकर ग्रामीण समाज पर औपनिवेशिक शासन के प्रभावों पर ध्यान केंद्रित किया। डेविड हार्डीमैन के अधिकांश रचनाएँ दक्षिण एशिया में उपनिवेशीय आधारों को समझाने के लिए लिखी गई। डेविड हार्डीमैन के रचनाओं में औपनिवेशिक कालीन ग्रामीण समाज, विभिन्न स्तरों पर शक्ति सम्बन्ध, भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन भारतीय राष्ट्र एवं पर्यावरणीय इतिहास से सम्बंधित विषय शामिल है।

डेविड हार्डीमैन 1970 के दशक के अंत में दक्षिण एशिया में अधीनस्थ समूहों के सामाजिक इतिहास का अध्ययन करने वाले इतिहासकारों के सम्पर्क में आए और इन समूह में शामिल होकर अध्ययन किया। ग्रामस्कीयन द्वारा प्रतिपादित सब आल्टर्न जिसका अर्थ है अधीनस्थ समूह को समाज में वर्चस्व और अधीनता के सम्बधों की केंद्रीयता पर बल देने के लिए चुना गया था, जिसमें वर्ग के विभाजन को औद्योगिक दुनिया

में विकसित नहीं किया गया था। अधीनस्थ समूह का यह भी अर्थ है कि समाज में प्रमुत्वशाली तथा अधीनस्थ लोगों के बीच के सम्बधों का अध्ययन।

डेविड हार्डीमैन ने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का स्थानिय स्तर पर परीक्षण किया एवं इसके लिए उन्होने गुजरात को चुना। चूँकि गुतरात महाँत्मा गाँधी का गृह क्षेत्र था एवं महाँत्मा गाँधी गुजरात के किसान आंदोलन, मजदूर आंदोलन आदि में आम जनता से प्रत्यक्ष जुडे थे। अतः इनका अध्ययन गाँधी का नेतृत्व एवं सक्रिय ग्रामीण किसानों के बीच सम्बन्ध एवं विद्रोह था। इसके लिए डेविड हार्डीमैन ने सबसे पहले ग्रामीण समाज की शक्ति संरचनाओं की जाँच की। एवं पाया कि कैसे एक रूपी अधिकार एवं इस अधिकार को सुरक्षित रखने के लिए कैसे विद्रोह होते हैं। डेविड हार्डीमैन ने गुजरात के शराब विक्रेताओं के खिलाफ आदिवासियों के विरोध के आन्दोलन का भी अध्ययन किया जिन्होंने अंग्रेजों द्वारा आपूर्ति के एकाधिकार का अधिकार प्राप्त किया था और इन शराब के ठेकेदारों ने खुद को आदिवासियों की कीमत पर समृद्ध किया था।

डेविड हार्डीमैन ने महाँत्मा गाँधी के भारत एवं विश्व में उनकी विरासत पर एक किताब लिखी। जो महाँत्मा गाँधी पर उनका विशेष अध्ययन है। इस किताब में महाँत्मा गाँधी जी के समय की स्थिति तथा सामाजिक परिवेश का गहन अध्ययन किया गया है। भारत में रहते हुए महाँत्मा गाँधी की विरासत का आँकलन करने में महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

डेविड हार्डीमैन ने सन् 1983 से 1989 तक गुजरात में सामाजिक अध्ययन केंद्र में रिसर्च फेलो के रूप में काम किया। यहाँ पर इन्होने सरकार और गैर सरकारी संगठन विकास परियोजनाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया। अपने ऐतिहासिक शोध और लेखन को और विकास सम्बन्धित शोध परियोजनाओं पर भी काम किया।

6.1 पद्धतिशास्त्र

डेविड हार्डीमैन ने अपने अध्ययनों जिन पद्धतिशास्त्र का प्रयोग किया वह है अधीनस्थ समूहों का परिप्रेक्ष्य हार्डीमैन अधीनस्थ समूह परिप्रेक्ष्य के प्रतिपादकों में एक है। यह परिप्रेक्ष्य भारतीय समाज के अध्ययन का एक तरीका है। इस परिप्रेक्ष्य के माध्यम से आदिवासी तथा किसान आंदोलनों की समझा जा सकता है। यह समाज के उच्च तथा निम्न लोगों के बीच राजनीति का समझने का एक महत्वपूर्ण परिप्रेक्ष्य है। अधीनस्थ समूह परिप्रेक्ष्य इतिहास को समझने का एक नया नजरिया प्रदान करता है। यह परिप्रेक्ष्य स्वयं का ही अपना

इतिहास बनाने का प्रयास करता है आदिवासियों, किसान, दलित एवं कृषक मजदूर अभी तक सिर्फ इतिहास के पात्र रहे हैं लेकिन यह परिप्रेक्ष्य उनके द्वारा स्वयं के इतिहास लेखन की क्रिया है। यह बदलती हुई परिस्थितियों में उत्पन्न जागरूकता की हैं।

6.2 अधीनस्थ समूह परिप्रेक्ष्य

अधीनस्थ समूह परिप्रेक्ष्य भारतीय समाज में दलितों, शोषितों एवं निम्न वर्ग के लोगों का अध्ययन का एक तरीका है। डेविड हार्डीमैन ने इस परिप्रेक्ष्य का उपयोग कर भारतीय समाज का अध्ययन किया। इस परिप्रेक्ष्य का उपयोग कर भारतीय समाज का अध्ययन करने वाले प्रमुख विद्धान डॉ. भीमराव अम्बेडकर, रणजीत गुहा, डेविड हार्डीमैन तथा कपिल कुमार आदि हैं। अधीनस्थ समूह परिप्रेक्ष्य यह बताता है कि इतिहास सिर्फ राजाओं महाराजाओं एवं राष्ट्रवाद का वर्णन नही है बल्कि इसमें कमजोर, दलित एवं शोषित लोगों के आवाज इसमें शामिल हैं। अतः इतिहास का पुनःलेखन किया जाना चाहिए। यही कारण है यह परिप्रेक्ष्य राजाओं, महाराजाओं के इतिहास को छोड़कर अधीनस्थ समूह जैसे किसान, गरीब, दलित, भूमिहीन श्रमिक एवं शोषित किसान पर अपना ध्यान केन्द्रित करता है। यह परिप्रेक्ष्य इस बात पर भी बल देता है कि कैसे अधीनस्थ समूह में स्वयं के प्रति चेतना आती है। इस चेतना के पीछे अधीनस्थ समूह के विभिन्न आंदोलनों का हाथ है जो किसानों, आदिवासियों एवं साहूकारों तथा नगरीय व्यापारियों के बीच हन्द के कारण उत्पन्न हुआ। ब्रिटिश शासन व्यवस्था के विरूद्ध भी अधीनस्थ समूह के लोगों ने संघर्ष किया। इन संघर्षों का ही परिणाम था कि अधीनस्थ समूह के लोगों में जागृति आई एवं वे अपनी स्थिति सुधारने में सफल रहे।

डेविड हार्डीमैन द्वारा किया गया विभिन्न अध्ययन–

1. दक्षिण गुजरात में देवी आंदोलन
2. प्रतिरोध की उत्पत्ति
3. बनियों को दूध पिलाना

6.3 डेविड हार्डीमैन द्वारा किया गया अध्ययन

डेविड हार्डीमैन ने भारत में शोषितों, दलितों एवं आदिवासियों का अध्ययन किया, तथा अपने अध्ययन में पाया कि कैसे प्रभुत्वशाली वर्ग, साहूकार इनका शोषण करते हैं और किस प्रकार से राजसत्ता का उपयोग ये इनका शोषण करने के लिए किया करते हैं। साथ ही इन्होंने यह भी पाया कि शोषितों का शोषण किस

प्रकार से किया जाय कि उन में इनके प्रति (साहूकार, प्रभुत्वशाली वर्ग) विद्रोह भी न पनप सके। डेविड हार्डीमैन द्वारा किये गये अध्ययन को हम निम्नलिखित बिन्दुओं से समझ सकते हैं–

6.4.1 दक्षिण गुजरात में देवी आंदोलन

डेविड हार्डीमैन ने दक्षिण गुजरात में देवी आंदोलन के अपने अध्ययन अधीनस्थ समूह परिप्रेक्ष्य का उपयोग किया। इन्होने दक्षिण गुजरात में 20 वीं शताब्दी के शुरूवाती दिनों में जिस जन आंदोलन को देखा उसे वहॉ देवी आंदोलन कहा गया है। यह एक शांतिपूर्ण आंदोलन था जो यहाँ के जनजातीय लोगों के नेतृत्व में एक विस्तृत क्षेत्र में फैला था। इस आंदोलन में काफी संख्या में लोग शामिल थे और यह आंदोलन यहाँ के आदिवासियों में सामाजिक सुधार लाने पर आधारित था। इस आंदोलन का नेतृत्व स्वयं आदिवासियों ने ही किया। डेविड हार्डीमैन ने देखा कि आदिवासी सरकारों के बीच यह आंदोलन वर्तमान सरकार अखबारों राष्ट्रवादियों और बाद के इतिहास कारों में इसे नजर अंदाज कर दिया है। ऐसे आंदोलनों पर कोई पूर्ण मोनोग्राफ भी नहीं है और न ही महत्वपूर्ण गतिविधियों के दस्तावेज मौजूद है। आदिवासियों के उद्धार के लिए बाहरी तथा बाहरी लोगों के प्रभाव जैसे महाँत्मा गाँधी, देवी आंदोलन या आदिवासी मूल के कुछ सामाजिक कार्यकर्ताओं ने आवश्यक कार्य किया है। आदिवासियों के इस कार्य के लिए कोई अपनी भूमिका नही निभाई। आयोजकों की भूमिका नगण्य थी। जो आंदोलन समाजवादियों द्वारा निर्देशित हो रहे थे वे आदिवासी क्षेत्र के बाहर से आए लोग थे। इस आंदोलन के लिए आदिवासियों के लिए न ही कोई प्रोत्साहन था और न ही कोई आधार। हार्डीमैन ने देखा कि आदिवासी जीवन के मौजूद पर्यवेक्षकों ने आदिवासियों के अस्तित्व को चुनौति दी और बताया कि आदिवासियों में कोई क्षमता है। इस प्रकार आदिवासी अस्तित्व का इस प्रकार से नकारा गया। हाडिमैन तथा अन्य अधीनस्त समूहो पर कार्यरत लोगों ने इसकी आलोचना की।

6.4.2 प्रतिरोध की उत्पति

आदिवासियों को मद्यपान, शराब के विरुद्ध कई व्यक्ति और समूहों ने चेतावनी दी थी। इसमें ग्रामीण अभिजात की और गाँव के भजन मंडल समूह शामिल है लेकिन आदिवासियों के चेतना में महत्वपूर्ण परिर्वतन देवी आंदोलन के साथ आया।

डेविड हार्डीमैन ने अपनी पुस्तक 'कमिंग ऑफ देवी' में पश्चिमी भारत में साहूकारों द्वारा आदिवासियों के शोषण के सम्बन्ध में विस्तृत चर्चा की है। इनके अनुसार 1921 ई0 में पालघर तालुक के मछुवारों कें बीच देवी आंदोलन एक छोटे से प्रायोजित समारोह के रूप में शुरु हुआ और बाद में यह गुजरात के अन्य क्षेत्रों में फैल गया। देवी आंदोलन के सम्बन्ध में डेविड हार्डीमैन ने देखा कि किस प्रकार आदिवासियों ने स्वयं को

सामाजिक सुधार आंदोलन में शामिल किया बल्कि जमीनदारों एवं पारसी शराब विक्रेताओं के वर्चस्व के विरुद्ध विद्रोह भी किया। देवी आंदोलन के सम्बन्ध में देवी के बारे में डेविड हार्डीमैन बताते है कि पश्चिमी भारत में यह मान्यता बनी हुई थी कि देवी पूर्व के पहाड़ी से उत्तरी और उनकी माँग आत्मा के माध्यम से मुख द्वारा व्यक्त किया गया। भोपा अपने आदमियों के साथ लाल कपड़ा लेकर बैठता था और आत्मा के आने पर जोर–जोर से सिर हिलाता था तभी देवी की आज्ञाएँ सुनाई देती थी ये आज्ञाएँ निम्न है–

1–शराब और ताड़ी पीना बन्द करो।

2–माँस खाना बन्द करो।

3–साफ–सुथरा और सादा जीवन जीओ।

4–स्वच्छता से रहो।

5–आदमी को दिन में दो बार स्नान करना चाहिए।

6–औरतों को दिन में दो बार नहाना चाहिए।

7–पारसियों से कोई सम्बन्ध नहीं रखें।

जब ये आज्ञाएँ समाप्त हो गई तब देवी के रूप में तैयार की गई लड़की को सिक्कों का उपहार भेंट किये जाते थे और अंत में सभी लोग भण्डारा (एक साथ भोजन) करते थे। सामूहिकता और देवी के शब्द ने आदिवासियों के बीच चेतना में व्यापक परिवर्तन उत्पन्न किया। इससे शाहूकारों और पारसियों के पंजों से मुक्ति मिली इसके साथ–साथ आदिवासियों में राजनीतिक लाम्बंदी बढ़ी एवं अंततः उनके जीवन स्तर में सुधार हुआ इस प्रकार हार्डीमैन मानते है किइस देवी आंदोलन के कारण आदिवासियों को सम्पूर्ण मुक्ति मिल गई। आगे डेविड हार्डीमैन बताते हैं कि इस आंदोलन के कारण इन आदिवासियों को पारसियों से तो मुक्ति मिल गई लेकिन वे अपने ही प्रमुखों के अधिपत्य में आ गए। आदिवासियों में इस आंदोलन के कारण ही इनमे से कुछ श्रेष्ठजन के रूप में उभर कर आए जिन्होंने इस क्षेत्र में बडें किसानों का पैर जमने नहीं दिया। इनके कारण ही आदिवासियों मे स्वाभिमान आया और उन्होंने अपनी अवस्था को नियंत्रित भी किया। ये अंग्रेजों की पूँजीवादी अर्थव्यवस्था से जुड गए जिसे ब्रिटिश सरकार ने संरक्षण दिया। इस प्रकार यहाँ के आदिवासियों ने औपनिवेशिक सरकार में भी अपनी गरिमा और आत्म नियंत्रण बनाए रखने में कामयाब रहे। यहाँ तक कि जब देवी आंदोलन समाप्त हो गया उसके बावजूद भी इस क्षेत्र के आदिवासियों पर इसका

व्यापक प्रभाव रहा। मुखर और उन्हें यदि दे रही हैं जिसमें सामूहिक कल्याण के लिए स्वयं सहायता और कार्यवाही शामिल है।

इस लिए यदि दक्षिणी गुजरात के वन क्षेत्र के आदिवासियों के वर्तमान अस्तित्व में विशिष्टता और आत्म–स्वामित्व की समझना है तो यह सिर्फ ऐसा पहला तरीका है जिसे आदिवासियों द्वारा निर्मित देवी आंदोलन को समझना होगा कि कैसे आदिवासियों ने देवी आंदोलन के प्रति अपनी रवैया रखी एवं कैसे इस आंदोलन में उन्होंने भाग लिया। अतः यदि समाज वैज्ञानिकों को डेविड हार्डीमैन द्वारा प्रस्तुत उदाहरणों के आधार पर समझना होगा नहीं तो वे विशेष समझ से हट जायेंगे एवं गहन अध्ययन नहीं कर पायेंगे।

6.4.3 बनिया को दूध पिलाना

'फीडिंग द बनिया' नामक पुस्तक में हार्डीमैन ने शताब्दियों से ग्रामीण भारत में अधीनस्थ समूहों के ऊपर लोगों द्वारा शक्ति प्रयोग के स्वरूपों के सम्बन्ध में चर्चा किया है। इस पुस्तक में हार्डीमैन ने बताया है कि अधीनस्थ समूहों के शोषण के पीछे मजबूत राजनीतिक तथा सांस्कृतिक शक्तियाँ रही हैं। इन शक्तियो के प्रयोग से पीछे अनेक पक्ष रहे है। सबसे आश्चर्य बात यह है कि प्राचीन काल से ही ये शक्तियाँ नये वातावरण में भी उपस्थित है। प्रतिरोध किये जाने और विद्रोह की स्थिति उत्पन्न होने के बावजूद बनियों तथा व्यापारियों ने न सिर्फ अपनी स्थिति को बनाये रखा साथ ही साथ अधीनस्थ समूहों से सम्बन्धों को भी बनाये रखने में सफल रहे। और अपने लाभ को बरकरार रखा। हार्डीमैन ने यह देखने का प्रयास किया कि कैसे प्रभावशाली तरीके से ये शोषक अपने प्रचलनों को बनाये रख सके राज्य की संरचना को मदद कर सकें जिनका वे शोषण कर रहे थे उनके साथ सम्बन्धों और विद्रोह की अवस्थाएँ क्यों बनी।

पश्चिम भारत में एक कहावत जो बनियों के किसानों के ऊपर अधिपत्य सम्बन्ध को दर्शाता है हमने सेठ–बनियों को इतना प्यार दिया है कि उनकी निरन्तर माँग पर अपने द्वारा उत्पन्न अन्न से पेट भरते हैं, इसलिए बनिये धनी हो गए जबकि किसान स्वयं गरीबी के चक्र मे फँस गए।

डेविड हार्डीमैन की यह दूसरी प्रमुख पुस्तक एक बडे पैमाने पर कृषक समाज के एक बडे पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के साथ सम्बन्धों को दशाती है। डेविड हार्डीमैन ने ग्रामीण और धन के बीच सम्बन्धो में शामिल गहन अर्थो की जांच की। जिनका भी इन साहूकारों से कर्ज लेने किा अनुभव है वही जानते हैं कि शोषण का स्वरूप क्या होता है? और गाँव का साहूकार कितना लाभप्रद है। यहाँ एक प्रश्न उठकर खडा होता है कि गाँव में भारतीय स्टेट बैंक या अन्य बैंकों की स्थानीय शाखा होते हुए भी ग्रामीण अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए बनियों के पास क्यों जाते है? ये बैंक बिना किसी कठिनाई के सस्ते दर पर कर्ज उपलब्ध कर

सकते हैं। इस पहेली का जबाब का एक महत्वपूर्ण हिस्सा डेविड हार्डीमैन के अध्ययन द्वारा प्रदान किया गया। ऐतिहासिक और समाजशास्त्रीय तथ्यों से परिपूर्ण हार्डीमैन का मानना है कि किसान स्थानीय प्रमुख वर्ग के मकड़जाल में फसा हुआ है। बनिया स्वयं भले प्रमुख वर्ग का सदस्य न हो पर उसके निहित सम्बन्ध ऐसे प्रमुख वर्ग के सदस्यों के साथ है। ग्रामीण स्तर पर ये शक्तियाँ मजबूत रही हैं। यह एक समाज या जो पर्याप्त रूप में उन संस्थाओं और सम्बधों से परिपूर्ण पूँजीवादी था। यहाँ साहूकारों ने विस्तृत रूप अपने लाभ कमाने के लिए एक ऐसी व्यवस्था स्थापित कर दी थी कि उत्पादन तो किसान करेगा लेकिन उनका वितरण उनके माध्यम से होगा। इस प्रकार सिर्फ उत्पादन पर ही ये बनिये अपने अनुसार अपने लाभ के लिए उत्पादित वस्तुओं को अपने नियंत्रण में रखते थे।

अपने अध्ययन में हार्डीमैन ने पश्चिम भारत के किसानों एवं शोषक बनियों के बीच अतः सम्बन्धो की चर्चा करते हैं और बताते हैं कि शोषक बनियों ने शताब्दियों से अधीनस्थ समूहों पर अपना अधिकार बनाए रखा। इस में डेविड हार्डीमैन ने बताया कि औपनिवेशिक काल के पहले तथा औपनिवेशिक शासन व्यवस्था में इन बनियों को राज्य की ओर से प्राश्रय मिला। यह प्राश्रय उन्हें राज्य की अधिपत्यवादी नीति तथा वैचारिक दृष्टि दोनों से ही मिला। इन्हीं शक्तियों के आधार पर बनियों ने किसानों आदिवासियों तथा अन्य को समूहों को अधीनस्थ बनाये रखा।

डेविड हार्डीमैन के विचारों तथा उनके अंतदृष्टि पर ग्रामों की फूको तथा बोर्दियों का प्रभाव रहा है। डेविड हार्डीमैन बनियों के संदर्भ में व्याख्या करते हैं और कहते हैं कैसे बनियों ने अपनी शक्ति को मजबूत किया जबकि पश्चिम भारत में बनियों एवं स्थानिय लोगों के सम्बन्ध तनावपूर्ण थे जिसके कारण वहाँ कई बार विरोध एवं प्रतिरोध का जन्म दिया था। डेविड हार्डीमैन की किताब बनिया को दूध खिलाने की शुरूआत गुजरात में परिश्रम के अध्ययन के रूप में हुई थी जो ऐतिहासिक अनुसंधान के लिए उनका प्रमुख क्षेत्र रहा है। हालाँकि अध्ययन के दौरान पश्चिम भारत के अन्य क्षेत्रों को भी शामिल किया गया जिसमें राजस्थान भी शामिल किया गया क्योकि मारवाडी बनियों का मूल स्थान राजस्थान रहा है। इन बनियों को भी शोषक की श्रेणी मे रखा जा समता है। यह पुस्तक पूर्ण–औपनिवेशिक, औपनिवेशिक काल के इतिहास का अभूतपूर्व वर्णन है जो किसानों के अतिरिक्त उत्पादन को इन व्यापारीयों द्वारा हड़पने की प्रक्रिया का वर्णन करता है साथ ही यह भी तर्क देता है कि भारतीय स्वतंत्रता के बाद इस व्यवस्था में कुछ हद तक बदल गई है।

देवी आंदोलन के अपने अध्ययन के सम्बन्ध में डेविड हार्डीमैन ने ग्रामीणों की बदलती दुनिया में एक अतिरिक्त परिप्रेक्ष्य प्रदान किया क्योंकि उन्होंने अपने आसपास के व्यापक समाज में परिर्वतनों के साथ

सामना करने की कोशिश की थी। इस प्रकार डेविड हार्डीमैन के अपने अध्ययन में अधीनस्थ समूह परिप्रेक्ष्य का इस्तेमाल किया।

6.4 निष्कर्ष

इस प्रकार हम देखते हैं कि डेविड हार्डीमैन भारतीय समाज का अध्ययन करने के लिए एक नये परिप्रेक्ष्य का उपयोग करते हैं जो भारत के विभिन्न समाजशास्त्रीयों से अलग हट कर है। डेविड हार्डीमैन ने भारतीय समाज का अध्ययन करने के लिए अधीनस्थ समूह परिप्रेक्ष्य का उपयोग करते हैं। इनके परिप्रेक्ष्य को दलितवादी परिप्रेक्ष्य भी कहा जाता है इन्होंने इस परिप्रेक्ष्य का उपयोग कर इतिहास को समझने का एक नया तरीका दिया और बताया की इतिहास सिर्फ श्रेष्ठजनों की कहानियाँ नहीं हैं बल्कि इसमें दलित एवं शोषित वर्ग भी शामिल होना चाहिए। डेविड हार्डीमैन ने अध्ययन दक्षिण गुजरात में देवी आंदोलन के माध्यम से यह दर्शाने का प्रयास किया है कि कैसे इस आंदोलन के प्रभाव में आकर जागृत हुए एवं अपने आप को साहूकारों एवं शहरी व्यापारियों के शोषण से भी बचा लिया। इनमें एक नई राजनीति चेतना का प्रसार हुआ एवं अपने समाज के लिए इनमें से कुछ राजनीतिक शक्ति प्राप्त करने में भी सफल रहे। इनके राजनीतिक शक्ति की सफलता का ही परिणाम था कि बाहरी जमींदार इनका शोषण नहीं कर पाए। हार्डीमैन ने 'बनिया को दूध पिला' नामक पुस्तक में बताया है कि कैसे बनियों ने आदिवासियों तथा स्थानीय लोगों का शोषण सदियों से किया है और राज्य कैसे बनियों को संरक्षण प्रदान करती है। अपने अध्ययन में हार्डीमैन पाते हैं कि आकाल के समय ये बनिये आदिवासियों एवं स्थानीय किसानों को ऋण प्रदान करते हैं और अपनी सहानुभूति भी इनके प्रति दर्शाते हैं और बाद ब्याज देते रहें। यह सिल–सिला पीढ़ी दर पीढ़ी चलता रहता है। किसान तथा आदिवासी कभी भी इन बनियों के कर्ज से मुक्त नहीं हो पाते। ब्रिटिश शासन प्रणाली भी अधीनस्थ समूहों के शोषण में योगदान दिया लेकिन इन अधीनस्थ समूहों जिसके अन्तर्गत दस्ताकार, भुमिहीन कृषक, दलित, आदिवासी आदि आते हैं ने ब्रिटिश शासन के खिलाफ विद्रोह किया एवं अपनी स्थिति से सुधार लाया। हालाँकि उस दौरान कई राष्ट्रीय स्थल के नेता और न ही प्रमुख समाचार पत्रों ने इस पर ध्यान दिया। आदिवासियों ने स्वयं ही अपने आंदोलनों के माध्यम से अपने अंदर जागृति लाकर स्वयं अपनी स्थिति को सुदृढ़ किया। इस प्रकार हम देखते हैं कि डेविड हार्डीमैन ने भारतीय समाज का अध्ययन एक अलग परिप्रेक्ष्य का प्रयोग कर अपनी पहचान बनाई जो सभी समाजशास्त्रियों से अलग हट कर है। भारत जैसे समाज में जहाँ दलित पिछड़े एवं किसान अधिक है। इन सब का अध्ययन करने के लिए डेविड हार्डीमैन का परिप्रेक्ष्य बहुत ही उपयोगी है।

6.5 भावी अध्ययन (Further Readings)

1- village India : studies in the Little Community (1955)
2- Caste Ranking and Community Structure in the Five Regions of India and Pakistan (1960)
3- India Through Hindu Categoris (1990)
4- Peasant Resistance in India : 1858-1914 (1992)
5- Subaltern Studies VIII : Essays in Honour of Ranjit Guha (1994)
6- Feeding the Baniya : Peasants and Usurers in western India (1996)
7- Gandhi in his Time and oure (2003)
8- Histories for the Subordinated (2006)
9- Missionaries and their Medicine : A Christian Modernity for Tribal India(2008)

6.6 अभ्यासार्थ प्रश्न (Practice Questions)

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Question)

1–दलितवादी परिप्रेक्ष्य के सम्बन्ध में डेविड हार्डीमैन के विचारों की आलोचनात्मक व्याख्या करें?

2–दक्षिण गुजरात में देवी आन्दोलन ने किस प्रकार आदिवासियों में जागरूकता फैलाई।

3–देवी आन्दोलन ने किस प्रकार से आदिवासियों में प्रतिरोध की उत्पत्ति में योगदान दिया।

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Qestions)

1–अधीनस्थ समूह परिप्रेक्ष्य क्या है?

2–देवी आन्दोलन के मुख्य शिक्षा क्या है?

3–पद्धतिशास्त्र को परिभाषित कीजिए।

4–बनिया को दूध पिलाने से क्या तात्पर्य है?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Question)

1–डेविड हार्डीमैन द्वारा भारतीय समाज का अध्ययन करने के लिए निम्न में से किस परिप्रेक्ष्य का प्रयोग किया गया–

(अ) पुस्तक दृष्टिकोण (ब) क्षेत्र दृष्टिकोण

(स) सभ्यतात्मक दृष्टिकोण (द) उपाश्रित दृष्टिकोण

2–किसका शोध दक्षिण एशियाई इतिहास के प्रमुख औपनिवेशक और राष्ट्रवादी परिप्रेक्ष्यों से अलग करता है जो कि अधीनस्थ समूहों के इतिहास के अतिरिक्त विशिष्ट वर्ग के इतिहास को अभिपुष्ट करता हैं?

(अ) ए.आर. देसाई (ब) बी.अम्बेडकर

(स) सुरजीत सिन्हा (द) डेविड हार्डीमैन

3–देवी आन्दोलन का सम्बन्ध है–

(अ) राजस्थान (ब) गुजरात (स) मध्यप्रदेश (द) छत्तीसगढ़

6-7 संदर्भ ग्रंथ (References)

1. Dhanagare, D.N.(1998).Themes and Perspectives in Indian Sociology, Jaipur: Rawat Publications.
2. Guha. R. (1982). Subaltern Studies, V, New Delhi: Oxford University Press.
3. Hardiman, David (1980).”The Quit IndiaMovement in Gujarat” , in Gyanendra Pandey (ed.),The Indian Nation in 1942, Calcutta.
4. (1981), Peagant Nationalists Movment of Gujrata: kheda District (1917-1934), New Delhi : Oxford University Press.
5. (1987). (Paperback edition in 1995). The Coming of Devi: Adivasi Assertion in Western India, New Delhi: : Oxford University Press. Gujrat version Published as Devi Andolan, Centre for Social Studies, Surat,1986.
6. (1987)”The Bhils and Shaulars of Eastern Gujrat”, in R. Guha(ed.) Subaltern Studies,V,op. Ciy.
7. (1994) (Paperback edition 1996,1997,1999), Subalten Studies VIII:Essays in Honour of Ranajit Guha (edited with David Arnod), New Delhi: Oxford University Press.
8. (1996) (Paperback edition in 2000). Feeding the BAniya: Peasants and Usurers in Western India, New Delhi: Oxford University Press.
9. (ed.) (1992) (Paperback edition in 1994).’Introduction’, Peasant Resistance in India: 1858-1914, New Delhi: Oxford University Press.

इकाई नं०–7
मनु एवं कौटिल्य
Manu & Kautilya

इकाई की रूपरेखा–

7.1 उद्देश्य

7.2 प्रस्तावना

7.3 मनु के विचार

7.3.1 मनु के सामाजिक व्यवस्था पर विचार

7.3.2 मनु के संस्कार

7.3.3 मनु के वर्ग व्यवस्था पर विचार

7.3.4 मनु के प्रस्थिति एवं भूमिका पर विचार

7.4 कौटिल्य के विचार

7.4.1 कौटिल्य के द्वारा समाज का चित्रण

7.4.2 कौटिल्य के दण्ड के सिद्धांत

7.5 सारांश

7.6 शब्दावली

7.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

7.8 सन्दर्भ ग्रंथों की सूची

7.9 सहायक/उपयोगी पाठय सामग्री

7.10 निबंधात्मक प्रश्न

7.1 उद्देश्यः (Objective)

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आपको निम्न तथ्यों की जानकारी व समझ विकसित कर सकेंगे–

- ✓ मनु को क्यों प्रथम समाज का जनक माना गया है।
- ✓ मनु ने कैसे समाज का विचार किया है।
- ✓ समाज के निर्माण में राज्य की क्या भूमिका है।
- ✓ मनु के द्वारा हिन्दू सामाजिक संगठन व संरचना पर क्या कहा है।
- ✓ मनु के द्वारा सामाजिक व्यवस्था को समझ सकेंगे।
- ✓ मनु ने संस्कार के वर्णन को समझ सकेगी।

- ✓ मनु के द्वारा वर्ण व्यवस्था को समझ सकेगी।
- ✓ मनु के प्रस्थिति एवं भूमिका पर विचार को समझ सकेगी।

7.2 प्रस्तावनाः (Introduction)

समाजशास्त्र के अध्ययन में मनु का एक विशेष स्थान है। मनु को एक ऐतिहासिक चरित्र के रूप में भारतीय परम्परानुसार मनु को प्रथम समाज व्यवस्थापक माना जाता है और इनके द्वारा रचित मनुस्मृति का रचना काल सामान्यतः ई०पू० चतुर्थ शताब्दी में माना जाता है। वैसे तो मनु के जीवन के बारे में कोई प्रमाणिक जानकारी नहीं है और ऐसी संभावना व्यक्त की गयी है, इसकी रचना और अन्य स्मृतियों के लेखन के बाद ही वैदिक अनुष्ठान एवं संस्कारों का पुनः प्रचलन हुआ था। मनु को प्रथम विधि वेत्ता तथा मानव जाति का जनक कहा जाता है। ऋग्वेद से लेकर बाद तक के अनेक ग्रंथों में मनु का उल्लेख आता है। कुछ स्थानों पर ऐसा वर्णन आया है, यदि मनु आदि पुरुष और सभ्यता के सृजक हैं तो यह मानना अनुचित भी नहीं है कि एक कथा के अनुसार जब मत्स्य न्याय से समाज दुखी होने लगा और सामाजिक व्यवस्था टूटने लगी तो ब्रह्म ने मनु को पृथ्वी का राजा बनाया था। वैसे तथ्यों के आधार पर मनुस्मृति मानव समाज का प्रथम ग्रंथ नहीं है।

मनुस्मृति में जो सामाजिक व्यवस्था मिलती है वह बहुत बाद की है। वैसे मनु स्मृति के अनुसार राज्य का कार्य समाज के सभी घटकों को समन्वित रूप से संगठित करना है। मनु ने राज्य का क्षेत्र इतना व्यापक है कि उसमें पशु–पक्षी, पर्यावरण भी शामिल हैं। राज्य का कार्य समाज ने इतना संतुष्ट बनाये रखना है कि एक–दूसरे को दबा न सके। यदि प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्त्तव्यों का पालन करता है तो उसमें उसका स्वयं का ही नहीं सम्पूर्ण समाज का हित होता है। उन्होंने कहा है कि अच्छा राज्य वह है जहां अच्छी जनता निवास करती हो। संत पुरुष निवास करें, जिसमें कोई बीमारी न हो, निवासी विनम्र निर्भीक हो वही समाज सम्पूर्ण संतुलित समाज है।

7.3 मनु के विचारः (Idea of Mannu)

मनु को प्रथम कानूनविद और मानव जाति का जनक कहा गया था। ऋग्वेद से लेकर बाद के अनेक ग्रंथों में मनु का उल्लेख है। अनेक स्थानों पर इसका वर्णन आया है। पुस्तकों में ऐसा वर्णन है कि महाप्रलय के बाद केवल एक पुरुष ही बचा था वह था मनु। तैतरीय संहिता, शतपथ ब्राहमण, पुराणों वह अन्य ग्रंथों में भी मनु का वर्णन मिला है। मनु महाभारत के बहुत पहले हुए थे। ऐसा कई वर्णन मिला है। मनु आदि पुरुष

और सभ्यता के सृजक हैं तो यह मानना अनुचित भी नहीं है कि प्राचीन हिन्दू परम्पराओं के अनुसार मनु को मानव समाज का प्रथम राजा माना था। जब मत्स्य न्याय से समाज दुखी होने लगा और सामाजिक व्यवस्था टूटने लगी तो ब्राहमण ने मनु को पृथ्वी का राजा बनाया। वैसे मनुस्मृति मानव समाज का प्रथम ग्रंथ नहीं है। मनुस्मृति में जो सामाजिक का ताना–बाना मिलता है, वह बहुत बाद का है। इसलिये हो सकता है कि बाद के लोगों ने मनु के नाम से जोड़ दिया है।

मनु ने राजनीति को समाज के ताने–बाने के साथ जोड़ा है। राजनीति के बिना समाज का संचालन ही मुश्किल है। राजा के बिना अराजकता हो जायेगी। लेकिन यह केवल कानून और व्यवस्था ही नहीं है, बल्कि इसका लोक कल्याणकारी स्वरूप उन्होंने प्रस्तुत किया है। मनुस्मृति के अनुसार राज्य का कार्य समाज के सभी घटकों को समन्वित रूप से संगठित करता है। राज्य का कार्य इतना है कि समाज के संतुलन व व्यवस्था बनी रहे और कोई एक–दूसरे को दबोच न सके।

मनु ने समाज के लिए व समाज के राजा के लिये एक श्रेष्ठ शिक्षा पद्धति की व्यवस्था की थी। यह शिक्षा केवल ज्ञान का माध्यम ही नहीं अपितु राजा के चरित्र निर्माण हेतु भी है। मनु का विचार समाज में राजा को कोई भी अनैतिक कार्य करने की आज्ञा नहीं देते थे। मनु ने तो स्पष्ट कहा कि राजा को अपनी पत्नी, बच्चों और परिवार के लिए भी सत्य का मार्ग नहीं छोड़ना चाहिए। मनुस्मृति में राज्य के संगठन, कर वेतन और प्रशासन के बारे में पता चलता है। इन्होंने कहा कि ग्राम की समस्या में जिले का हस्तक्षेप तब ही आवश्यक है जबकि ग्राम स्तर पर उसका समाधान न हो पाये। मनु विकेन्द्रित व्यवस्था को मानते थे। इन्होनें राजा के अनेक कार्य बताये, जिनमें प्रमुख प्रजा की रक्षा करना, वर्णाश्रम धर्म का पालन करना, न्याय करना, राज्य की आन्तरिक कलह एवं बाह्य आक्रमणों से रक्षा करना, आर्थिक विकास करना, ब्राहमणों, गुणियों, विद्वानों का सम्मान करना, असहाय वृद्धों, अपाहिजों, विकलांगों, विधवाओं एवं गर्भवहियों स्त्रियों की रक्षा करना। प्रजा को नैतिक बनाना भी राजा का ही कर्त्तव्य मनु ने माना है। इसलिये मनु ने कहा कि जुआ, मघपान पर स्त्री गमने, नैतिकता, पराये धन का अपहरण, ईर्ष्या आदि से प्रजा को बचाये। मनु ब्राहमण नहीं थे।

7.3.1 मनु के सामाजिक व्यवस्था पर विचारः (Ideas of Mannu on Social System)

मनु को सामाजिक व्यवस्था का निर्माण असमानता के सिद्धांत पर करने का दोषी बताया गया है। मनुस्मृति बारह अध्यायों में बढ़ी हुई है। इसका लेखन श्लोक के रूप में हुआ। इसमें लगभग 2700 श्लोक हैं। इसके विषय इस प्रकार हैं– (1) जगत की उत्पत्ति, (2) संस्कार विधि, (3) स्नान, श्रमक कल्प, (4) वृत्ति लक्षण, (5) शौच अशुद्धि, स्त्री धर्म, (6) वान प्रस्य, मोक्ष, सन्यास, (7) राज धर्म, (8) कार्य विनिर्णय, (9) स्त्री–पुरुष धर्म,

(10) आपाह धर्म, (11) प्रायश्चित, (12) संसार गति, कर्म और कुल धर्म है। मनु ने हिन्दुओं में सामाजिक व्यवस्था व संस्थाओं और संस्थापनाओं के अतिरिक्त राज धर्म जैसे जीवन के सभी पहलुओं पर लिखा है। इसमें वर्णित विचारों संकल्पनाओं और भावों को आज मनुवाद के रूप में चुनौती दी जा रही है। मनुस्मृति में वर्णित सामाजिक व्यवस्था के नियमाचार काल विशेष के लिए सार्थक रहे हैं। किन्तु आधुनिक परिवर्तित स्थितियों में इन्हें न्यायोचित कठिनतः ही माना जा सकता है। मनु को लेकर भारत में ज्यों–ज्यों पिछड़े और दलित वर्गों का समाज में प्रभाव बढ़ने लगा, मनु की आलोचना तीव्र होती जा रही थी। उन्हें पुरातन वफी, कट्टरपंथी और ब्राहमण संस्कृति और जीर्ण–शीर्ष परम्परा का पोषक कहा जाने लगा। उन्हें स्त्री और शूद्र विरोधी एवं उच्च जातियों का पक्षधर कहा गया है। उन्होंने कहा ब्राहमण को मारा न जाये, चाहे उसने सभी अपराध किये हों। ब्राहमण के अतिरिक्त अपराध के लिये सभी को मजबूर न किया जाये। नारी को स्वतन्त्रता

7.3.2 मनु के संस्कारः (Ceremonies of Mannu)

मनु ने संस्कार के बारे में विस्तृत चर्चा की है। मनुस्मृति में हिन्दू जीवन के आधार कर्म और पुर्नजन्म के सिद्धांत से लेकर पुरुषार्थ (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) संस्कार मनु के द्वारा 13 बताये गये हैं। वर्णाश्रम, धर्म, विवाह और परिवार स्त्रियों की प्रस्थिति, व्यक्तित्व के गुण आदि का विशुद्ध विश्लेषण इन्होंने मनुस्मृति ने किया है।

वर्णाश्रम में चार वर्णों का जिक्र किया है। ब्राहमण, श्रत्रिय, वैश्य, शूद्र का वर्णन है। मनुस्मृति ने जिस व्यक्ति का जो कार्य है उसे करे। व्यक्ति का धर्म पर विशेष जोर राजा के धर्म पर दिया है कि वह प्रजा की सेवा करे एवं प्रजा पर नियंत्रण रखे। स्त्रियों के बारे में मनुस्मृति से गर्भवती स्त्रियों की रक्षा की बात इसमें कही है। इन्होंने कहा कि नारी कभी स्वतंत्र होने लायक नहीं; यानि स्त्री एक तरह से बन्धनों में बंधी हुई है। बचपन में पिता, जवानी में पति, वृद्धावस्था में पुत्र उसका संरक्षक है। तीनों उच्च वर्णों को वेद पढ़ने का अधिकार है। लेकिन पढ़ाने का अधिकार केवल ब्राहमणों को है। परिवार व विवाह का वर्णन भी मनुस्मृति में किया गया है।

7.3.3 मनु की वर्ण व्यवस्था पर विचारः (Ideas of Mannu on Varn System)

मनु की वर्ण व्यवस्था पर मनुस्मृति में विस्तार से चर्चा की गयी है। मनु की समाज व्यवस्था में व्यक्ति की उपेक्षा सम्पूर्ण समूह, समुदाय और समाज को महत्व किया गया है। इस दृष्टि से हिन्दू सामाजिक व्यवस्था की इकाई व्यक्ति नहीं अपितु परिवार है। परिवार की रचना अन्न सम्बन्ध और यौन सम्बन्ध से मिलकर बने प्राण संबंधों जैवकीय बंधनों से होती है। जो ऐन्द्रियक वासना को आध्यात्मक भावनाओं और आत्म–नियंत्रण

ये उदारीकरण कर परिवर्तित कर दिया जाता है। मनु के अनुसार पुरुषार्थ में धर्म, अर्थ, काम के चित्रण के यथोचित समन्वय में ही मानवता का कल्याण निहित है। मनु की स्पष्ट चेतावनी है कि मनुष्य को अपनी पत्नी, बच्चों और परिवार के लिये भी सत्य का मार्ग नहीं छोड़ना चाहिए। प्रजा को नैतिक बनाना भी राजा का ही कर्त्तव्य है। नियमित रूप से यज्ञ करना। मनु ब्राहमण वाही थे। न्याय व्यवस्था में ही ब्राहमण वाद झलकता है, यथ्ज्ञासम्भव मुकदमों का फैसला स्वयं राजा को ही करना चाहिए। आज की भाषा में केवल ब्राहमण ही न्यायाधीश हो सकते हैं शूद्र नहीं, लेकिन शूद्रों की तरह स्त्रियों के प्रति भी उनका पूर्वाग्रह है। वो स्त्रियों को साक्षी बनाने के विरूद्ध हैं। स्त्रियों की बुद्धि स्थिर नहीं है। सृष्टि के विकास हेतु ब्राह्म ने ब्राहमण को अपने मूहै से क्षत्रिय अपनी भुजाओं से, वैश्य को अपनी जंघा से और शूद्र को अपने पाकै से जच किया है।

7.3.4 मनु के प्रस्थिति एवं भूमिका पर विचारः (Ideas of Mannu on Status & Role)

मनु ने प्रस्थिति एवं भूमिका पर अपने विचारों में कहा है कि राजा का कर्त्तव्य अपनी प्रजा का सुख–दुख देखना है कि कोई किसी व्यक्ति को दबा तो नहीं रहा है। प्रजा का नैतिक कर्त्तव्यों का विकास करना ही राजा का कार्य है। मनु ने ब्राहमणों को राजा माना है और इसका समाज में सर्वोच्च स्थान है। राजा को ही न्याय करने का अधिकार प्राप्त है। राजा का कर्त्तव्य अपनी प्रजा का सुख–दुख देखना है। उनके साथ किसी प्रकार का अन्याय न हो। राजा इसकी व्यवस्था करेगा। शूद्रों व स्त्रियों को हीन माना है। इनको समाज में नीचता के रूप में देखा है। प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्त्तव्यों का पालन करता रहे। अच्छा राजा का कर्त्तव्य प्रजा की सेवा ही नहीं है बल्कि उसके राज्य में अच्छे नागरिक निवास करें, जिसमें कोई बीमार न हो। नागरिक विनम्र एवं निर्मिम हों। अच्छी खेती ही वाणिज्य हो। राजा का कर्त्तव्य अपने लोगों की रक्षा करना व दुष्टों कादमन करना है। निर्धन लोगों, विधायकों और कंकों की रक्षा करना ही राजा का कर्त्तव्य है। वे ऐसे राज्य की कल्पना करते हैं, जिसमें विकास वैकल, सुरक्षा एवं एकता हो और राजा यदि कर्त्तव्य नहीं करता है तो राज्य नष्ट हो जाता है।

7.4 कौटिल्य के विचारः (Ideas of Kautilya)

हिन्दू धर्म ग्रंथों में अर्थशास्त्र ग्रंथ की गणना एक अग्रणी ग्रंथों में की जाती है। यह प्रथम भारतीय ग्रंथ है, जिसमें आध्यात्म, धर्म आदि परम्परागत प्रभावों से मुक्त होकर राजनीति, शासन, प्रशासन, आर्थिक एवं समाजशास्त्रीय तत्वों, कूटनीति, परराष्ट्र सम्बन्धों आदि पर वैज्ञानिक और व्यावहारिक दृष्टि से लिखा गया है। कौटिल्य को विष्णुगुप्त और चाणक्य के नाम से भी जाना जाता है।

कौटिल्य के जीवन एवं उससे जुड़ी घटनाओं के बारे में अनेक मतमतान्तर हैं और ठोस ऐतिहासिक प्रमाणों का अभाव है। फिर भी सामान्य तौर पर यही माना जाता है कि ईसा की कुछ शताब्दियों पूर्व तक्षशिला में उनका जन्म हुआ और वहां के विश्वविद्यालय में शिक्षा ग्रहण की। उस समय नन्द वंश का शासन था जिसके अत्याचारों से प्रजा दुखी थी। उससे निजात पाने के लिए उन्होंने चन्द्रगुप्त नामक युवक को सम्राट बनाने का संकल्प लिया। यद्यपि चन्द्रगुप्त नीची जाति का था, लेकिन उसमें अद्भुत प्रतिभा थी जिससे प्रभावित होकर कौटिल्य ने एक विशाल साम्राज्य के निर्माण एवं संचालन का उसे दायित्व सौंपा। यह भारत

वर्ष का प्रथम विशाल सुसंगठित और सुदृढ़ मौर्य शासन था, जिसकी स्थापना और नियोजित कार्यप्रणाली के केन्द्र में कौटिल्य की विलक्षण बुद्धि, सूझबूझ एवं दृष्टि थी। चन्द्रगुप्त मौर्य को सम्राट बनाकर कौटिल्य ने स्वयं प्रधानमंत्री पद सम्भाला। कौटिल्य पर कुछ विस्तार से आगे के पृष्ठों में लिखा गया है। प्राचीन भारत के सामाजिक चिन्तकों में कौटिल्य का स्थान बहुत ऊँचा है। अर्थशास्त्र केवल आर्थिक विषयों का एक दस्तावेज नहीं है, अपितु इसमें आर्थिक विषयों के अतिरिक्त प्राचीन भारत की सामाजिक और राजनीतिक संहिताओं, प्रथाओं, संस्थाओं की रीति–रिवाजों की प्रतिध्वनि सुनाई देती है।

7.4.1 कौटिल्य के द्वारा समाज का चित्रणः (Diagram of Society by Kautilya)

भारतीय सामाजिक–राजनीतिक विचारधारा के विकास एवं विश्लेषण में इस ग्रंथ का अपूर्व योगदान है। इसमें तत्कालीन समाज के चित्रण के साथ समाज में होने वाले भविष्यगत परिवर्तनों का भी पूर्वाभास किया गया था। इस ग्रंथ में वर्णाश्रम, धर्म, शिक्षा, विवाह, वैवाहिक जीवन के नियम, स्त्री–पुरुष के आपसी कर्त्तव्य, सम्भोग नियम, विवाह–विच्छेद, पुनर्विवाह, उत्तराधिकार के नियम, स्त्री धन, स्त्रियों का समाज में स्थान, शूद्रों की स्थिति, दण्ड के सिद्धांत एवं प्रमारों के अतिरिक्त मानव के विज्ञान का भी सूक्षम एवं शुद्ध विवेचन देखने को मिलता है।

राज धर्म, राज व्यवस्था, न्याय व्यवस्था और नागरिक संगठन जैसे विषय इस ग्रंथ के प्रमुख अंग हैं। पत्नी को ऐसे पति को छेड़ देने का अधिकार है। नारी के अधिकारों के बारे में अनेक और भी प्रावधान है लेकिन दुष्चरित्र औरत के लिए सजा की भी व्यवस्था है। उत्तराधिकार के नियमों का भी उल्लेख है। सम्पत्ति के अधिकार सम्बन्धी नियमों का भी वर्णन है। ऋण वसूली, श्रम कानून, स्वामी का नौकर पर अधिकार, खरीद फरोक्त से जुड़े नियमों का भी उल्लेख है। अर्थशास्त्र में ऊँची और नीची जाति के मध्य प्रचलित भेदभाव का भी वर्णन मिलता है।

राजव्यवस्था में गाँवों के निर्माण, भूमि विभाजन, दुर्गों के निर्माण, राजस्व वसूली, हिसाब–किताब की व्यवस्था, राजस्व की चोरी को रोकने के उपाय, सरकारी कर्मचारियों के आचरण, उनकी ईमानदारी, राज्य के प्रति निष्ठा, कार्य कुशलता आदि का वर्णन है। कौटिल्य का मानव स्वभाव का अध्ययन कितना पैना और यथार्थवादी है।

"जिस प्रकार जिव्हा पर रखे बिना शहद या जहर का पता नहीं लगाया जा सकता, उसी प्रकार यह असम्भव है कि सरकारी कर्मचारी सरकारी राजस्व का कुछ न कुछ दुरुपयोग न करे। जिस प्रकार पानी में रहने वाली मछली ने पानी पिया अथवा नहीं पिया यह मालूम करना मुश्किल है, ठीक उसी प्रकार राज कर्मचारी द्वारा सरकारी धन का खुर्द–बुर्द किये जाने को मालूम करना मुश्किल है।"

कौटिल्य का कथन है कि आसमान में पक्षीयों की ऊँची उड़ान को पहचान पाना आसान है, लेकिन सरकारी कर्मचारियों के गुप्त इरादों को समझ पाना मुश्किल है।

करों के बारे में विशद वर्णन मिलता है। वाणिज्य, जंगलात, नाप–तोल, बाट, चुंगी, कृषि, आबकारी, वेश्यालयों, जहाजों, गोधन, घोड़ों, हाथियों, नगर प्रशासन आदि के बारे में समझौतों के वैधिक स्वरूप, न्याय आदि के बारे में सांगोपांग वृतान्त मिलता है। न्याय करना राजा का परम कर्त्तव्य है। इस सम्बन्ध में कुछ बहुत ही दिलचस्प और उपयोगी उद्धरण अर्थशास्त्र में मिलते हैं। कुछ यहां प्रस्तुत किये जा रहे हैं–

धर्मके विपरीत आचरण को रोकना राजा का पुनीत कार्य है। राजा न्याय का स्रोत (धर्म प्रवर्तक) हैं।पवित्र कानून (धर्म), प्रमाण (व्यवहार), इतिहास (चरित्र) एवं राज्यादेश (राजशासन) कानून के चार स्तम्भ हैं।

न्याय की स्थापना करना, राज्य में व्यवस्था बनाये रखना, प्रजा की रक्षा करना, इन कर्त्तव्यों का पालन करने से राजा को स्वर्ग की प्राप्ति होती है, जो अपनी प्रजा की रक्षा करने में असमर्थ है अथवा सामाजिक व्यवस्था को भंग करता है वह व्यर्थ ही में दण्डधारी हैं।

शादी विवाह, स्त्री सम्पत्ति, पुनर्विवाह के बारे में भी हमें पर्याप्त सामग्री मिलती है। नारी के अधिकारों से सम्बन्धित अनेक प्रावधान अर्थशास्त्र में है और आज से करीब अढ़ाई हजार वर्ष पूर्व नारी स्वातंत्र्य की बात कौटिल्य ने कही है। उनके अनुसार यदि पति दुष्चरित्र बन गया है या लम्बे समय के लिए विदेश चला गया है या राजद्रोही बन गया है या पत्नी के लिए खतरा बन गया है, जाति से बाहर कर दिया गया है या नपुंसक।

7.4.1 कौटिल्य के दण्ड में सिद्धांतः (Theory of Punishment for Kautilya)

कौटिल्य के अनुसार अन्वीक्षिकी, त्रयी (तीनों वेद), वार्ता (कृषि, पशुपालन और व्यापार) और दण्डनीय (शासन विज्ञान) कुल मिलाकर चार विज्ञान हैं। मनु ने अन्वीक्षिकी को वेदों की एक विशिष्ट शाखा माना है। अन्वीक्षिकी में सांख्य, योग एवं लोकायत का दर्शन निहित है। कौटिल्य ने अन्वीक्षिकी को बहुत ही उपयोगी ज्ञान माना है, यह मस्तिष्क को सभी परिस्थितियों में शान्त रखता है। मन, वचन और कर्म में एकाग्रता और स्थितप्रज्ञता प्रदान करता है।

कौटिल्य यथार्थवादी विचारक थे। उन्होंने सभी विद्याओं, कलाओं और विज्ञानों का ध्येय वार्ता और दण्डनीति में देखा। जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है कृषि, पशु–पालन और व्यापार वार्ता की परिधि में आते हैं। अनाज, पशु, सोना, जंगल, उत्पादन और श्रम से कोष भरता है और इसके परिपूर्ण होने से राजा सेना की व्यवस्था करता है तथा अपने राज्य और शत्रु पक्ष पर नियंत्रण कर पाता है। अन्वीक्षिकी, त्रयी की वार्ता का सीधा सम्बन्ध दण्ड से है। आचार्य कौटिल्य के अनुसार यह दण्ड कही सजा देने की विधि है और इसे शासन विज्ञान अथवा दण्डनीति भी कहा गया है। इससे स्पष्ट है कि कौटिल्य दण्डनीति को सारी विद्याओं के मूल में मानते हैं। वह दण्डनीति को अपने में साध्य तो नहीं मानते, लेकिन इसे आधार मानते हैं। इसके बिना राज्य अव्यवस्थित हो जायेगा, अराजकता फैल जायेगी और ऐसी स्थिति में सांख्य, योग्य एवं लोकायत की प्रगति, त्रयी (तीनों वेदों) का अध्ययन; कृषि, पशुपालन, व्यापार (वार्ता) की उन्नति असम्भव हो जायेगी। कोष खाली हो जायेगा, राजा सेना नहीं रख पायेगा, राज्य कर्मचारियों और अधिकारियों को वेतन नहीं मिल सकेगा और सामाजिक जीवन अस्तव्यस्त हो जायेगा। यही कारण है कि दण्डनीति का सुचारु रूप से पालन राज्य और समाज की समस्त गतिविधियों के केन्द्र में है।

दण्डनीति भी स्वतंत्र नहीं है। दण्ड जीवन में सुरक्षा लाने हेतु अनिवार्य है, लेकिन दण्ड अनुशासन (विनय) पर आश्रित है। अनुशासन दो प्रकार का होता है– कृत्रिम और प्राकृतिक। विधाओं का अध्ययन केवल उन्हीं को संस्कारित कर सकता है, जिनमें कुछ मानसिक गुण विकसित हो अन्यथा नहीं। इन गुणों में

कौटिल्य आज्ञापालन, समझने की शक्ति, स्मरण शक्ति, नीर क्षीर विवेक शक्ति, वक्तृत्व शक्ति सम्मिलित करते हैं। विद्याओं का अध्यापन गुणी, अनुभवी और विशेषज्ञों द्वारा किये जाने का प्रावधान किया गया है। राजा को सलाह दी गयी है कि उसे वृद्ध प्रोफेसरों की संगत करनी चाहिये क्योंकि ये ही इन विद्याओं के पारंगत ज्ञाता हैं।

राजा से अपेक्षा है कि वह पूर्वाह काल सैनिक शिक्षा जैसे घोड़ों, हाथियों, रथों एवं हथियारों के प्रयोग के प्रशिक्षण में बिताये। दोपहर बाद का समय इतिहास सीखने में व्यतीत करे। आचार्य कौटिल्य ने पुराण इतिवृत्त (इतिहास), आख्यायिका (कहानियाँ), उदाहरण, धर्मशास्त्र एवं अर्थशास्त्र को इतिहास में ही सम्मिलित किया है। शेष दिन और रात्रि में वह नये पाठ पढ़े और पुराने याद करें और जो स्पष्ट नहीं हुआ उसे समझे। आचार्य कौटिल्य का कथन है कि सुनने (श्रुत) से ज्ञान की वृद्धि होती है और ज्ञान के निरन्तर कार्यान्वयन से योग सिद्धि प्राप्त होती है और योग द्वारा आत्म विश्वास आता है। चाणक्य स्पष्ट कहते हैं कि सुशिक्षित, अनुशासित और विद्याओं का ज्ञाता राजा सुशासन देता है और निष्कंटक राज कर सकता है।

कौटिल्य इंद्रियों पर नियंत्रण रखने वाले राजा को ही सफल मानते हैं। इंद्रियों के वशीभूत राजा नष्ट हो जाता है और इसके लिए उन्होंने छठे अध्याय में बहुत उदाहरण दिये हैं। उन्होंने राजा के छः शत्रु माने हैं– काम, क्रोध, लोभ, अहंकार (मन), मद और अत्यधिक हर्ष।

कौटिल्य का मत है कि राजत्व (संप्रभुता) सहायकों के बिना संभव नहीं है। एक पहिये से गाड़ी चलती नहीं है। अतः राजा को मंत्रियों एवं अन्य अधिकारियों की आवश्यकता पड़ती है। कौटिल्य मंत्रियों के लिए निम्नांकित योग्यताएँ निर्धारित करते हैं– स्थानीय, व्यक्ति, उच्च परिवार में उत्पन्न, प्रभावशाली, कलाओं में निपुण, दूरदर्शी, बुद्धिमान, अच्छी स्मरण शक्तिवाला, निर्भीक, अच्छा वक्ता, चतुर, उत्साही, गरिमापूर्ण, सहिष्णु, शुद्ध चरित्र वाला, प्रसन्न मुख, स्वामीभक्त, शुद्ध आचरण, दृढ़ निश्चय वाला होना चाहिये।

7.5 सारांशः (Summary)

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप यह जान चुके हैं कि मनु ने सामाजिक व्यवस्था पर अपने विचारों के बारे में क्या कहा है? आप ये जान गये होंगे कि मनु को प्रथम विधिवेता या मानव जाति का जनक कहा गया है। मनु मानव समाज का प्रथम राजा है। आप यह भी जान गये होंगे कि मनुस्मृति में जो सामाजिक व्यवस्था की गयी है वह बहुत बाद की है। मनु ने राजनीति को सामाजिक स्वरूप प्रदत्त किया है, आप मनु के द्वारा राजा की तरह से राज्य का एवं वहां रहने वाली जनता का पोषण किस तरह से करता है यह भी जान गये होंगे। आप ये भी जान गये होंगे कि मनु की मान्यता है कि यदि प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्त्तव्यों का पालन करता है तो उसमें उसका स्वयं का ही सम्पूर्ण समाज का हित निहित है। हमारे लिये अच्छा राजा वही है तो प्रजा की सेवा करता है।

आप ये भी जान गये होंगे कि मनु ने मनुस्मृति में संस्कारों का वर्णन किस तरह से किया है और संस्कारों के प्रकार कितने हैं, किस संस्कार में क्या–क्या होता है। आप ये भी जान गये होंगे कि वर्ण व्यवस्था पर विचार क्या है? ये भी समाज का महत्वपूर्ण अंग है, जिसमें भारतीय समाज की व्यवस्था वर्ण व्यवस्था पर ही आधारित है। इसका विस्तार से वर्णन किया गया है।

आप इस इकाई का अध्ययन करने के बाद ये भी जान गये होंगे कि मनु ने मनुष्य/मानव की प्रस्थिति एवं भूमिका का वर्णन किस प्रकार से किया है। मनु समाज को एक व्यवस्था के रूप में देखते हैं और कहते हैं कि समाज में प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य निर्धारित है। उसी के अनुसार उसे प्रस्थिति प्राप्त है, वो राज्य व राजा व राजनीति की भूमिका का वर्णन बड़े विस्तार से किया है।

इस इकाई में आप मनु के साथ–साथ कौटिल्य के अर्थशास्त्र में क्या–क्या वर्णन किया है, उसको भी समझ गये होंगे। आप ये भी जान गये होंगे कि अर्थशास्त्र कोई अर्थव्यवस्था की पुस्तक नहीं है, इस पुस्तक में भारतीय समाज की व्यवस्था व लिपिक कानूनों का वर्णन है। आप ये भी जान गये होंगे कि अर्थशास्त्र में राजधर्म, राजव्यवस्था, न्याय व्यवस्था और नागरिक संगठन इस ग्रंथ के प्रमुख अंग हैं।

आप ये भी समझ गये होंगे कि राजव्यवस्था में किन चीजों का निर्माण होता है। आप इस इकाई से ये भी समझ गये होंगे कि कौटिल्य ने दण्ड के कोने–कोने से सिद्धांत का वर्णन किया है। आप यह भी समझ गये होंगे कि कौटिल्य किन लोगों को सकल माना है तथा राजा के लिये क्या जरूरी है? इत्यादि।

7.6 शब्दावलीः (Glossary)

(1) **मनुस्मृति–** एक ऐसा ग्रंथ जिसके रचियेता मनु हैं एवं यह मानव समाज का प्रथम ग्रंथ है।

(2) **लोक कल्याणकारी–** एक ऐसी व्यवस्था जिसमें पशु–पक्षी से लेकर मानव सभी का कल्याण हो सके।

(3) **अनैतिक कार्य–** अनैतिक कार्य से तात्पर्य ऐसा कार्य जिसमें राज्य का समाज का, मानव का किस का भी बुरा हो जाये।

(4) **राजतंत्रवादी–** एक ऐसी व्यवस्था जिसमें राजा सर्वोच्च है, वह जो करे वही सही है। यदि वह गलत करता है तो उसे दण्डित नहीं किया जाये, क्योंकि उसमें देवता निवास करते हैं। राजा गलत नहीं कर सकता।

(5) **त्रिवर्ण–** त्रिवर्ण से तात्पर्य धर्म, अर्थ और काम से है।

(6) **सामान्त शाही–** एक ऐसी व्यवस्था है, जिसमें राजा सर्वोच्च है और उसमें सब नीचे है। राजा जो करेगा वह सही करेगा, वह गलत नहीं कर सकता है।

7.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तरः (Answer Questions of Practice)

(1) **प्रथम विधि वेत्ता किसको कहा गया है–**

(क) कौटिल्य (ख) कार्ल मार्क्स

(ग) दुर्खीम (घ) मनु

उत्तर– (घ)

(2) मनु का उल्लेख पहले किस प्राचीन ग्रंथ में किया गया है–

(क) ऋग्वेद (ख) सामवेद

(ग) अर्थवेद (घ) यर्जुवेद

उत्तर– (क)

(3) प्राचीन हिन्दू परम्पराओं के अनुसार किसको मानव समाज का प्रथम राजा माना जाता है–

(क) कौटिल्य (ख) हैबर मास

(ग) मनु (घ) बेवर

उत्तर– (ग)

(4) राजनीति क्षेत्र में ऐसे चिंतक का नाम बताओ जिसने राजनीति को सामाजिक स्वरूप प्रदान किया है–

(क) गाँधी (ख) अरविन्द

(ग) कौटिल्य (घ) मनु

उत्तर– (घ)

(5) मनु के अनुसार अच्छा राज्य क्या है?

(क) जहां बुरे पुरुष निवास करें (ख) जहां सत व स्त्रियां निवास करें

(ग) जहां अच्छे संत पुरुष निवास करें (घ) जहां बुरी स्त्रियां निवास करें

उत्तर– (ग)

(6) भारतीय राजनीति चिंतन के आदिम विचारक निम्न में से कौन हैं?

(क) मनु (ख) कौटिल्य

(ग) नेहरु (घ) गाँधी

उत्तर– (क)

(7) 'अर्थशास्त्र' नामक की रचना किसने की?

(क) मनु (ख) अलयुजर

(ग) गाँधी (घ) कौटिल्य

उत्तर– (घ)

(8) किस विचारक के अनुसार पशु–पक्षी और पर्यावरण भी राज्य क्षेत्र में शामिल हैं?

(क) गाँधी (ख) नेहरु

(ग) मनु (घ) कौटिल्य

उत्तर– (ख)

(9) मनु के अनुसार राज्य की इकाई क्या है?

(क) ग्राम (ख) जिला

(ग) पंचायत (घ) प्रांत

उत्तर– (क)

(10) किस विचारक ने प्लेटो के समान राजा के यिले श्रेष्ठ शिक्षा पद्धति की बगावत की?

(क) कौटिल्य (ख) नेहरू

(ग) मनु (घ) गाँधी

उत्तर– (ख)

(11) आचार्य मनु विचारक थे–

(क) लोकतंत्रवादी (ख) आदर्शवादी

(ग) राजतंत्रवादी (घ) उपरोक्त सभी

उत्तर– (घ)

(12) न्यायवस्था और दण्डनीति के मूल भारतीय विचारक माने जाते हैं?

(क) गाँधी (ख) मनु

(ग) नेहरु (घ) कौटिल्य

उत्तर– (ख)

(13) किस भारतीय विचारक ने संरलोग सिद्धांत प्रस्तुत किया?

(क) मनु (ख) नेहरु

(ग) गाँधी (घ) कौटिल्य

उत्तर– (घ)

इकाई नं०–8

गाँधी जी के विचार (Gandhian Thoughts)

8.1 उद्देश्य

8.2 प्रस्तावना

8.3 गाँधी जी का जीवन परिचय

8.4 गाँधी जी के नीति सिद्धान्त एवं सामाजिक उपयोगिता

8.5 अहिंसा के तत्व

8.6 सत्याग्रह का अर्थ

8.7 सत्याग्रह के तत्व

8.8 सत्याग्रह के लक्षण

8.9 सत्याग्रह की विधियाँ

8.10 सत्याग्रह के प्रयोग

8.11 सत्याग्रह का मनोविज्ञान

8.12 सत्याग्रह का मूल्यांकन

8.13 सर्वोदय–अवधारणा

8.14 सर्वोदय का अर्थ एवं परिभाषा

8.15 सर्वोदय के सिद्धान्त

8.16 सर्वोदय के आधारभूत उद्देश्य

8.17 सर्वोदय की कार्यपद्धतियाँ

8.18 संरक्षकता का सिद्धान्त

8.19 संरक्षकता का अर्थ

8.20 संरक्षकता के तत्व

8.21 संरक्षकता के सिद्धान्त का महत्व

8.22 संरक्षकता का आलोचनात्मक मूल्यांकन

8.22 गाँधी जी के सामाजिक विचार
8.23 साम्प्रदायिक एकता
8.24 नारी का स्थान
8.25 शिक्षा सुधार
8.26 मद्यनिषेध
8.27 महात्मा गाँधी के विचारों की वर्तमान में प्रासंगिकता
8.28 गाँधी और मार्क्स
8.29 गाँधी और मार्क्स में समानताएँ
8.30 भिन्नताएँ
8.31 मूल्यांकन
8.32 सारांश
8.33 शब्दावली
8.34 अभ्यास प्रश्न
8.35 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
8.36 संदर्भ
8.37 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
8.39 निबंधात्मक प्रश्न

8.1 उद्देश्य–

- ✓ महात्मा गाँधी के जीवन परिचय को विद्यार्थियों के समक्ष प्रस्तुत करना।
- ✓ गाँजी जी के नैतिक सिद्धान्तों को विद्यार्थियों के समक्ष रखना, जिससे वे जीवन में इसका अनुपालन करने का प्रयत्न कर सके।
- ✓ गाँधी जी के विचारों का ज्ञान कर विद्यार्थियों में देशप्रेम की भावना को जाग्रत करना।
- ✓ गाँधी जी की बेसिक शिक्षा पद्धति को जीवन में लागू करने के लिए प्रोत्साहित करना।
- ✓ विदेशी वस्तुओं के स्थान पर स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग हेतु जाग्रत करना।
- ✓ गाँधी जी द्वारा बतलाये गये नियमों को आत्मसात् कर एक नव विकसित समाज की स्थापना करने में युवाओं व अन्य देशवासियों से अपेक्षा रखना।

8.2 प्रस्तावना

व्यवहारिक समाजशास्त्री, राजनीतिक, अर्थशास्त्री, शिक्षाशास्त्री, क्रान्तिकारी एवं समाज सुधारक दार्शनिक एवं समाज विचारक के रूप में गाँधी जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। भारतीय संस्कृति और परम्पराओं को आधुनिक जीवन और परिस्थितियों पर खड़ा करने वाले गाँधी जी उन विचारकों में थे, जिन्होंने परम्पराओं मानव जीवन के रचनात्मक पहलुओं पर सबसे अधिक चिन्तन किया था। उनका व्यक्तित्व आकर्षक एवं दृष्टिकोण भारतीय था, उन्होंने समस्त समकालीन समस्याओं की जड़ों को छूकर उन पर अपना अमिट प्रभाव छोड़ा। समाज एवं सामाजिक समस्याओं पर समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण अपनाकर उन्होंने समाजिक वैज्ञानिक का अपना पद सुरक्षित कर लिया है। अपनी उपकल्पनाओं का प्रयोग उन्होंने सर्वप्रथम अपने में ही किया। इसके साथ ही उन्होंने भारतीय आदर्श मूल्यों की आधुनिक परिप्रेक्ष्य में विवेचना की और सिद्ध कर दिया। भारतीय आदर्श और मूल्य समाज और व्यक्ति की सशक्त विवेचना करने में समर्थ है। उन्होंने जीवन की विविध समस्याओं गम्भीरता से प्रस्तुत् किया और नवीन विचारधारा को समाज के समक्ष प्रस्तुत् किया। यहाँ हम गाँधी जी के जीवन परिचय का अध्ययन करेंगे–

8.3 गाँधी जी का जीवन परिचय (Biography of Gandhiji)

मोहनदास करमचन्द गाँधी जी का जन्म 2 अक्टूबर 1869 में कठियाबाड़ा के पोरबन्दर नाम स्थान पर हुआ। इनके पिता करमचन्द्र गाँधी पोरबन्दर रियासत के दीवान तथा माता पुतलीबाई अत्यधिक धार्मिक प्रवृत्ति की श्रद्धालु और सहृदय महिला थीं, जिसका अमिट प्रभाव गाँधी जी के व्यक्तित्व में स्पष्ट दिखायी पड़ता है।

गाँधी जी का परिवार पहले पंसारी का व्यवसाय करता था। मोहनदास के दादा से लेकर तीन पीढ़ियों से उनका परिवार रियासत में दीवानगिरि का काम करते थे। अपने पिता के विषय में गाँधी जी ने लिखा है–''वे अत्यंत ही परिवार प्रेमी, साहित्यप्रिय, उदार, किन्तु क्रोधी थे।'' पिताजी की शिक्षा को उनहोंन केवल 'अनुभव' कहकर संबोधित किया है।

गाँधी जी की प्रारम्भिक शिक्षा 5 वर्ष की आयु में गुजरात के हिन्दी स्कूल में हुई। तत्पश्चात् 10 वर्ष की आयु में उन्हें अंग्रेजी स्कूल में प्रवेश मिला। 13 वर्ष की आयु में बिना किसी वैयक्तिक सहमति के उनका विवाह 1883 में कस्तूरबाबाई से हुआ। 17 वर्ष की अवस्था में मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण कर गाँधी जी ने अपने विद्यार्थी जीवन के उच्चतम आदर्शों का परिचय दिया। 4 सितम्बर 1882 को गाँधी जी ने बैरस्ट्री पास करने के लिए विलायत (इंग्लैंड) प्रस्थान किया और उसके बाद बैरस्ट्री पूर्ण कर वे भारत लौटे। 16 वर्ष की छोटी सी उम्र में पिता का साया उठ जाने के पश्चात् भी गाँधी जी ने देश–विदेश में अपना अध्ययन जारी रखा। विलायत से लौटने के पूर्व ही उनकी माता जी का भी देहान्त हो गया।

1991 में जब वे मात्र 22 वर्ष के थे, बैरिस्ट्री पास कर इसी वर्ष से मुम्बई के कठियावाड के वकालत शुरू की। जहाँ निवासित एक व्यापारी दक्षिण अफ्रिका में व्यापार करते थे। उन्होंने अपने मुकदमे की पैरवी के लिए 1893 में गाँधी जी को दक्षिण अफ्रिका भेजा। यद्यपि मुकदमा मध्यस्थता से तय हो गया, लेकिन वहाँ

की सामाजिक दशाएँ, भारतीयों की करुणाजनक स्थिति, उन पर होने वाले अत्याचार व अन्याय ने गाँधी जी को भारतीयों के साथ रहने को विवश कर दिया। धीरे–धीरे वहाँ उनका जीवन सार्वजनिक बनता गया। सरकार के विरुद्ध आन्दोलन का नेतृत्व कर उन्होंने नेटाल में 'नेटाल भारतीय काँग्रेस का संगठन स्थापित कर प्रवासी भारतीयों के प्रति होने वाले क्रूर, अमानवीय व्यवस्थाओं को दूर करने का लक्ष्य बनाया। लगभग 20 वर्षों तक अफ्रिका में रहकर अहिंसात्मक सत्याग्रह के आन्दोलन का सर्वप्रथम प्रयोग उन्होंने अफ्रिका में प्रवासी भारतीयों के अधिकारों की रक्षा के लिए किया, जिसमें वे तो सफल हुए ही साथ में उनकी वकालत को भी सफल घोषित किया गया। इस सारी प्रक्रिया में उन्हें 7 दिन व चौदह दिन का दो बार उपवास रखना पड़ा और दो बार जेल भी जाना पड़ा।

सन् 1915 में देश के नेता के रूप में भारत लौटे। भारत में अंग्रेजी सरकार की नीति के खिलाफ, सत्याग्रह आन्दोलन प्रारम्भ किया और देशवासियों को देश की स्वतंत्रता के लिए संगठित करने का शक्तिशाली अभियान प्रारम्भ किया। विदेशी सामाग्री का बहिष्कार, अंग्रेजी कानूनों का विरोध राष्ट्रहित के लिए उपवास एवं अनशन जेल यात्राएँ कर देश की आजादी उनके जीवन का लक्ष्य बन गयी, और 1920 में उनका सक्रिय राजनैतिक जीवन प्रारम्भ हो गया। असहयोग आन्दोलन, स्वतंत्रता, स्वाधीनता एवं भारतीयों में नवजीवन संचार करने के लिए चर्खा, खादी का प्रचार किया। 'यंग इण्डिया तथा 'नवजीवन' पत्रों का सम्पादन, हरिजन संघ की स्थापना कर गतिविधियों में वृद्धि की।

1942 में भारत छोड़ा का नारा बुलंद कर अंग्रेजों से भारत को मुक्त कराने की दृढ इच्छा से 15 अगस्त 1947 में देश की आजादी में अहम् भूमिका का निर्वाह् किया, लेकिन स्वतंत्र भारत में गाँधी जी अधिक सांस न ले सके और 30 जनवरी 1948 ई0 को नाथूराम गोडसे द्वारा उनकी हत्या कर दी गयी। गाँधी जी के जीवन का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि उनका सम्पूर्ण जीवन आन्दोलनों से भरा पड़ा या ये कहा जाए कि उनका जीवन अत्याचार के विरुद्ध आन्दोलनों का इतिहास रहा है।

8.4 गाँधी जी के नीति–सिद्वान्त एवं सामाजिक उपयोगिता

(Moral Principles and their social Implications of Gandhi)

गाँधी जी अपने जीवन में प्रमुख राजनीतिज्ञ व समाज सुधारक थे। नवीन वर्धा शिक्षा पद्धति के संस्थापक, पिछड़े वर्गों के लिए समर्पित मसीहा, पूंजीवादी एवं साम्यवाद से भिन्न एक अहिंसात्मक समाजवादी समाज की स्थापना के प्रणेता, उच्च दार्शनिक थे। उनका व्यक्तित्व एवं कृतित्व बहुमुँखी एवं विशाल था। उनका सम्पूर्ण सामाजिक दर्शन नैतिक सिद्वान्तों पर आधारित था, जो धर्म, नैतिकतता को महत्व देता है। अतः आवश्यक है कि उनके नैतिक सिद्वान्तों को समझा जाए। जिनका उद्देश्य व्यक्ति को अनुशासित, संयमित आत्मा एवं ईश्वर का अनुभव तथा वैयक्तिक और सामाजिक जीवन के अंतर को मिटाने के लिए किया गया था।

सत्य (Truth)- गाँधी जी ने लिखा था–''सत्य धर्म और सच्ची नैतिकता एक–दूसरे से अपृथक रूप से बंधे हुए हैं। धर्म का नैतिकता से वही संबंध है, जो भूमि में बोये हुए बीज के साथ जल का है। ऐसा कोई धर्म नहीं होता, जो नैतिकता का अनुकरण कर सके।'' सत्य और अहिंसा भारतीय संस्कृतिक का

मूल आधार है। सत्य को शब्दों में बाँधना कथन है। अतः गाँधी जी के मतानुसार अन्तर आत्मा की आवाज ही सत्य है। इसके अतिरिक्त कोई ईश्वर नहीं है। उन्होंने लिखा है–''मेरे विश्वास अनुभव ने मुझे आस्वस्त किया है कि सत्य के अलावा और दूसरा ईश्वर नहीं है.....सत्य की प्राप्ति का एकमात्र साधन अहिंसा है।'' सत्य को गाँधी जी का पहला नैतिक सिद्धान्त माना जाता है। सत्य शब्द सत् से बना है जिस का तात्पर्य है– यथार्थ सत्ता जो संसार का संचालक करती है। गाँधी जी ने हमेशा इसको पहुँचाने व अनुकरण की बात कही है। इसका संबंध व्यक्ति यथार्थ में सत्ता को पहचानने की क्षमता को विकसित करना है। जैसा कि गाँधी जी ने लिखा भी है–''यह सत्य शाब्दिक सत्य से नहीं है, बल्कि विचारों की सत्यता से संबंधित है। यह केवल हमारी अवधारणाओं का सापेक्ष सत्य नहीं, अपितु निरपेक्ष सत्य, सनातन सिद्धान्त है जो कि ईश्वर है।''

गाँधी जी ने सत्य व असत्य को समझने के लिए सत्य–असत्य दो प्रकार की अवधारणाओं को व्यक्त किया है–

क–सत्य– शुद्ध आत्मा की वाणी ही सत्य कता अधार है,जो ब्रह्म है, ईश्वर है व संसार में टिकाऊ है, जो यथार्थ सत्ता के नमा से प्रचलित हैं

ख–असत्य– असत्य वह है जो संसार में नहीं टिकता, जो न तो यथार्थ है और नहीं धारण करने योग्य है।

उनका मानना था कि कोई भी व्यक्ति चाहे आस्तिक हो या नास्तिक, सत्य की इस सत्ता से इन्कार नहीं कर सकता। इसी सत्य पर सृष्टि आधारित है, जिसे आधार बनाकर गाँधी जी ने 'सत्याग्रह' के सिद्धान्त को प्रतिपादित किया। दादा धर्माधिकारी ने भी गाँधी जी की सत्य की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए लिखा है–''सामाजिक मूल्य के रूप में जब हम सत्य की उपासना करते हैं तो ध्रुव सत्य हमारे लिए यह है कि दूसरे व्यक्ति और मैं एक हूं। मेरा दूसरों के साथ एकता, मेरी सामाजिकता, मेरी नैतिकता व सदाचार का आधार है जो दूसरों के साथ हमारी परमार्थिक एकता है।''

उपर्युक्त आधार पर कहा जा सकता है कि गाँधी जी के सत्य का सिद्धान्त विचारों की सत्यता, निरपेक्ष, सनातन व ईश्वर से जुड़ा है, जिसमें अन्तरात्मा की आवाज सुनने, अहिंसा को अपनाने, मन, वचन, कर्म से निर्विकार व शुद्धिकरण पर बल दिया है।

अहिंसा (Ahinsa or Non violence)- सत्य प्राप्ति गांधी जी का लक्ष्य व अहिंसा उनके लिए साधन था, वे अहिंसा को जीवन की सबसे बड़ी शक्ति मानते थे, जो जीवन को हिंसा से मुक्त रखती हैं। उनके अनुसार अहिंसा के बिना सत्य की खोज व ईश्वर प्राप्ति का स्वप्न अधूरा है। गाँधी जी के अनुसार–हिंसा कायरता का अस्त्र नहीं है, बल्कि व्यक्ति की सबलता का सशक्त प्रतीक है। अहिंसा कायर का कवच नहीं, बल्कि बहादुर का उच्चतम गुण है। किसी भी व्यक्ति के लिए कुविचार रखना ही हिंसा है।''सामान्य रूप से अहिंसा को सकारात्मक (Positive) एवं नकारात्मक (Negative) दो रूपों में देखा जाता है। गाँधी नकारात्मक रूप से पृथक है और सकारात्मक अहिंसा को अपनाते हुए उसके गुणों को बिजली से

अधिक तेज और ईश्वर से भी अधिक शक्तिशाली रूप में वर्णित करता है। अतः ऊँची से ऊँची हिंसा का विरोध ऊँची से ऊँची अहिंसा के द्वारा किया जा सकता है।

8.5 अहिंसा के तत्व (Essential Elements of Non violence)

गाँधी जी द्वारा प्रस्तुत अहिंसा के सिद्धान्त के आधार पर अहिंसा के आवश्यक तत्वों की चर्चा निम्नवत् की जायेगी–

1) सत्य (Truth)- सत्य अहिंसा का पहला आवश्यक व महत्वपूर्ण तत्व है जो स्वयं में ब्रह्म है। परमात्मा है, ईश्वर है, जिसकी प्राप्ति मानव जीवन का अन्तिम उद्देश्य है। इसकी विस्तार में चर्चा पूर्व में की जा चुकी है।

2) प्रेम (love)- सभी जीवधारियों के साथ प्रेम की भावना व व्यवहार की आवश्यकता को गाँधी जी महत्वपूर्ण मानते थे, प्रेम जिसमें सत्य का होना नितान्त आवश्यक है। सबसे बड़ी अहिंसा है। गाँधी जी ने लिखा है–''प्रेम कभी कोई चीज पाने का इच्छुक नहीं होता। वह सदा कुछ देता है। यह सदा मुसीबतें सहन करता है। कभी घृणा नहीं करता, कभी बदला नहीं लेता।''

3) आन्तिरिक पवित्रता (inner purity)- अंतरात्मा की शुद्धता एवं पवित्रता अहिंसा का तीसरा तत्व हैं। जहाँ आन्तरिक पवित्रता के अन्तर्गत आत्मा–अनुशासन, नम्रता जैसे गुणों को सम्मिलित किया जाता है, क्योंकि इसी के आधार पर व्यक्ति स्वयं को अहिंसा के लिए प्रेरित करता है। डॉ0 सुशील नायर ने लिखा है–''आन्तरिक पवित्रता व चट्टान है जिस पर एक सत्याग्रही को खड़ा होना चाहिए, ताकि वह अपने शत्रु के हदय को प्रभावित कर सके और उनके अन्दर निहित मानवीय तथा ईश्वरीय शक्ति चिंगारी को प्रज्जवलित कर सके।''

4) लगन (persevernance)- अहिंसा के लिए लगन का होना नितान्त आवश्यक है। गाँधी जी मानते थे कि व्यक्ति को किसी भी कार्य को केवल सफलता की लालसा से नहीं करना चाहिए, क्योंकि सफलता का मार्ग प्रशस्त करने पर कई बार असफलता का सामना करना पड़ता है, ऐसी स्थिति में अटूट लगन ही सफलता प्राप्ति की अनिवार्यता है।

5) भयहीनता (Fearlessness)- अहिंसा को एक सक्रिय शक्ति के रूप में स्वीकार करते हुए गाँधी जी मानते थे कि अहिंसा एक सतत् क्रियाशीलता शक्ति है, जिसमें सत्यता का पालन करने के लिए निडरता या भयहीनता का गुण होना आवश्यक है। अहिंसा बहादुरों का अस्त्र है, कायरता से अहिंसा में वजह पाना असंभव है।

6) लालच का न होना (Non Plssession)- गाँधी जी के अहिंसा के प्रमुख तत्वों में व्यक्ति का लालची प्रवृति से दूर रहना भी एक है। लालच जहाँ व्यक्ति के आत्मविश्वास को क्षीण करता है, वहीं अपराधिक प्रवृत्ति को जन्म देकर व्यक्ति को पदभ्रष्ट भी कर देता है।

7) व्रत (fasting)- गाँधी जी के अनुसार व्रत केवल व्यक्ति में नियम व अनुशासन को संचालित नहीं करता, बल्कि शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक पवित्रता का विकास करता है, और जिनमें इस प्रकार की पवित्रता निहित होती है। वह अहिंसा के सिद्धान्त का आसानी से पालन करने में सक्षम होता है।

उपरोक्त आधार पर गांधी जी के अहिंसा के सिद्धान्त को निष्कर्षतः निम्नवत् समझा जायेगा–

- अहिंसा के लिए आत्मबल की शक्ति आवश्यक है।
- अहिंसा आन्तिरिक शक्ति के रूप में प्रयुक्त होकर आत्मा को विकसित करती है।
- अहिंसा मानव जीवन का उच्चतम आदर्श है, जिसको प्राप्त करने के लिए व्यक्ति को निरन्तर प्रयत्नशील होना चाहिए।
- अहिंसा के लिए सत्य, प्रेम आन्तरिक पवित्रता, लगन, निडरता, लालची प्रवृत्ति का न होना तथा व्रत के आधार पर शारीरिक, मानसिक व आत्मिक पवित्रता को विकसित करना आवश्यक है।
- अहिंसा बुद्धि को नहीं हृदय को पवित्र करती है।
- अहिंसा जीवन का एक नियम है।

8.6 सत्याग्रह का अर्थ (Meaning of Satyagrah)

व्यक्ति के जीवन की अनेक आवश्यकताएँ तथा समस्याएँ होती हैं। जिनकी पूर्ति विभिन्न उद्देश्यों के आधार पर की जाती है। इन उद्देश्यों को कैसे पूरा किया जाए। इस संबंध में विभिन्न विद्वान अपनी अलग–अलग राय रखते हैं। इनमें से गाँधी जी भी एक है जिनका मानना है कि अहिंसा का व्यवहारिक रूप सत्याग्रह है। जिसके आधार पर लक्ष्य तक पहुँचना आसान हो जाता है। साथ ही लक्ष्य तक पहुँचने के लिए क्रान्ति को भी गाँधी जी ने आवश्यक मानते हुए सत्याग्रह को उसका मुख्य शस्त्र बतलाया है।

सत्याग्रह दो शब्दों से मिलकर बना है– सत्य और आग्रह। अर्थात् सत्य का आग्रह करना, सत्य पर दृढ़ रहना ही सत्याग्रह है, जिसकी उत्पत्ति के लिए अपनी पत्नी को कारक माना है। उन्होंने लिखा है–''मैंने अपनी पत्नी से सत्याग्रह का पाठ पढ़ा। मैंने उसे अपनी इच्छा के सामने झुकाने का प्रयास किया। उसमें एक ओर मेरी इच्छाओं का दृढ़तापूर्वक विरोध किया और दूसरी ओर मेरी मूर्खता के लिए मूक रहकर कष्ट सहन किया। मुझे अन्त में अपने आप में शर्म आने लगी और अपने इस विचार का कि मेरा जनम ही उस पर हुकूमत चलाने के लिए हुआ है, मुझे पागलपन दिखायी देने लगा। अन्त में अहिंसा के मामले में वह मेरी गुरू बनी और अनजाने में ही उसने जिस सत्याग्रह का अवलम्बन किया। उसी के नियमों का विस्तार मात्र मैंने दक्षिण अफ्रिका में किया।

8.7 सत्याग्रह के तत्व (elements of satyagrah)

यहाँ पर गाँधी जी के सत्याग्रह में निहित तत्वों की चर्चा करेंगे–

1) सत्य एवं अहिंसा (Truth and Non Violence)–गाँधी जी ने सत्याग्रह के पहले तत्व के रूप में सत्य की शक्ति व दूसरे के रूप में अहिंसा को आधार माना है। उनका मानना था कि सत्याग्रही को हमेशा यह विश्वास होना चाहिए कि वह सत्य के लिए लड़ रहा है। वह सत्य जो ईश्वर का रूप है, प्रेम है, न्याय है, क्योंकि सत्य सामाजिक क्रिया पर आधारित है। ऐसे ही अहिंसा के तत्व को प्रस्तुत् कर उन्होंने लिखा है–यह एक ऐसा सकारात्मक व्यवहार है जो सत्य प्राप्ति का लक्ष्य है। इसके अन्तर्गत किसी के विचारों को मन को व शरीर को किसी प्रकार का कष्ट एवं आघात न पहुँचाना, प्रेम व स्नेह के भाव को सम्मिलित किया गया है। सत्य व अहिंसा के सविस्तार चर्चा पूर्व में की गयी है।

2) आत्मपीड़ा (self Torture)- सत्याग्रह प्रेम पर आधारित है जिसे पाने के लिए व्यक्ति को समझौता, कष्ट व आत्मपीड़ा अनिवार्य हो जाती है। प्रेम की परीक्षा, त्याग व बलिदान से होती है और तपस्या का अर्थ स्वयं को कष्ट भुगतने के लिए सर्वदा तत्पर रखना, आत्मपीड़ा में भी संतुष्टि का होना है। आत्मपीड़ा से तत्पर व्यक्ति निडर व निर्भीक होता है, जिसमें मृत्यु से सामना करने की क्षमता होती है। गाँधी जी ने लिखा है–''प्रेम कभी मांग नहीं करता, वह हमेशा देता है, प्रेम कष्ट सहता है, कभी शिकायत नहीं करता है और न ही बदला लेता है।'' अतः सत्याग्रह एक धर्मयुद्ध है, जिसमें भगवान की सहायता आवश्यक है, जो आत्मपीड़ा, अहिंसा तथा सत्याचरण द्वारा ही प्राप्त हो सकता है।

8.8 सत्याग्रह के लक्षण (qualities of satyagarh)-

सत्याग्रह के प्रमुख दस लक्षणों को गाँधी जी द्वारा प्रस्तुत् किया गया हैं जिसकी चर्चा निम्नवत् करेंगे–

1) अहिंसा (Non violence)- दूसरों की आत्मा को दुखी न करना।

2) सत्य (Truth)- दूसरों के साथ हमारी परमार्थ एकता।

उपरोक्त दोनों लक्षण सत्य–अहिंसा के हैं, जिनकी चर्चा पूर्व में कई बार हो चुकी है। ये सत्याग्रह के लक्षणों में से एक हैं।

3) अस्तेय (Non Stealing)- यद्यपि यह नियम भी सहायक नियम है, तथापि सामाजिक संगठन की दृष्टि से इसका अत्यधिक महत्व है। व्यक्ति में आत्मसंतोष होना आवश्यक है, क्योंकि आत्मसंतोष ही अस्तेय की प्राप्ति का प्रतीक है। सामान्यतया दूसरे की अनुमति के बिना उसकी वस्तु को उठाना या उपयोग करना तो चोरी है ही, लेकिन यदि कोई व्यक्ति अपनी आवश्यक जरुरतों से अधिक वस्तुओं की आकांक्षा करता है। उनके लिए प्रयत्न करता है तथा उनको अपने पास रखता है तो वह भी एक प्रकार का चोरी है। आवश्यकता से अधिक अपने पास रखने का अभिप्राय हम दूसरों के अधिकार की वस्तु में हाथ डाल

रहे हैं, जिसको कि इसकी जरूरत है। दूसरे की वस्तु के लिए इच्छा ही न करना, जरूरत से अधिक वस्तुओं को समेटना अस्तेय है। अतः कहा जा सकता है कि अस्तेय एक वृत्ति और प्रवृत्ति भी है। यह एक निष्ठा है। केवल आचरण नहीं।

वृत्ति और आचरण की समानता के साथ अपने ही श्रम से प्राप्त वस्तु के अतिरिक्त अन्य किसी व्यक्ति की वस्तु की आकांक्षा न करना ही अस्तेय है।

4) ब्रह्मचर्य (Brahmcharya)- ब्रह्मचर्य को गांधी जी ने सत्य–अहिंसा के लिए आवश्यक माना है। इसके प्रति उनकी धारणा सामाजिक थी। वे सार्वभौमिक प्रेम पर विश्वास करते थे, जिसमें प्रेम की सीमा स्त्री–पुरुष तक ही सीमित न रहकर सबके लिए होनी चाहिए। उनके अनुसार ये तभी संभव है, जब लैंगिग सुखों का प्रयोग या उपभोग दायरे के अन्तर्गत होगा। परिवार में स्त्री की अवस्था मातृत्व की भावना से सम्पन्न होनी चाहिए, जिससे उसमें त्याग वृत्ति का विकास हो। स्त्री को व्यक्तिनिष्ठ न होकर तत्वनिष्ठ होना चाहिए। स्त्री के सहजीवन की नींव पवित्रता पर होनी चाहिए। पुरुष की वृत्ति स्त्री के प्रति अनाक्रमणशीलता की होनी चाहिए और स्त्री की निर्भीकता की। यही जीवन का आधार है। ब्रहमचर्य है, जो समाज के पतन के रास्ते से बचाने के लिए आवश्यक है।

5) अपरिग्रह (Aparigarh) गाँधी जी का विचार है कि व्यक्त्ति एवं समाज की सुख शान्ति परिग्रह या संचय करने में नहीं है, अपितु विचारपूर्वक एवं स्वेच्छा से संग्रह की हुई है। वस्तुओं, सम्पत्ति या सुख–सुविधाओं का त्याग करने में सच्ची शान्ति व सुख है, ज्यों–ज्यों परिग्रह कम होता है, मानव चिन्ताएँ कम होती जाती है तथा सच्चे सुख व शान्ति प्राप्त होती है। जहाँ ऐसा करने से व्यक्ति की आत्मा को सच्चा सुख मिलता है। वहीं समाज में धन का समान वितरण, गरीबी, भूखमरी आदि की भी समाप्ति होती है और समाज में प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकता पूरी होने लगती है। परिग्रह का त्याग आवश्यक है, क्योंकि यह सभी बुराईयों की जड़ है।

6) शारीरिक श्रम (Physical labour)- शारीरिक श्रम के सिद्धान्त के आधार पर मनुष्य को जीवित रखने के लिए श्रम आवश्यक है जो कि मस्तिष्क से नहीं शरीर से होना चाहिए। काम और आराम के बीच का अन्तर संघर्ष का कारण होता है, जिसे दूर करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को शारीरिक श्रम आवश्यक करना चाहिए। हम जो कार्य कर सकते हैं, उसे स्वयं करना चाहिए। सामाजिक दृष्टि से भी यदि हम अपनी आवश्यकतानुसार के अनुमाप में कार्य करके खा लेते हैं तो इससे समाज में व्याप्त समस्याओं का भी समाधान हो जायेगा। पूंजीपति व श्रमिकों के बीच पाया जाने वाला संघर्ष कम होगा तथा समाज में

न्याय की स्थापना होगी और शोषण कम होगा। गाँधी जी के अनुसार–'व्यक्ति को धन निष्ठ न होकर श्रमनिष्ठ होना चाहिए।'

7) अस्वाद (Tastelessness)- शारीरिक श्रम के बदले कुछ प्राप्त करने की कामना अस्वाद है। दूसरों को खिलाकर खाना, उत्पादन पर स्वयं की जगह समाज का अधिकार मानना, आनन्द की छाया दूसरे की आँखों में देखकर आनन्दित होना अस्वाद है। अर्थात् पहले दूसरों को वितरित हो फिर यदि बचे तो मैं लूं यही भावना अस्वाद कहलाती है। गाँधी जी के अनुसार–''भोजन शरीर की आवश्यकता के लिए नहीं होना चाहिए। न कि स्वाद के लिए। यदि हम अपनी पाश्विक वृत्तियों एवं कामनाओं पर विजय पाना चाहते हैं तो हमें स्वाद का त्याग करना होगा।

8) स्वदेशी (Swadeshi)- स्वालम्बन व्यक्ति के लिए अत्यंत आवश्यक व्रत है। गाँधी जी ने कहा है–''स्वदेशी ऐसी भावना है जो हमें आस–पास रहने वाले लोगों की सेवा के लिए प्रेरित करती है, जो व्यक्ति अपने निकट वालों को छोड़कर दूर वालों की सेवा के लिए दौड़ता है। वह स्वदेशी व्रत को भंग करता है। स्वयं उत्पादित वस्तुओं का प्रयोग हमारा स्वाभिमान है। ऐसी भावना सत्याग्रह के लिए आवश्यक है।

9) स्पर्श भावना (Touchability)- गाँधी जी के अनुसार जाति–वर्ण के बन्धन से उत्पन्न ऊँच–नीच के आधार पर पलने वाली अस्पृश्यता का सर्वोदय समाज व्यवस्था में कोई स्थान नहीं होता। प्रत्येक व्यक्ति दूसरे को अपने बराबर समझे तथा प्रत्येक व्यक्ति में स्पर्श की भावना का उदय होना चाहिए। सभी मनुष्य समान है। अतः किसी के भी उचित तरीके से जीने का अधिकार को छीनने का किसी को हक नहीं है।

10) धार्मिक समानता (Religious Equality)- विभिन्न सम्प्रदायों का निराकरण कर देना धार्मिक समानता है। गाँधी जी के अनुसार सभी धर्मों के मूल सिद्धान्त एक है, जिसका उद्देश्य सभी धर्मों को आदर की दृष्टि से देखना है। यदि इस प्रक्रिया को जीवन में लागू किया जायेगा तो धर्म परिवर्तन की समस्या का भी अन्त हो जायेगा।

संक्षेप में गाँधी जी ने सत्याग्रह को **'क्रान्ति का विज्ञान'** कहा है। सत्याग्रह के लिए उपरोक्त लक्षणों का पालन अनिवार्य है जो एक–दूसरे से किसी–न–किसी प्रकार प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जुड़े हुए हैं।

8.9 सत्याग्रह की विधियाँ (Methods of satyagrah)

गाँधी जी सत्याग्रह में जिन विधियों का उल्लेख किया गया है, वे इस प्रकार हैं–

1. हड़ताल 2 उपवास 3. प्रार्थना 4. प्रतिज्ञा 5. असहयोग 6. करबन्दी 7. धरना 8. सविनय अवज्ञा 9. अहिंसक धावे 10. आमरण अनशन 11. अपनी इच्छा से सरकारी सीमा छोड़ना।

8.10 सत्याग्रह का प्रयोग (Experiment of satyagraha)-

सामान्यतया यह माना जाता है कि सत्याग्रह का प्रयोग केवल शत्रुओं पर ही किया जाना गलत है। गाँधी जी के अनुसार–यदि सत्याग्रह न्याय और सत्य पर आधारित है तो इसका प्रयोग परिवार के सदस्यों, मित्रों, पड़ोसियों, साथियों, यहाँ तक कि संसार के विरुद्ध तक किया जा सकता है। सत्याग्रह आलौकिक शक्ति है, जो जाति, धर्म, लिंग, सम्प्रदाय, क्षेत्र आदि किसी आधार पर भेदभाव नहीं करता। अतः सत्याग्रह एक सार्वभौमिक प्रक्रिया है, जिसका प्रयोग सभी व्यक्तियों, सभी स्थितियों में किया जाता है।

8.11 सत्याग्रह का मनोविज्ञान (Psychology of satyagarh)–

सत्याग्र को मानव समाज की अएक मनोवैज्ञानिक अवस्था माना जाता है। मनुष्य में पायी जाने वली मूल प्रवृत्तियों को प्रमुख रूप से दो भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है–

1) सद्प्रवृत्ति या दैवी प्रवृत्ति– गाँधी जी का विचार था कि यदि हम मनुष्य का विश्लेषण करें तो स्पष्ट हो जाता है कि वह सद्प्रवृत्तियों का प्राणी है। जिसमें देवत्व के गुण विद्यमान होते है। जो मनुष्य के अन्दर स्वभाविक रूप से विद्यमान देवत्व की प्रवृत्ति को जाग्रत करता है। इसमें व्यक्ति का स्वभाव व आत्मा अन्याय से न्याय की ओर, असत्य से सत्य की ओर, दानव से देवत्व, घृणा से प्रेम तथा स्वार्थ से परार्थ की ओर अग्रसारित होता है। सत्याग्रह व्यक्ति में सद्प्रवृत्ति को जाग्रत करने की कला है।

2) असद् या दानवी प्रवृत्ति –गाँधी जी के अनुसार, यदि मनुष्य में असद् प्रवृत्तियाँ होती हैं, तो सम्पूर्ण संसार में युद्ध और संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाती और मानव समाज नष्ट हो गया होता। अन्याय, असत्य, घृणा, स्वार्थ, दानवता का सर्वत्र बोलबाला होता और समाज अव्यवस्थित हो जाता।

अतः गाँधी जी मानते थे कि सत्याग्रह का सिद्वान्त व्यक्ति की मानवीय प्रवृत्तियों को सत्यप्रिय, न्यायप्रिय, परार्थी और अहिंसक बनाता है, जिसे एक वैज्ञानिक व मनोवैज्ञानिक आधार कहा जा सकता है।

सारांश रूप में कहा जा सकता है कि सत्याग्रह का तात्पर्य सत्य के आग्रह से है। जो व्यक्ति सत्य के लिए अपने प्राणों का बलिदान करने को भी तैयार रहता है, वहीं वास्तविक सत्याग्रही है। सत्याग्रह में प्रेम, स्नेह, सदाचरण, न्याय, परार्थी, सत्य, अहिंसा की प्रक्रिया को अपनाया जाता है, जिससे न केवल व्यक्ति, बल्कि सम्पूर्ण समाज, देश व राष्ट्र भी विकसित होता है।

8.12 सत्याग्रह का मूल्यांकन (Evaluation of Satyagarh)-

गाँधी जी द्वारा प्रतिपादित सत्याग्रह के सिद्वान्त का मूल्यांकन निम्नवत् किया जा रहा है–

1) व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन में महत्व (Importance of Indivisual and social life)- सत्याग्रह के प्रमुख तत्वों, विशेषताओं के आधार पर माना जा सकता है कि यदि व्यक्ति इनका अनुसरण करेगा, या जीवन में इन्हें आमसात् करेगा तो न केवल व्यक्ति के स्वयं के जीवन में, बल्कि सम्पूर्ण समाज में इसका महत्व होगा।

2) समाज का पुर्ननिर्माण (Reconstruction of society)- सत्याग्रह के सिद्धान्तों को जीवन में लागू कर व्यक्ति नकारात्मक से सकारात्मक प्रवृत्ति की ओर अग्रसारित होता है। गाँधी जी द्वारा वर्णित नये व नैतिक विचारों के आधार पर समाज का पुर्ननिर्माण भी संभव है।

3) सामाजिक अनुशासन व नैतिकता में वृद्धि– अनुशासन व संयम सक्षम व्यक्तित्व व सामाजिक व्यवस्था के लिए आवश्यक है, जिसकी सहायता से सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन में व्याप्त दुष्परिणामों को समाप्त किया जा सकता है।

4) मानवता के प्रति प्रेम (Love for humanity)- सत्याग्रह एक ऐसा सिद्धान्त जिसमें मानवता के प्रति प्रेम के दर्शन होते हैं, जिससे समाज में स्नेह एवं सहयोग की भावना विकसित होती है और इस प्रकार समाज की प्रगति को प्रोत्साहन मिलता है।

अतः स्पष्ट है कि गाँधी जी में सौजन्यता, नमग्रता, सत्य व अहिंसा के प्रति अटल विश्वास था, इसीलिए उन्होंने विश्व को विशेषकर भारत को सत्याग्रह के आधार पर नया मार्ग दिखलाया। श्रीमन्ननारायण ने लिखा है–'सत्याग्रह की बुनियाद भी साधन शुद्धि।' गाँधी जी को यह विश्वास था कि हमको हमारा शुद्ध साध्य अशुद्ध व अपवित्र साधनों द्वारा कभी प्राप्त नहीं हो सकता। उनके अनुसार– ''जैसे साधन होंगे वैसे ही साध्य होंगे, जैसा बीज वैसा ही वृक्ष होंगे।''

6– सत्याग्रह (Satyagarh)- समाजशास्त्र के सिद्धान्त के अंतर्गत सत्याग्रह का अध्ययन किया जाता है। इसका कारण है कि समाज सामाजिक संबंधों की एक व्यवस्था है और सत्याग्रह इन्हीं संबंधों में मधुरता व अनुकूलता को विकसित करता है। यद्यपि सत्याग्रह का प्रयास गांधी जी ने व्यक्तिगत जीवन में किया था, लेकिन इसका संबंध केवल व्यक्ति तक सीमित न होकर एक सार्वज्ञानिक व व्यवहारिक सिद्धान्त के रूप में सामाजिक जीवन में भी है। सत्याग्रह की प्रक्रिया को अपनाकर समाज में व्याप्त असत्य, अन्याय, शोषण को समाप्त किया जा सकता है तथा सहयोग, सहकारिता, सद्भाव जैसी भावनओं को विकसित कर सामाजिक व्यवस्था को एक व्यवस्थिति रूप प्रदान किया जा सकता है। सामाजिक जीवन इन्हीं महान सिद्धान्तों पर टिका हुआ है जो व्यक्तिगत जीवन की अपेक्षा सामाजिक व राष्ट्रीय जीवन में प्रयोग किया जा सकता है। सत्याग्रह केवल सिद्धान्त की बात नहीं है, अपितु गाँधी जी ने इसका व्यवहारिक जीवन में भी प्रयोग किया है और पाया है कि इसकी सहायता से अन्याय व प्रतिकार को भी समाप्त किया जा सकता है। इस सिद्वान्त की मौखिक बात यह है कि इसका प्रयोग अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी किया जा सकता है।

8.13 सर्वोदय (Sarvoday)

अवधारणा (concept)-आधुनिक युग में विज्ञान ही शक्ति है, किन्तु सत्ता वैज्ञानिक के हाथ में नहीं है। सत्ता का सूत्र राज्य, धन, शस्त्र के हाथ में है। संसार शान्ति चाहता है, पर शस्त्र नहीं छोड़ता। व्यक्ति की सम्पन्नता, समृद्धि और सुशिक्षा के लिए पूंजीवाद, समाजवाद, साम्यवाद भिन्न–भिन्न प्रयोग चल रहे हैं। प्रगति विश्व का नारा बन गया है। गांधी जी ने आधुनिक विश्व के संघर्ष पूर्ण वातावरण को देखकर एक नवीन समाज रचना की व्यवस्था दी, जिसमें प्रेम, सत्य व शान्ति के आधार पर व्यक्ति प्रगति की ओर बढ़े, लक्ष्य के अनुरूप साधन जुटाए। ये तभी संभव है जब सर्वोदय का पालक किया जाए।

8.14 सर्वोदय का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definitions of Sarvodaya)-

यहाँ सर्वोदय का अर्थ व विद्वानों द्वारा दिये गये विचारों की चर्चा होगी।

सर्वोदय का अर्थ जानने से पूर्व यह समझना आवश्यक है कि गाँधी जी का आदर्श समाज सर्वोदय समाज है। सर्वोदय शब्द को गाँधी जी ने रस्किन के प्रभाव व प्रेरणा से प्राप्त किया। रस्किन की पुस्तक 'अन टू दि लास्ट' पढ़ी और उसका गुजराती में अनुवाद कर सर्वोदय नाम से प्रकाशित किया और अपनी आत्मकथा में गाँधी जी ने सर्वोदय को इस प्रकार समझने की बात कही है–

1. सबकी भलाई में हमारी भलाई निहित है।
2. वकील व नाई दोनों के काम की कीमत एक सी होनी चाहिए, क्योंकि आजीविका का आधार सबको समान है।
3. किसान, मजदूर व कारीगर का जीवन ही सच्चा जीवन है और यही सर्वोदय का आदर्श है।

उनका कहना था–''पहली चीज में जानता था, दूसरे को मैं धुंधले रूप में देखता था, तीसरे को मैंने कभी विचार नहीं किया 'सर्वोदय' ने मुझे दीये की तरह दिखा दिया कि पहली चीज में दूसरी व तीसरी दोनों चीजें समायी हुई हैं।''

सर्वोदय के अर्थ को जानने से स्पष्ट होता है कि वह दो शब्दों सर्व और उदय से मिलकर बना है। 'सर्व' का तात्पर्य सबसे अर्थों में सबका उदय, सब का विकास व सब की उन्नति ही सर्वोदय है या सभी के जीवन के सभी पक्षों की सम्पूर्ण प्रगति ही सर्वोदय है, जो ऐसे वर्ग विहीन, जाति विहीन और शोषण विहीन समाज की स्थापना चाहता है, जो सर्वभू हिताय अर्थात् सबके अधिकतम हित पर विश्वास करती हो। जिसे सत्य अहिंसा द्वारा पाप्त किया जा सकता है। विनोबा भावे जी के शब्दों में– ''सर्वोदय कुछ या बहुतों का या अधिकतम का उत्थान नहीं चाहता। हम अधिकतम से अधिकतम सुख से संतुष्ट नहीं हैं। हम तो केवल एक की और सब की, ऊँचे और नीचे की। सबल और निर्बल की, बुद्धिमान और बुद्विहीन की भलाई से ही सन्तुष्ट हो सकते हैं। सर्वोदय शब्द एक उत्कृष्ट और सर्वव्यापक भावना की अभिव्यक्ति करता है।''

गाँधी जी ने लिखा है–''मेरा स्वराज्य का स्वप्न गरीबों के स्वराज्य का है। उनके लिए जीवन की आवश्यक वस्तुएँ वैसे ही सुलभ होनी चाहिए, जैसे कि धनिकों और राजाओं की। निःसन्देह कह सकता हूँ कि जब तक ये सुविधाएँ सर्व–सुलभ न हों, तब तक स्वराज्य 'पूर्ण स्वराज्य नहीं होगा।''

डॉ0 सिन्हा के अनुसार–''एक समाज में समस्त सदस्यों का समान, नैतिक, सांस्कृतिक विकास ही 'सर्वोदय' है।''

उपरोक्त आधार पर कहा जा सकता है। सर्वोदय समाज व्यवस्था मानव मात्र के कल्याण के लिए विकसित की गयी समाज रचना है, जिसमें हर व्यक्ति अपनी शक्ति समाज को अर्पण करे और समाज की ओर से जो मिले उसे प्रसाद रूप में ग्रहण करें। यही साम्य योग और सर्वोदय का प्रमुख तत्व है।

8.15 सर्वोदय के सिद्धान्त

सर्वोदय के कुछ मूलभूत सिद्धान्तों की चर्चा निम्नवत् की जा रही है–

1) अक्षम को सक्षम बनाना–सर्वोदय की समाज व्यवस्था में मनुष्य की वीरता दुर्बल की सुरक्षा के लिए प्रयोग की जायेगी। निर्बल का शोषण या उनको मारना वीरता नहीं है, बल्कि उनको सबल बनाने को प्रयत्न करना ही सच्ची वीरता है। एक–दूसरे की असमर्थता को दूर करके, सब एक दूसरे का जीवन सम्पन्न करें। प्रत्येक व्यक्ति के विकास में अपना विकास समझे। दूसरे की असमर्थता का निवारण ही अपने सामर्थ्य का विकास है। इसमें व्यक्तिवाद की भावना सर्वोदय में विलीन हो जायेगी। इस प्रकार के विचार का आचरण ही सर्वोदय का प्रथम सिद्धान्त है।

2) प्रेम और अहिंसा– सर्वोदय समन्वयवादी नीति पर आधारित है। जिसमें एक दूसरे को अपना बनाकर त्याग की भावना को विकसित किया जा सकता है। जहाँ मार्क्स संघर्ष को स्वाभाविक बतलाते हैं, वहीं सर्वोदय प्रेम को स्वाभाविक मानता है। सर्वोदय का आधार सत्य और निष्कपट प्रेम है। निश्छल मन से सब के साथ साथ सद्व्यवहार करने से समन्वय होता है। अतः प्रेम और अहिसा सर्वोदय का दूसरा सिद्धान्त है।

3) मानवीय मूल्यों की स्थापना– गाँधी जी व्यक्ति को सर्वाधिक महत्व देते थे तथा व्यक्ति के व्यक्तित्व को विकसित करना चाहते थे। प्रत्येक समाज में मानव जीवन के कुछ निश्चित मूल्य होते हैं, जिनकी रक्षा सामाजिक कल्याण की दृष्टि से आवश्यक हैं। अतः सर्वोदय का तीसरा महत्वपूर्ण सिद्धान्त मानवीय मूल्य है, जिसमें सत्य, अहिंसा, प्रेम निहित होता है। गाँधी जी के अनुसार ''मानवीय मूल्य वही है जो सब पर समान रूप से लागू हो, जो परमार्थिक हो और जो निरपेक्ष हो।'' सर्वोदय समाज की वह अवस्था है, जो इन मानवीय मूल्यों को स्थापित करने में सहयोग देती है और समाज की प्रगति में सहायक होती है। सर्वोदय समाज बाधक मूल्यों का निवारण कर निरपेक्ष, शाश्वत एवं व्यापक मानवीय मूल्यों की स्थापना करना चाहता है।

8.16 सर्वोदय के आधारभूत उद्देश्य

(Fundamantal objectives of Sarvodaya)

सर्वोदय मानव समाज के विकास की एक वैज्ञानिक योजना है, जिसका उद्देश्य सभी का उत्थान व विकास करना है। गाँधी जी के अनुसार– ''मनुष्य स्वभाव से सहयोग करने वाला प्राणी है, लेकिन इसके

लिए उसे पर्याप्त अवसर मिलना आवश्यक है। सर्वोदय व्यक्ति को सहयोगात्मक अवसर प्रदान करता है। संक्षेप में सर्वोदय के आधारभूत उद्देश्यों की चर्चा निम्नवत् की जा रही है–

1) सत्ता का विकेन्द्रीकरण (Decentriliization of Power)-सर्वोदय के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति का स्वतंत्र अस्तित्व है अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्रता का अधिकारी है। यह एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें समाज को संगठन और प्रगति के लिए सत्ता के उपयोग की आवश्यकता ही नहीं होती। अतः संस्थाओं द्वारा सत्ता का प्रयोग या तो समाप्त कर दिया जायेगा या फिर कम कर दिया जायेगा। गाँधी जी ने स्वीकार किया था कि व्यक्ति की प्रगति के लिए शक्ति के केन्द्रीकरण को समाप्त करना होगा और इसे छोटी–छोटी इकाईयों तक फैलाना होगा। साथ ही इन्हें विशिष्ट अधिकार व कर्तव्य प्रदान किये जायें। इसलिए गाँधी जी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक, सभी क्षेत्रों में सत्ता का विकेन्द्रीकरण करना चाहते थे। उनके ग्राम स्वराज्य की कल्पना विकेन्द्रीकरण पर ही आधारित थी।

2) आत्म संयम (Self Restraint)- व्यक्ति व राष्ट्र के सर्वांगीण विकास के लिए गाँधी जी सर्वोदय को महत्वपूर्ण मानते थे। आत्मसंयम व्यक्ति का एक ऐसा गुण है, जो व्यक्तित्व विकास के साथ समाज व राष्ट्र के विकास में भी सहायक होगा, क्योंकि इसके द्वारा व्यक्ति में सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, अस्तेय, निर्भीकता, आध्यात्मिकता, शारीरिक श्रम, अस्वाद, स्वावलम्बन तथा अस्पृश्यता का अन्त जैसी विशेषताओं का समावेश होगा। ये सभी विशेषताएँ आत्म संयम पर आधारित हैं इसके लिए सर्वोदय का लक्ष्य प्रमुख है।

3) आजीविका का साधन (Employment)- सर्वोदय समाज व्यवस्था समाज के प्रत्येक व्यक्ति को उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आवश्यक रोजगार देने की व्यवस्था करती है। इसका अर्थ है कि विज्ञान (science) और यंत्र (Machines) उत्पादन में सहायक होंगे। हर व्यस्क सेवाभाव से कार्य करेगा, श्रम की प्रतिष्ठा, व्यक्ति के लिए भौतिक व आध्यात्मिक विकास के अवसर इत्यादि की उपलब्धता होगी। उत्पादन में भारी साधनों में ग्राम संस्थाओं, सहकारी संस्थाओं अथवा राज्य का अधिकार होगा। कोई बेकार नहीं रहेगा। सब अपना–अपना काम करेंगे।

4) अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति (Satartification of Necessities)- गाँधी का सर्वोदय प्रत्येक व्यक्ति के पूर्ण विकास पर विश्वास करता है। अतः हर एक की अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति सर्वोदय का लक्ष्य है। जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के साधनों की उपलब्धता के लिए मुख्य रूप से रोटी, कपड़ा, मकान, स्वास्थ, शिक्षा, मनोरंजन आदि की व्यवस्था के लिए उपयुक्त आमदनी के साधन जुटाना आवश्यक होगा।

5) **क्षेत्रीय स्वालंबन (Regional Sufficiency)-** सर्वोदय आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टि से 'ग्रामीण गण राज्यों' (village republics) का निर्माण करना चाहता है। क्षेत्रीय आधार पर आवश्यकताओं की वस्तुओं का उत्पादन हो। गाँव–गाँव और क्षेत्रों में प्रेम, सेवा और सहयोग के आधार पर पारस्परिक आदान–प्रदान हो सकता है, किन्तु मौलिक आवश्यकताओं के बारे में प्रत्येक गाँव और क्षेत्र स्वावलम्बी होगी। कहने का तात्पर्य है कि परावलम्बन, शोषण, अन्याय व आलस्य को मिटाकर क्षेत्रीय स्वालम्बन का विकास सर्वोदय का लक्ष्य है।

6) सभ्य व सुसंस्कृत समाज (Civilized and Cultured Society)- सर्वोदय एक सभ्य व सुसंस्कृत समाज की स्थापना का समर्थक है। जहाँ विज्ञान व अहिंसा का समन्वय, शारीरिक श्रम की महत्ता, राजनीतिक साम्य, नैतिक मूल्य, जनशक्ति का उपयोग, एक नवीन शासनमुक्त व वर्ग विहिन सामाजिक रचना, सत्यता के द्वारा सम्पूर्ण विश्व में शान्ति और संतोष का वातावरण उत्पन्न होने में सहायता मिलेगी। गाँधी जी का सर्वोदय एक ऐसे ही आदर्श समाज की स्थापना पर आधारित है।

उपरोक्त उद्देश्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि गाँधी जिस सर्वोदय की बात करते थे। उसमें व्यक्ति की अत्याचारों से मुक्ति, दलबन्दी की समाप्ति, समानता, सत्ता की समाप्ति, जनहित का प्रोत्साहन, निरंकुशता का अन्त, सत्यता, प्रेम, अहिंसा, सहयोग, सद्भावना, वर्गविहीनता के उद्देश्यों को साथ लेकर विश्व में शान्ति और बन्धुत्व की भावना को निहित है और यही सर्वोदय के मौलिक उद्देश्य एवं लय हैं। उपनिषद् में वर्णित शब्दों के अनुसार– सर्वोदय ऐसे वर्ग विहीन, जातिविहीन एवं शोषण विहीन समाज की स्थापना करना चाहता है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति एवं समूह को अपने सर्वांगीण विकास का साधन और अवसर मिलेंगे। यह क्रान्ति सत्य व अहिंसा द्वारा ही संभव है। सर्वोदय इसी का प्रतिपादन करता है।

इस प्रकार गाँधी जी ने सर्वोदय द्वारा डार्विन के 'अस्तित्व के लिए संघर्ष' (struggle for existence) तथा बेन्थम के 'अधिकतम व्यक्तियों के अधिकतम सिद्धान्त को चुनौती दी। उन्होंने सर्वोदय द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि समाज संघर्ष पर नहीं सहयोग व प्रेम पर जीवित है जो सभी व्यक्तियों के सम्पूर्ण कल्याण की भावना पर आधारित है।

8.17 सर्वोदय की कार्यपद्धतियाँ (Technique of Sarvodaya)

गाँधी जी ने सर्वोदय की कुछ पद्धतियों को स्पष्ट किया है–

1–अहिंसक क्रान्ति (Non Violence Revolution)– गाँधी जी का मानना था कि सामाजिक परिवर्तन बल के प्रयोग से नहीं, बल्कि हृदय परिवर्तन की प्रक्रिया द्वारा मानव समा में समानता लाने के लिए विचारों की संकीर्णता को समाप्त कर लाया जा सकता है। अतः गाँधी जी की इस मौलिक प्रतीत पर ही सर्वोदय विश्वास करता है। जिसका आधार अहिंसक क्रान्ति है।

2– वैचारिक उदारता (Brod Mindedness)- विचारों में शुद्धता लाना आवश्यक है। सत्य–असत्य, उचित–अनुचित, न्याय–अन्याय का मूल्यांकन कर सह अस्तित्व की भावना को विकसित किया जा सकता है। विरोध एवं संघर्ष को समाप्त करने के लिए विचारों में उदारता उत्पन्न करना सर्वोदय के लक्ष्य सिद्धि के लिए आवश्यक साधन है।

3–सत्याग्रह (Satyagarh)- सत्यनिष्ठा के साथ बड़े–छोटे, अमीर–गरीब सभी को सहजीवन अपनाने का आग्रह व प्रेरणा ही सत्याग्रह है। सत्य के लिए कुछ भी कर सकने का जज्बा, निर्भीकता, त्याग आदि से विरोधी लोगों के जीवन को परिवर्तित कर देना ही सर्वोदय की उत्तम कार्यविधि है।

4– दान (Dan)- सर्वोदय की विचारधारा इस बात पर विश्वास करती है कि जो व्यक्ति आर्थिक रूप से सम्पन्न है। वह स्वयं ही अपनी इच्छा से उन लोगों की सहायता करे जो अक्षम है या जिनके पास मूलभूत आवश्यकताओं का भी अभाव है। भूमिदान, सम्पत्तिदान, जीवनदान, सर्वोदय समाज की स्थापना की प्रमुख कार्य प्रणालियाँ हैं। जिन्हें जबरदस्ती नहीं, बल्कि स्वेच्छा व विश्वास से प्राप्त किया जाए।

अतः गाँधी जी समाज ने समानता के लिए अहिंसक क्रान्ति, विश्वास, विचारों में उदारता, दान, सहयोग आदि को सर्वोदय की कार्यप्रणाली में शामिल किया है।

8.18 संरक्षकता का सिद्धान्त (Theory of Trusleeship)

प्रत्येक समाज चाहे वे आदिम हो या आधुनिक, सभ्य हो या असभ्य में एक निश्चित सामाजिक संस्तरण विद्यमान रहा है, जिन्हें जाति, वर्ण, वर्ग आदि नामों से पुकारा जाता है। इस संस्तरण का आधार सामाजिक, धार्मिक आर्थिक, राजनैतिक रूप में भिन्न–भिन्न समाजों में पाया जाता रहा है। वर्तमान पूंजीवादी युग में अर्थव्यवस्था की आधिक महत्ता है जिसके आधार पर समाज धनी–निर्धन दो वर्गों में विभाजित है। जिसका मुख्य कारण आर्थिक भिन्नता है जो अपनी चरम सीमा पर विद्यमान है। जहाँ आर्थिक रूप से सम्पन्न धनी, पूँजीवादी वर्ग के पास आर्थिक साधनों की सम्पन्नता होती है। शेष समाज (निर्धन वर्ग) आर्थिक कठिनाईयों का सामना करते दिखायी पड़ता है। इससे समाज में आर्थिक असमानता और शोषण का जन्म होता है। गाँधी जी के अनुसार–''व्यक्ति में अपने पास उतनी ही सम्पत्ति रखनी चाहिए, जिसके द्वारा वे अपनी उचित आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके। आवश्यकता से अधिक धन के संग्रह से शोषणकारी प्रवृत्ति विकसित होती है और असमानता व विषमता फैलने लगती है।

वर्तमान में धनी–निर्धन के बीच व्याप्त असमानता को दूर करने के लिए गाँधी जी ने शोषणहीन और विषमताहीन समाज की स्थापना के आधार पर आर्थिक असमानताओं को दूर करने के लिए संरक्षकता के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। गाँधी जी मानते थे कि साम्यवादी उपाय अर्थात् कानून व शक्ति की सहायता से और स्वेच्छा से सम्पत्ति को समाज की समझते हुए व्यक्ति (धनी) स्वयं उसका संरक्षक बन जाए। इस प्रकार आर्थिक असमानता को दूर किया जा सकता है। गाँधी जी साम्यवादी उस व्यवस्था के विरोधी थे, जिसमें धनियों के धन को जबरदस्ती छीनकर सर्वहित के उपयोग में लाने की बात थी, क्योंकि यह रास्ता हिंसात्मक है, बल्कि स्वेच्छा से धन को सर्वहिताय के लिए प्रयोग करने में अहिंसात्मकता के आधार पर समानता विकसित करने के पक्षधर थे। उन्होंने लिखा है–''न पूंजीवाद को, हम पूंजीपति को निमन्त्रण देते हैं कि वे अपने को उन लोगों का संरक्षक माने जिनके परिश्रम पर वह अपनी पूँजी को बनाने, कायम रखने तथा उसको बढाने के लिए आश्रित हैं।''

8.19 संरक्षकता का अर्थ (Meaning of Trustsheep)-

संरक्षकता का तात्पर्य किसी वस्तु को किसी के संरक्षण में रख देना है। गाँधीवादी अर्थशास्त्र में संरक्षकता के सिद्धान्त में समानता का भाव निहित है। गाँधी जी की मान्यता है कि वकील हो या मजदूर सभी को बराबर धन मिलना चाहिए। यदि समाज का प्रत्येक व्यक्ति समाज कल्याण के लिए धन कमाए तो वर्ग संघर्ष की स्थिति उत्पन्न नहीं होगी, व्यक्ति को चाहिए कि कमाया हुआ धन समाज की आवश्यकतानुसार

समर्पित कर देना है, अर्थात् संरक्षकता के सिद्धान्त की मूलभूत भावना यह है कि पूँजीपतियों के पास जो धन है वह समाज की धरोहर है, जिसका उपयोग समाज कल्याण में निहित है।

8.20 संरक्षकता के तत्व (Elements of Trustaship)

संरक्षकता का अर्थ इस तथ्य को स्पष्ट करता है कि किसी द्रव्य या रूपये को संरक्षण में रखना अर्थात् पूंजी को संरक्षण में रखना है, जिसका उपयोग समाज के कल्याण के लिए किया जा सके। इसके बाद संरक्षकता के तत्वों की चर्चा की जायेगी, जो गाँधी जी के अनुसार निम्नवत् है–

1–उचित आवश्यकताओं की पूर्ति– संरक्षकता का सिद्धान्त इस बात पर विश्वास करता है कि मानव को अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए ही धन खर्च करने न कि भौतिकवादी आवश्यकताओं के पीछे भागे। गाँधी जी ने लिखा है,'' प्रत्येक व्यक्ति उन सामान्य नागरिकों की तरह जीवन यापन करें। जिस प्रकार समाज में रहने वाले व्यक्ति करते हैं और ये तभी संभव होगा जब व्यक्ति की आवश्यकताएं सीमित होगी।''

2– आवश्यकतानुसार पूंजी– अपनी आवश्यकता के पश्चात् बचे धन के उपयोग के लिए सुरक्षित रखने के स्थान पर उसका संरक्षक बन कर रहना संरक्षकता का दूसरा तत्व है। हरिजन सेवक (3–6–1939) में गाँधी जी ने लिखा है–''मान लीजिए विरासत या उद्योग व्यवसाय के द्वारा मुझे काफी बड़ी सम्पत्ति मिल गयी, तब मुझे यह जानना चाहिए कि यह सारी सम्पत्ति मेरी नहीं है, बल्कि उसमें मेरा उतना ही अधिकार है जिस तरह लाखों व्यक्ति गुजर करते हैं। मेरी शेष सम्पत्ति पर राष्ट्र का अधिकार है उसी के हित के लिए उसका उपयोग आवश्यक है।'' ऐसे आत्मविश्वास से समाज में समानता व सही समाजवाद की स्थापना संभव हो पायेगी।

3– नैतिकता पर आधारित– पूर्व अध्ययनों से स्पष्ट है कि गाँधी जी का दर्शन नैतिकता व धर्म पर आधारित है। यही कारण है कि संरक्षकता के सिद्धान्त को भी उन्होंने नैतिक तत्वों के आधार पर प्रतिपादित किया है। गाँधी जी ने हमेशा अधिकार की अपेक्षा कर्तव्य को सर्वाधिक महत्व दिया है। जिसके लिए व्यक्ति को जाग्रत रहने के वे पक्षधर थे, क्योंकि कर्तव्यों के प्रति जागरूकता स्वयं व्यक्ति में नैतिकता को विकसित कर देती है। गाँधी जी मानते थे कि सम्पूर्ण गीता का सिद्धान्त कर्म व त्याग पर आधारित है। अपने–अपने कर्तव्यों के प्रति जागरूकता ही समाज में संरक्षकता के सिद्धान्त को विकसित करने में सहायक होती है।

4– सत्याग्रह व असहयोग पर आधारित– सत्याग्रह और असहयोग दोनों संरक्षकता के सिद्धान्त के महत्वपूर्ण तत्व हैं जिनकी विस्तार विवेचना पूर्व में की गयी है। यदि पूंजीपति अपनी अतिरिक्त पूंजी को सामाजिक हित में न दे तो उसे प्राप्त करने के लिए गाँधी जी के अनुसार अहिंसक असहयोग और सविनय कानून भंग सिद्धांत के आधार पर बाध्य कर प्राप्त करना होगा। गांधी जी ने लिखा है–''लोग

यदि स्वेच्क्षा से संरक्षकों की भांति व्यवहार करने लगे तो मुझे सचमुच खुशी होगी, लेकिन यदि वे ऐसा न करे तो हमें राज्य के द्वारा हिंसा का आश्रय लेकर उनकी सम्पत्ति ले लेनी पड़ेगी।'' ऐसा करने से हिंसक क्रांति उत्पन्न होगी जिसके गाँधी जी विरोधी थे। अतः गाँधी जी ने संरक्षकता के सिद्धान्त के आधार पर संरक्षित धन का उपयोग अहिंसा एवं नैतिकता के आधार पर लोक हित को समर्पित करने की बात कही है।

5– अहिंसक क्रान्ति– परिवर्तन प्रकृति का अनिवार्य नियम है। इसे गति देने के लिए गाँधी जी अहिंसात्मक क्रान्ति पर बल देते हैं और एक व्यवस्थित सामाजिक परिवर्तन लोने के पक्षधर दिखायी देते हैं। उनका मानना था कि अहिंसक क्रांति में एक–दूसरे के प्रति प्रेम, सहयोग की भावना निहित होती है जो हिंसक अर्थात् खून–खराबे की क्रान्ति को नकारती है। गाँधी जी के अनुसार–'' स्वयं पूंजी बुराई नहीं है लेकिन इसका दुरूपयोग करना बुराई है।''

उपरोक्त तत्वों की चर्चा के पश्चात् गाँधी जी द्वारा प्रतिपादित संरक्षकता के सिद्धान्त को संक्षिप्त रूप में समझेंगे–

- ✓ गाँधी के संरक्षकता का सिद्वान्त सभी की आवश्यकताओं की समानपूर्ति पर आधारित है।
- ✓ पूंजीपतियों द्वारा संरक्षित अतिरिक्त धन समाज कल्याण के हित में लगाने को पक्षधर हैं।
- ✓ अहिंसात्मकता, नैतिकता, सत्याग्रह आदि के आधार पर संरक्षकता की सार्थकता को स्वीकार करना।
- ✓ जमींदार, राजा, व्यवसायी, उद्योगपति सभी को लोभ व परिग्रह की भावना का त्याग कर आत्मविश्वास में वृद्धि करना।
- ✓ इसका प्रमुख उद्देश्य अतिरिक्त सम्पत्ति को राज्य की भलाई को समर्पित करना है जिससे व्यक्ति, समाज, देश, राष्ट्र सभी का विकास हो सके।

गाँधी जी के संरक्षकता के सिद्धान्त को कुछ लोग केवल धनी व पूंजीपति वर्ग के लिए ही मानते हैं जो कि गलत है। यह समाज के सभी व्यक्तियों व सम्पूर्ण समाज के लिए समान रूप से लागू होता है। पूंजीपति–श्रमिक, शिल्पी, कलाकार, वैज्ञानिक इत्यादि भी समाज के हित में अपने ज्ञान का उपयोग करके समाज के सहायक बन सकते हैं। इसका तात्पर्य है कि इन लोगों के पास जो भी ज्ञान है। वे उन्ही तक सीमित न होकर सम्पूर्ण समाज के लिए उपयोग में लाया जायेगा।

8.21 संरक्षकता के सिद्धान्त का महत्व

गाँधी जी के संरक्षकता का सिद्धांत व्यक्ति, समाज, देश, राष्ट्र सभी के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है। कैसे? इसकी चर्चा का अध्ययन निम्न बिन्दुओं के माध्यम से किया जायेगा–

1– संरक्षकता का सिद्धांत मानव–मानव के बीच प्रेम, अहिंसा, सहानुभूति, सहयोग और भ्रातृत्व जैसे आदर्श गुणों को विकसित करने का प्रयास किया जाता है–

1. प्रेम और सहयोग से सामाजिक एकता व संगठन में सहायता मिलती है।
2. आर्थिक असमानता की समाप्ति के साथ सभी को समान अवसर के लिए संरक्षकता का सिद्धान्त महत्वपूर्ण है।
3. वर्ग संघर्ष की समाप्ति के लिए भी इस सिद्धान्त की सहायता ली जा सकती है।
4. संरक्षकता का सिद्धान्त सम्पत्ति तथा वस्तुओं के व्यक्तिगत स्वामित्व की अवहेलना करता है।
5. यह एक नैतिक सिद्धान्त है जिसका प्रसार सामाजिक कल्याणार्थ होता है, जो व्यक्तित्व विकास के लिए आवश्यक है।
6. सम्पत्ति का प्रयोग स्वभावतः सामाजिक होता है (capital is social in its use) संरक्षकता का सिद्धान्त पूँजी को सामाजिक उपयोग की वस्तु बनाने में योगदान प्रदान करता है।
7. संरक्षकता का सिद्धान्त अहिंसक क्रान्ति का पक्षधर है।

उपरोक्त बिन्दु स्पष्ट करते हैं कि संरक्षकता का सिद्धान्त व्यक्ति, समाज, देश, राष्ट्र सभी के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

8.22 संरक्षकता का आलोचनात्मक मूल्यांकन (Critical Ecaluation of Trusteeship)

उपरोक्त चर्चा के पश्चात् गाँधी जी द्वारा प्रतिपादित संरक्षकता के सिद्धान्त की आलोचना का अध्ययन किया जायेगा, जो निम्न बिन्दुओं पर आधारित है–

- विद्वानों का मानना है कि पूंजीवादियों को संरक्षक बना देने मात्र से परिवर्तन नहीं हो सकता।
- आज तक का अनुभव बतलाता है कि कोई भी पूंजीपति, व्यवसायी सम्पत्ति के व्यक्गित अधिकार को छोड़कर अपनी सम्पत्ति का इच्छापूर्वक उपयेाग दूसरों के लिए नहीं करता है। इस प्रकार का सिद्धान्त मात्र कल्पना है।
- इस सिद्धान्त के द्वारा समाजवाद और पूँजीवाद दोनों का विकल्प बतलाया गया है, किन्तु व्यवहारिक रूप से इसमें पूंजीवाद और समाजवाद दोनों के दोष शेष दिखायी पड़ते हैं। पूंजीपतियों का अबोध संचय और शोषण कम होने की संभावनाएँ इसमें नजर नहीं आता है।
- यदि इस सिद्धान्त का मूल्यांकन करें तो हम पाते हैं कि जहाँ एक ओर गाँधीवादी के औद्योगिक संस्थानों में इस सिद्धान्त के आधार पर कुछ कार्य किये जा रहे हैं। वहीं मजदूरों की स्थिति अन्य पूंजीवादी संस्थानों में कार्य करने वाले मजदूरों से भी बहुत खराब है। संरक्षक कहे जाने वाले निरंकुश अधिकारी पूंजीपतियों से अधिक शोषण कर रहे हैं।

अतः स्पष्ट है कि वर्तमान समाज में जहाँ अमीर और अमीर तथा गरीब और गरीब होता जा रहा है, वहाँ समानता की कल्पना निरर्थक है। सहयोग, प्रेम, अहिंसा के स्थान पर हिंसा, वर्ग संघर्ष, असमानता, व्यक्तिवादिता आज सर्वत्र विद्यमान है।

संरक्षकता के सिद्धान्त को जानने के पश्चात आगे गाँधी जी द्वारा प्रतिपादित सामाजिक विचारों की संक्षिप्त चर्चा की जायेगी।

8.23 गाँधी जी के सामाजिक विचार (social views of Gandhi ji)

पूर्व में चर्चा की गयी है कि समाज सुधार के कार्यों में निर्णायक भूमिका का निर्वाह् करने के कारण गाँधी जी को राजनैतिक, आर्थिक, सुधारकों के साथ सामाजिक सुधारक के रूप में भी जाना जाता है। यही कारण है कि उनकी गणना भारत के महान सुधारकों–नानक, कबीर, राजा राममोहन राय, दयानन्द सरस्वती आदि से की जाती है। एक नवीन सामाजिक व्यवस्था की स्थापना के लिए उन्होंने न केवल सिद्धान्तों को प्रतिपादित किया, बल्कि उन्हें व्यवहारिकता देने के लिए निरन्तर प्रयत्न किये। उनकी मान्यता थी कि समाज सुधार आन्दोलन के माध्यम से ही भारत स्वतंत्रता के लक्ष्य के निकट पहुँचकर उसको प्राप्त करने में सफल होगा। भारतीय समाज के सुधार हेतु विकसित समाज सुधार कार्यक्रमों की चर्चा निम्नवत् है–

1 वर्णव्यवस्था (Varna Vyavashtha)– भारतीय हिन्दू जन्म पर आधारिता ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र चार वर्णों पर आधारित है। सामाजिक व्यवस्था के संचालन के लिए चारों वर्णों को अलग–अलग कार्य सोचे गये, लेकिन वर्तमान समय में वर्ण व्यवस्था का अर्थ मूल रूप से परिवर्तित हो गया। जिसमें सामुदायिक भावना संकुचित हुई। राष्ट्रीय एकता में बाधा उत्पन्न होने के साथ–साथ, अस्पृश्यता और शोषणकारी नीति में वृद्धि हुई और एक स्वस्थ प्रजातंत्र को स्थापित करने में कठिनाई आने लगे। गाँधी जी ऐसी वर्ण व्यवस्था का विरोध कर समान रूप से पैदा होने के कारण सबको समान अवसर मिलने के पक्षपाती थे। गाँधी जी के अनुसार–''वर्ण का अर्थ है। मनुष्य के पेशे के चुनाव का पूर्ण निर्धारण जिसमें एक व्यक्ति अपनी रोटी कमाने के लिए अपने पूर्वजों के पेशे को अपनाएगा यह वंशानुक्रमण पर आधारित एक अटल नियम है। जो न्यूटन के मध्याकर्षण शक्ति के नियम (law of gravitation) की भाँति सदैव क्रियाशील व विद्यमान है।''

गाँधी जी का मानना था कि वर्तमान वर्ण व्यवस्था ने जात–पात, खान–पान, छुआछूत, ऊँच–नीच जैसी संकीर्णताओं में जकड़ दिया है। जो समाज सुधार व विकास में बाधक है। गाँधी ने वर्ण व्यवस्था को निम्न रूप में देखकर एक सुसंगठित समाज की स्थापना पर बल दिया–

- वर्ण व्यवस्था कार्यों के आधार पर विभाजित एक सामाजिक संगठन है।
- प्रत्येक व्यक्ति को जीवन निर्वाह् के लिए अपने पैतृक व्यवसाय को अपनाना चाहिए, क्योंकि यह वंशानुगत नियम से संबंधित है।

- वर्ण व्यवस्था एक स्वभाविक व क्रियाशील व्यवस्था है। जिसका उद्देश्य उचित व्यक्ति को उचित पेशे में लगाए रखना है, क्योंकि सभी व्यक्ति शारीरिक तथा मानसिक दृष्टि से समान नहीं होते। उन्हें काम सौंपा जाए। यही उचित है।
- सामाजिक कार्य समान हैं और इसलिए कार्य, चाहे वह किसी भी प्रकार का क्यों न हो के आधार पर ऊँच–नीच की भावना अनुचित व अवैज्ञानिक है। मनुष्य का कार्य तभी बुरा है जब वह समाज विरोधी व समाज के लिए हानिकारक हैं। जब व्यक्ति अपने कार्य को मेहनत से, ईमानदारी से व समाज सेवा की भावना को मन में रखकर करता है, तब वह कभी छोटा–बड़ा या ऊँचा–नीचा नहीं हो सकता। सामाजिक व्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति के कार्य की अपनी महत्ता होते हैं चाहे वे ऑफिसर हो, या कर्मचारी और गाँधी जी के अनुसार वर्ण व्यवस्था का यही आधार वैज्ञानिक व वास्तविक है।
- वर्ण व्यवस्था के कुछ निश्चित नियम होते हैं जिसमें प्रतिस्पर्द्धा का कोई स्थान नहीं होता। सीमाओं को मानते हुए भी वर्ण का नियम छोटे–बड़े का भेदभाव नहीं करता। एक ओर तो यह नियम प्रत्येक को उसके फल का श्रम देने का आश्वासन देता है, दूसरी ओर वह अपने पड़ोसी को दबाने या उसके कार्यक्षेत्र में हस्तक्षेप करने से रोकता है। यह नियम अब पतित व बदनाम किया गया है। गाँधी जी कहते हैं–''मेरा दृढ़ विश्वास है कि एक आदर्श सामाजिक व्यवस्था का विकास तभी होगा जब कि इस नियम के अन्तर्निहित तत्वों को पूर्णतया समझ लिया जाए और उन्हें क्रियात्मक रूप दिया जाए।''
- गाँधी जी मानते हैं कि वर्णाश्रम धर्म के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को अपने पैतृक पेशे को अपनाना चाहिए। परन्तु ऐसा करते हुए उसे इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वह किसी मौलिक, नैतिक नियम को तो नहीं तोड़ रहा है। पैतृक व्यवसाय हमेशा समाजपयोगी होना चाहिए।
- गाँधी जी के अनुसार वर्ण व्यवस्था का जाति प्रथा से कोई संबंध न ही है। जहाँ जाति प्रधान एक सामाजिक कलंक है, वहीं वर्ण व्यवस्था हमारे कर्तव्यों को हमें बतलाता है। जो उन पेशों से संबंधित है जिसमें अच्छे–बुरे की भावना के स्थान पर समाज कल्याण की भावना निहित होती है।
- गाँधी जी के अनुसार–वर्ण जनम द्वारा निर्धारित है उसे कायम रखने के लिए संबंधित कर्तव्यों का पालन करना आवश्यक है।

उपरोक्त वर्ण व्यवस्था संबंधी विचारधारा में गाँधी जी के विचार सूत्र से समानता रखते हैं जो पेशों या उद्यमों में समानता, ऊँच–नीच का स्थान अनुपयोगी, सभी के व्यवसायों को सम्मान, प्रतिस्पर्द्धा की समाप्ति जैसे गुणों का समावेश है।

2– अस्पृश्यता (untouchability)-जाति व्यवस्था में पायी जाने वाली असमानता अपनी चरम सीमा को पूर्णरूपेण पृथक जातियों के विकास में प्रदर्शित करती है, जिन्हें अस्पृश्य जातियाँ कहा जाता है। अस्पृश्य का तात्पर्य स्पर्श न करने योग्य अर्थात अपवित्र जातियों से माना जाता था जो वर्ण व्यवस्था में सामाजिक व सांस्कृतिक अशुद्धि से परिपूर्ण तथा उनके व्यवसाय या धन्धे नियामक श्रेणी (Normative Hierarchy) निम्नतम माने जाते थे। गाँधी जी ने हमेशा इसका विरोध किया। उनका मानना था– 'हम सब समान पैदा हुए हैं और इसलिए हम सबको समान अवसर पाने का अधिकार है।' वर्तमान वर्ण व्यवस्था के विकृत स्वरूप ने समाज में छूआछुत का काला रंग पोतकर उसे कुरूप कर दिया है। यह एक समाज विरोधी अवधारणा है। गाँधी जी हमेशा इस बात के विरोधी रहे कि जन्म के आधार पर किसी को अस्पृश्य, अछूत या दलित कहा जाए। यह व्यवस्था केवल उच्चता के खोटे अहंकार द्वारा उत्पन्न हुई है, जो सामाजिक अन्याय, शोषण व राष्ट्रीय प्रगति का अवरोधक प्रतीत है।

गाँधी जी द्वारा समाज में समान व्यवस्था लागू करने के लिए वर्ण व्यवस्था के चौथे वर्ण के लिए जो कार्य व विचार प्रस्तुत किये गये उनकी चर्चा निम्नलिखित बिन्दुओं से की जा रही है, जिसे समझने में विद्यार्थियों को सुविधा होगी–

- गाँधी जी ने अस्पृश्यों को आदर सूचक 'हरिजन' नाम दिया और स्वयं को भी हरिजन घोषित किया। स्वयं उन्हीं के समान जीवन जीते हुए उन्होंने आश्रमवासियों को भी इस प्रकार की जीवन शैली को अपनाने के लिए प्रेरित किया। अर्थात् वे उन सभी कार्यों को करते थे, जो हरिजनों द्वारा किये जाते थे।
- अस्पृश्यता को वे समाज के लिए खतरा व धर्म परिवर्तन का मुख्य कारण मानते थे। इसीलिए उन्होंने हिन्दुओं की रक्षा के लिए इस अमानवीय व्यवस्था को असंवैधानिक घोषित कर दिया। फलस्वरूप आज अस्पश्यता को उसके समापन की ओर देखा जा सकता है। उन्होंने लिखा है–''अस्पृश्यता तो कागज के नकली फूलों की तरह है जो मनुष्य की बनायी एक कृत्रिम चीज

है.....अस्पृश्यता को देवता ने नहीं शैतान ने बनाया है जो न पूर्व कर्मों का फल है और न ईश्वर कृत बल्कि यह अछूतापन मनुष्यकृत व सवर्ण हिन्दूकृत है।''

- गाँधी जी अस्पृश्यता को पाप मानते थे। उनका मानना था कि हिन्दू धर्म में ईश्वर को समस्त पाप नाशक, 'दीन बंधु', पतित पावन नाम से पुकारा जाता है। अतः हिन्दू धर्म में किसी को पतित, अछूत या अस्पृश्य कहना ही स्वयं में पाप है। इसलिए गाँधी जी ने बार–बार अस्पृश्यता की भावना को पाप कहा व माना।
- गाँधी जी मानते थे कि इस प्रकार की भावना समाज, देश व प्रजातंत्र विरोधी हैं। इसने मानव समाज के उतने अंश को नीचे दबा दिया जो बुद्धि, बल, विद्या में हमारे समान हो सकता है। और जीवन के अनेक विषयों में देश की उत्तम सेवा कर सकता है।
- 'हम उच्च हैं, तुम नीच' इस प्रकार की भावना या विचार ही सबसे नीच है। गाँधी जी मानते थे कि हरिजनों का ऋण सवर्णों को स्वीकार कर लेना चाहिए।
- गाँधी जी समाज में सभी के पेशे को समान व महत्वपूर्ण मानते थे तथा पेशे के आधार पर अस्पृश्य या अछूत का विचार दोषपूर्ण है।
- गाँधी जी का कहना था कि आज का विद्यार्थी जो आधुनिक शिक्षा ले रहा है और उसके मन में अस्पृश्यता का विचार हो तो उसके लिए अशिक्षित रहना ही उचित होगा, क्योंकि वह शिक्षित कहलाने योग्य ही नहीं होगा। जब तक हिन्दू जानबूझकर अपने धर्म को अंग मानेंगे, अपने ही भाईयों में से कुछ को छूना पाप समझेंगे, तब तक स्वराज्य की प्राप्ति असंभव है।

उपरोक्त बातों से स्पष्ट होता है कि गांधी जी अस्पृश्यता के विरोधी व समानताप के समर्थक थे। वे मानते थे कि यदि इस भावना को सदा के लिए व्यक्ति अपने हृदय से निकाल देगा तो सामाजिक–राष्ट्रीय समस्याओं का समाधान स्वयं हो जायेगा। ऐसा करने से सामाजिक संगठन, आर्थिक समृद्धि, राष्ट्रीय एकता, अति सरल हो जायेगी। राष्ट्र को नवीन शक्तियाँ प्राप्त होंगी और वास्तविक अर्थ में स्वराज्य की स्थापना संभव होगी। अतः अस्पृश्यता के कलंक से भारत को मुक्ति दिलाने में महात्मा गाँधी का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

8.24 साम्प्रदायिक एकता (Communal Unity)

भारत विभिन्न धर्मावलम्बियों का देश है। इसमें अलग–अलग सम्प्रदाय व जातियों के लोग निवास करते हैं, जिसमें हिन्दू बाहुलता के साथ अन्य अहिन्दू भी शामिल हैं ऐसे विविधतापूर्ण देश में

राष्ट्रीय एकता एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। जिसकी निर्भरता काफी हद तक साम्प्रदायिक एकता पर निर्भर है। साम्प्रदायिक एकता से संबंधित गाँधी जी के विचारों की चर्चा निम्नवत् करेंगे–

1. गाँधी जी ने आजीवन देश में साम्प्रदायिक एकता मुख्य रूप से हिन्दू मुस्लिम एकता स्थापित करने का प्रयत्न किया।
2. वे हिन्दू–मुस्लिम दोनों को राष्ट्रीयता का अंग मानते थे, यही कारण था कि उन्होंने मोहम्मद अली जिन्ना द्वारा प्रतिपादित 'हिराष्ट्र सिद्धान्त' को अस्वीकार कर दिया था। यद्यपि हिन्दुस्तान पाकिस्तान के विभाजन को वे रोक नहीं पाये, लेकिन साम्प्रदायिक एकता को सुदृढ़ करने में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका को नकारा नहीं जा सकता है।
3. गाँधी जी धर्मनिरपेक्ष चरित्र धारण कर सर्वधर्म समभाव की नीति का अनुसरण करते थे।
4. गाँधी जी की साम्प्रदायिक एकता प्रेम, अहिंसा, स्नेह, सहयोग, समानता, धर्मनिरपेक्षीकरण की पक्षधर है, जो समाज व देश के विकास व प्रगति में सहायक है।

8.25 नारी का स्थान (position of women)

गाँधी जी द्वारा प्रतिपादित व्यवस्था में स्त्रियों का सम्मानित व महत्वपूर्ण स्थान है। सर्वोदय का मौलिक आधार अहिंसा और स्त्री अहिंसा के आदर्श का साकार रूप है। गाँजी लिखते हैं–''यदि अहिंसा मानव जीवन का नियम है तो हमारा भविष्य स्त्रियों पर निर्भर है। ''गाँधी जी स्त्री–पुरुष के समान मानते थे। स्त्री को दुर्बल व पुरुष को सशक्तिशाली कहने वाले वे घोर विरोधी थे। नैतिक दृष्टि से वे महिलाओं को पुरुषों से अधिक शक्तिशाली मानते है। विद्यार्थियों की सुविधा हेतु गाँधी जी की समाज व्यवस्था में नारी के महत्वपूर्ण स्थान की चर्चा निम्न बिन्दुओं के आधार पर की जा रही है–

1. गाँधी जी ने भारतीय समाज की महिलाओं की मुक्ति के लिए संघर्ष किया है। भारतीय नारी आन्दोलन के पक्षपाती गाँधी जी स्त्री–पुरुष को समान महत्व व सम्मान देने के पक्षपाती थे। यही कारण था कि उनकी आश्रम व्यवसी में स्त्रियों की भी पुरुषों के समान अधिकार दिए गए थे।
2. समानता के पक्षपाती होने के प्श्चात भी गाँधी जी ने स्त्री–पुरूष को कर्तव्यों के आधार पर पृथक बतलाया है। उनका मानना था, माता के कर्तव्यों को निभाने में महिलाओं में ऐसे नैतिक गुण विद्यमान होने आवश्यक हैं जो पुरूष के लिए आवश्यक नहीं हैं उसे घर की स्वामिनी के रूप में घर

के सदस्यों की देखभाल उचित रूप से करनी आवश्यक है, क्योंकि इसके बिना मानव जाति का अस्तित्व खतरे में है।

3. गांधी जी मानते थे कि अपनी सहन शक्ति, प्रेम, ममता के कारण महिलाएँ अहिंसा का स्रोत बन जाती हैं। विभिन्न कष्टों को सहन करना अपनी नियति में इसके द्वारा शामिल किया जाता है। अप्रत्यक्ष रूप से यह मानव की निर्माता और उसका नेतृत्व करने अभूतपूर्व शक्ति है। उसके प्रति किसी प्रकार की हिंसा गलत व दुर्भाग्यपूर्ण है।
4. महिलाओ की स्थिति को सुदृढ़ व उसे समानता का अधिकार दिलाने के लिए ही गाँधी जी ने अनय समाज सुधारकों के साथ सहशिक्षा में वृद्धि, पर्दा प्रथा, बाल विवाह का अन्त किया तथा छोटी उम्र में विधवा स्त्रियों का पुनर्विवाह कर उन्हें समाज में जीवन जीने का अधिकार दिलाया व समाज की मुख्य धारा से जोड़ने का अथक व सराहनीय प्रयास किया।

उक्त चर्चा से स्पष्ट होता है कि गाँधी जी स्त्रियों को समानता का अधिकार दिलाने, उनके साथ किसी भी प्रकार की हिंसा न होने के समर्थक रहे तथा इसे धरातल में लोने के लिए उन्होंने अनेक प्रयत्न किये। जिनमें सहशिक्षा को बढ़ावा देना, बाल विवाह, पर्दा प्रथा पर रोक एवं विधवाओं का पुनर्विवाह करने के लिए आन्दोलित रहे, क्योंकि उनकी दृष्टि में ये कुप्रथाएं समाज के लिए एक कलंक है। गाँधी जी के इस प्रगतिशली दृष्टिकोण के कारण ही स्वतंत्र भारत के संविधान में स्त्रियों को पुरुषों के समकक्ष समझकर वे सारे अधिकार प्रदान किये गये हैं, जो पुरुषों को प्राप्त हैं इसलिए आज सम्पूर्ण समाज विशेषकर स्त्री समाज उनका ऋणी है। इस प्रकार गाँधी जी ने महिलाओं को समाज में सम्मानपूर्ण स्थान दिलाने के लिए एक उन्नायक के रूप में भी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह् किया।

8.26 शिक्षा सुधार (Reform of Education)

शिक्षा सामाजिक परिवर्तन का एक सबल साधन है। गाँधी जी की सामाजिक व्यवस्था शिक्षा योजना से घनिष्ठ रूप से संबंधित थी। अतः उन्होंने अंग्रेजों द्वारा प्रतिपादित शिक्षा पद्धति के स्थान पर 'बुनियादी शिक्षा पद्धति' के नाम से एक नयी शिक्षा प्रणाली को स्थापित किया। केवल अक्षर ज्ञान व अंग्रेजी भाषा के माध्यम से शिक्षा प्राप्त करना वास्तविक शिक्षा नहीं हो सकती है। उनके अनुसार समाज की स्थापना के लिए बेसिक अथवा वर्धा शिक्षा व्यवस्था (Bsic or wardha system of

Education) आवश्यक है। क्या विचार थे गाँधी जी के शिक्षा सुधार के संबंध में निम्न बिन्दुओं के आधार पर चर्चा करेंगे–

- समाज अथवा किताबी शिक्षा की अपेक्षा वे बेसिक व वर्धा शिक्षा पद्वति को प्रमुखता देते थे। जिसमें 7 वर्ष से 14 वर्ष की आयु तक के बच्चों को अहिंसक, प्रजातांत्रिक तथा सामाजिक व्यवस्था की अनुकूलता के अनुरूप शिक्षा देने की रूपरेखा तैयार की गयी थी।
- अंग्रेजी शिक्षा से अध्ययनरत् लोगों ने देश को गुलाम बनाया है। अतः गाँधी जी ने दस्तकारी व धार्मिक शिक्षा को महत्वपूर्ण माना है। शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को स्वावलम्बी व आत्मनिर्भर बनाना है। इसके लिए दस्तकारी व व्यवसाय संबंधी शिक्षा देकर इस उद्देश्य को प्राप्त किया जा सकता है।
- गाँधी जी मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने के पक्षधर थे, साथ ही चरित्र निर्माण, मानवीयता, समाज कल्याण संबंधी शिक्षा को विद्यार्थियों के लिए अनिवार्य मानते हुए उन्होंने लिखा है–'सामाजिक उत्तरदायित्वों का निर्वाह् करने के लिए स्वयं को सक्षम अनुभव करने के लिए बच्चों को बुनियादी शिक्षा देना आवश्यक है, क्योंकि मनुष्य की मनुष्यता की बुनियाद को सुदृढ़ करना इस शिक्षा पद्धति का प्रमुख उद्देश्य था।''

  अतः स्पष्ट है कि गाँधी जी ने दस्तकारी शिक्षा को समस्त शिक्षा का केन्द्र बतलाया है। उनकी शिक्षा व्यवस्था बेसिक मूल पर आधारित है तो जो जीवन की कला व शरीर श्रम के सिद्धान्त से संबंधित है और धनोपार्जन के साथ व्यवहारिक जीवन के लिए उपयोगी व व्यक्ति के चरित्र निर्माण के लिए भी आवश्यक है।

8.27 मद्यनिषेध (Prohibition of Alcoholism)

गाँधी जी के समाज सुधार कार्यक्रमों में मद्यनिषेध भी प्रमुख है। मद्यपान गाँधी जी बुरी आदत, आत्मा, मन व शरीर के प्रतिकूल, समस्या, हिंसा का द्योतक मानते थे। स्वस्थ समाज के निर्माण हेतु उन्होंने मद्यनिषेध पर बहुत जोर दिया उनका कहना था कि यदि वे एक दिन के लिए भी शासक बनते तो सबसे पहला काम मद्यपान पर पूर्णरूप से निषेध लगाने का कार्य करते। गाँधी जी मद्यपान से उत्पन्न कुप्रभावों से भली भांति परिचित थे, अतः वे भारतीय समाज को इससे दूर रखने के पक्षधर थे। उनके विचार में समाज की अर्थव्यवस्था, विघटन पतन की जड़ में मद्यपान केन्द्रित है, जिसे जड़ से उखाड़ फेंकने से ही समाज प्रगति व विकास कर पायेगा।

गाँधी जी की सामाजिक व्यवस्था का सार संक्षेप यही है कि वर्ण व्यवस्था, अस्पृश्यता निवारण साम्प्रदायिकता एकता, स्त्री दशा में सुधार, शिक्षा सुधार, मद्यनिषेध की एक कलपना निहित थी, जिसे व्ययवहारिक रूप देने के लिए गाँधी जी ने बहुत कार्य किये और एक व्यवस्थित समाज को स्थापना के लिए कुप्रथाओं व सामाजिक समस्याओं का अनत कर मातृभाषा को बढ़ावा, सहशिक्षा, बुनियादी व स्वावलम्बी बनकर जीवन जीने व समाज कल्याण में सहयोग देने के लिए प्रेरित किया।

8.28 महात्मा गाँधी के विचारों की वर्तमान में प्रासंगिकता (Relevancy of thoughts of mahatma Gandhi in the Present)

महापुरुष युग प्रवर्तक हुआ करते हैं जो कि समाज में व्याप्त सभी संकटों, कुप्रथाओं व बुराईयों का अन्त करने के लिए अवतरित होते हैं। महात्मा गाँधी भी उनमें से एक थे, जिन्होंने स्वतंत्रता आन्दोलन में एक महानायक की महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह् कर सैकड़ों वर्षों से गुलामी की जंजीर में जकड़े हुए राष्ट्र को आजादी दिलाकर समाज, राष्ट्र व विश्व को भी एक नयी दिशा प्रदान की जिसकी उपादेयता उनके विचार एवं नैतिक शाश्वत मूल्यों के कारण चिरकालीन बनी रहेगी।

गाँधी जी के विचारों की आधारशीला सत्य, अहिंसा पर केन्द्रित है। यदि मूल्यांकन करें तो पायेंगे कि सत्य और अहिंसा व्यक्तित्व, समाज, देश, राष्ट्र को एक व्यवस्थित व संगठित रूप देने के लिए आज भी आवश्यक है, क्योंकि झूठ व हिंसा व केन्द्रित विचाारों ने हमेशा व्यक्ति व समाज को विघटित किया है। अतः पाठ्यक्रम की परिधि को ध्यान मे रखते हुए गाँधी जी द्वारा प्रतिपादित निम्नांकित सिद्धान्तों की समसामयिक प्रासंगिकता पर विचार किया जायेगा–

1. **संरक्षकता का सिद्धान्त (Theory of Trusteeship)**
2. **अहिंसा का सिद्धान्त (Theory of Non-violence)**
3. **सत्याग्रह का सिद्धान्त (Theory of satyagarh)**

उपरोक्त सिद्धान्तों को गाँधी जी ने स्वयं के जीवन की प्रयोगशाला में परीक्षण करने के उपरान्त ही मानव व समाज के लिए ग्राह्य बतलाया है। एक आध्यात्मिक पुरुष होने के कारण गाँधी जी को सम्पूर्ण सृष्टि में ईश्वर की ही अभिव्यक्ति के दर्शन होते थे। यही कारण था कि उनका चिन्तन मानवतावादी था। समरसता, सबके कल्याण की भावना, अस्पृश्यों, गरीबों का उद्धार, महिलाओं का सम्मान जैसी भावना उनके रोम–रोम में समायी हुइ थीं, जिसके आधार पर वह रामराज्य की स्थापना करना चाहते थे, जहाँ राजा मर्यादा में रहकर राज्य सत्ता का प्रयोग कल्याण

हेतु करता है। आत्मा की पवित्रता, कर्म में सत्य अहिंसा का समावेश, दृढ आत्मबल हेतु करता है। आत्मा की पवित्रता, कर्म में सत्य अहिंसा का समावेश, दृढ़ आत्मबल पर उनका अटल विश्वास था, जिनके माध्यम से पाश्चात्य शक्तियों का परास्त किया जा सकता था, वे सत्य व अहिंसा को शूरवीरों का अस्त्र मानते थे।

गाँधी जी के विचार एवं सिद्धान्तों की आज भी उतनी ही प्रासंगिकता जितनी उनके समय में थी। आज आजादी के इतने वर्षों बाद भी समाज में विषमता, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, शैक्षणिक, सांस्कृतिक स्तर पर बड़ा अन्तराल व दूरियाँ हैं सिद्धान्तों व व्यवहारों में समुचित समन्वय का अभाव, अशिक्षा, गरीबी, सामाजिक, पिछडापन, वर्गवाद, भाषावाद, क्षेत्रवाद, जातिवाद, आतंकवाद, माओवाद, नक्सलवाद, भ्रष्टाचार, नशाखोरी आदि का चारों ओर साम्राज्य फैला हुआ है। मानसिक प्रदूषण ने पक्षपात, भौतिक संसाधनों की होड़ अधर्म, नैतिकता, गैर मूल्य जैसे कृत्येां में ईजाफा किया है। ऐसी स्थिति में महात्मा गाँधी के सिद्वान्त मानव समाज के लिए प्रकाश पुंज का कार्य करते हैं। संक्षेप में इनकी चर्चा की जायेगी–

1) संरक्षकता के सिद्वान्त की समसायिक प्रासंगिकता (Present Relevancy of the theory of Trusteeship)–हम गाँधी जी के संरक्षकता के सिद्वान्त की पूर्व में विस्तार से चर्चा कर चुके हैं। जिसमें हमने पाया कि गाँधी जी द्वारा प्रतिपादित संरक्षकता के सिद्धान्त का प्रतिपादन मूल रूप से समाज में असन्तुलित अर्थव्यवस्था को संतुलित करेन के उद्देश्य से किया गया था। प्रायः धनी व पूंजीपति लोग लगातार धन संचय कर और अधिक धनवान बनते जाते हैं और निर्धन वर्ग अथाह परिश्रम के पश्चात् भी अधिक निर्धनता के बोझ के तले दबता जाता है। इस प्रकार समाज में धन का असमान, वितरण समाज को व्यवस्थित रूप से चलाने में गतिरोध उत्पन्न करता है। गाँधी जी का मानना था कि पूंजीपति इच्छानुसार धनोपार्जन तो करे, लेकिन उसमें से वह उतना ही उपभोग करें, जितना कि उनके लिए नितान्त आवश्यक है। शेष धन का उपयोग व निर्धन, गरीब व असहाय वर्ग के उत्थान में लगाये। इससे सभी का अभ्युदय होगा, पूंजीपति को श्रेय के साथ ही आत्मिक शान्ति भी प्राप्त होगी। वर्तमान में भी यदि देखा जाए तो अमीर निरन्तर अमीर तो गरीब और गरीब होता जा रहा है। अतः गाँधी जी का यह सिद्धान्त आज के समाज की आवश्कता है। यदि पूंजीपतियों का गाँधी जी के सिद्धान्तानुसार दिया गया सहयोग समाज को प्राप्त होता है, तो देश व राष्ट्र की तस्वीर ही बदल जायेगी और अशिक्षा, गरीबी, भुखमरी, कुपोषण, बीमार जैसे कलंक से भी

देश को बचाया जा सकेगा। अतः इस सिद्धान्त की वर्तमान प्रासंगिकता को नकारा नहीं जा सकता।

2. अहिंसा के सिद्धान्त की समसामयिक प्रासंगिकता (present relevancy of the theory of non violence)–वर्तमान समाज में जो कि हिंसा से घिरा हुआ है। गाँधी जी के अहिंसात्मक सिद्धान्त की व्यवहारिक उपयोगिता स्वयं ही बढ़ जाती है जिसका व्यापक अर्थ है– मन, वचन और कर्म से किसी भी रूप में किसी भी प्राणि का अहित न करना, घृणा को प्रेम से, बुराई को भलाई से, दुष्टता को सज्जनता से, कटुता को विनम्रता से एवं अपकार को उपकार से जीतना। आज के आतंकवादी, साम्प्रदायिकतावादी गतिविधियों से मानवता त्रस्त है। सर्वत्र मार–काट, आत्महत्या, बलात्कार, भ्रष्टाचार व रक्तरंजीत घटनाएँ समाचार पत्र–पत्रिकाओं व टेलीविजन की सुर्खियों बनी हुई है। शासन तंत्र की संकीर्ण मानसिकता एवं निहित स्वार्थ परता के कारण समाज असहाय व विघटित दिखायी पड़ता है। ऐसी स्थिति में गाँधी जी के अहिंसात्मक सिद्धान्त की सार्थकता उपयोगी है। जिसके लिए उन्होंने सत्य, प्रेम, आन्तरिक, पवित्रता, आत्मबल, लगन, भयहीनता, लालच से दूर, व्रत जैसे–आवश्यक तत्वों को सम्मिलित कर शारीरिक, मानसिक व आत्मिक पवित्रता के विकास पर बल दिया। यदि आज लोग उनके बतलाये गये सिद्धान्त का अनुसरण करते हैं, तो समाज में व्याप्त प्रतिकूल व विघटनकारी प्रवृत्तियों को समाप्त किया जा सकता है।

4. **सत्याग्रह के सिद्धान्त की समसामयिक प्रासंगिकता (Present Relevency of the theory of satyagarh)**– वर्तमान समय में समाज में भ्रष्टाचार, अन्याय, अधर्म, पक्षपात, स्वार्थपरता जैसी अवांछनीय प्रवृत्तियाँ सुरसा की तरह मुँह बायें खड़ी हैं, जिनसे लोहा लेना आसान कार्य नहीं है। इसके लिए गाँधी जी का सत्य का संबल आवश्यक है। सत्य एवं न्याय के लिए किया गया दृढतापूर्वक आग्रह ही सत्याग्रह कहलाता है। यह एक ऐसी मनोवैज्ञानिक शक्ति है जो कि अन्यायियों एवं आन्यायी को आत्ममंथन हेतु मजबूर कर देती है। सत्याग्रह का क्षेत्र अत्यधिक व्यापक है। इसे व्यक्ति, परिवार, समाज या संस्था किसी के भी विरुद्ध प्रयोग में लाया जा सकता है। यह अन्तिम अचूक अस्त्र है। न्याय, नीति, नैतिक मूल्यों को पुर्नजीवित कतरने तथा पुर्नप्रतिष्ठित करने के लिए सत्याग्रह सिद्धान्त का पालन अत्यंत आवश्यक है। इससे देश पतन पराभव से बच सकता है। समाज को नयी दिशा मिल सकती है। अतः गाँधी के उपरोक्त सिद्धान्त को वर्तमान समाज के लिए अत्यधिक सामयिक एवं प्रासंगिक माना जा सकता है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि वर्तमान समाज जिस प्रदूषित वातावरण से घरा हुआ है। वहाँ सत्य, प्रेम, समानता, बुनयादी शिक्षा, नारी सम्मान जेसी प्रक्रियाओं से एक नयी सामाजिक क्रान्ति लायी जा सकती है, क्योंकि झूठ, छल, कपट, घृणा, द्वेष, हिंसा आदि उपायों से लायी गयी। क्रान्ति का प्रभाव अल्पकालीन होता है। बस आवश्यकता है। गाँधी जी द्वारा प्रतिपादित सिद्वान्तों को व्यवहारिक जीवन में प्रयोग, अनुसरण व आत्मसात् करने की।

8.29 गाँधी और मार्क्स (Gandhi and Marks)

गाँधी के समान ही आधुनिक एवं वैज्ञानिक साम्यवाद तथा अधिकांश समाजवादी विचारधाराओं के सर्वमान्य जनक कार्लमार्क्स भी राज्य विहिन एवं वर्ग विहीन समाज के समर्थक थे, लेकिन दोनों की विचारधारा में कहीं–कहीं समानता परिलक्षित होती है जो भिन्नता की तुलना में आंशिक है। अतः दोनो ंविचारकों की समानता व भिन्नता की चर्चा की जा रही है–

8.30 गाँधी और मार्क्स में समानताएँ (similarities In Gandhi and Marks)

सुप्रसिद्व गाँधीवादी अर्थशास्त्री कुमारप्पा का कथन है,''जहाँ तक हम भौतिक हित के लक्ष्य तक पहुँचने का प्रयास करते हैं। साम्यवाद, समाजवाद और गाँधीवादी में कोई अन्तर नहीं हो सकता।'' अतः गाँधीवाद और मार्क्सवाद के कुछ सामान्य नैतिक आधारों की व्याख्या निम्नवत् है–

1. दोनों का नैतिक दृष्टिकोण सुबह से शाम तक मेहनत मजदूरी करने वाले श्रमिकों को उनके वास्तविक अधिकार देने तथा इतनी सुविधाएँ उपलब्ध कराने के पक्ष में हैं, जिससे वे स्वयं के साथ–साथ आश्रितों की भी देखभाल अर्थात् पालन पोषण कर पाएं, अर्थात् दोनों ही श्रमिकों के लिए आर्थिक–सामाजिक न्याय के पक्षपाती हैं।
2. दोनों मानते हैं कि समाज के निम्नवर्गों का आधुनिक समाज में होने वाला शोषण अन्यायपूर्ण हैं। जिसके लिए क्रियात्मक कदम उठाने की आवश्कयता है। जहाँ गाँधी जी ने लिखा है– ''गरीबों को उनका हक मिलना ही चाहिए।'' वहीं मार्क्स ने घोषणा की है कि 'मेहनतकश जनता को अन्ततः उसका अधिकार मिलकर ही रहेगा। अतः दोनों गरीबों व श्रमिकों को उसने अधिकार दिलवाने के पक्ष में हैं।

3. जन्म की समानता के कारण सबको समान अधिकार मिलना चाहिए। इस प्रकार की सोच दोनों में पायी जाती है। व्यक्ति की मूलभूत आवश्यकता रोटी, कपड़ा, मकान सबको प्राप्त होना चाहिए, क्योंकि इसके अभाव में स्वस्थ मनुष्य व स्वस्थ समाज की कल्पना नहीं की जा सकती।
4. दोनों ही वर्ग विहीन व राज्य विहीन समाज की स्थापना चाहते थे, जहाँ जात–पात, ऊँच–नीच का भेदभाव न हो।
5. दोनों का विश्वास इस बात पर आधारित है कि राजनीतिक स्वतंत्रता, आर्थिक स्वतंत्रता के बिना आधारहीन व अर्थहीन है। गाँधी जी लिखते हैं–''मेरे स्वराज्य का सपना गरीबों के स्वराज्य का है''तो मार्क्स ने 'सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व के पक्ष में राय दी। अर्थात् दोनों ही जनता के राज्य स्थापना को एक नैतिक आधार मानते थे।''
6. दोनों श्रम के गौरव पर बल देते है, अर्थात् दोनों प्रत्येक स्वस्थ व समर्थ व्यक्ति को आजीविका प्राप्ति के लिए परिश्रम करना आवश्यक मानते हैं। ''प्रत्येक से उसकी योग्यतानुसार परिश्रम व प्रत्येक को उसकी आवश्यकतानुसार सामाजिक सुरक्षा प्रदान करते हुए दोनों विचारकों ने काम नहीं तो रोटी नहीं का समर्थन किया है।''
7. दोनों राष्ट्रीय धन का समान वितरण सामाजिक असमानता को दूर करने के लिए आवश्यक मानते हैं।

उपरोक्त समानता के आधार पर दोनों का नैतिक आधार गरीबों व असहायों के लिए आर्थिक तथा सामाजिक न्याय को प्राप्त करना है। पीड़ित, शोषित, अत्याचार का शिकार, वर्ग का उद्धार, समान अवसरों की उपलब्धता, शोषण विहीन, वर्ग विहीन राज्य की स्थापना करना है।

8.31 भिन्नताएँ (Differences)

गाँधी व मार्क्स साम्यवाद में निहित भिन्नताएँ मुख्यतः निम्न हैं–

1. मार्क्स की विचारधारा आत्मा, परमात्मा, निरपेक्ष एवं किसी शास्वत सत्य पर विश्वास नहीं करता। वह सभी धर्मों का विरोध करता है। अतः उसका दृष्टिकोण पूर्णतया भौतिकवादी है। यह धर्म को निर्बल वर्ग का शोषक व प्रबल वर्ग का पोषक तथा जनता के लिए अफीम मानता है।

2. गाँधी जी धार्मिक चेतना व उद्देश्य के समर्थक थे। उन्होने लिखा है कि 'अपने सार्वजनिक जीवन के आरम्भ से अब तक मैंने जो कुछ कहा है या किया है उसके पीछे एक धार्मिक चेतना व उद्देश्य रहा है। ''यही कारण था कि उन्होंने अपनी कल्पना के 'आदर्श राम राज्य' को धार्मिक दृष्टिकोण से ईश्वर का राज्य कहकर परिभाषित किया है।
3. मार्क्स प्रत्येक श्रमिक को पूंजी के मूल्य का उत्पादक के रूप में समान समझते हैं और सम्मान करते हैं। अतः उनकी विचारधारा भौतिकवादी होने के साथ अनात्मावादी है।
4. गाँधी जी मानव समूह को भगवान का ही विराट रूप मानते थे और मानते थे कि प्रत्येक राजा हो या रंक, पूंजीपति हो या श्रमिक, ईश्वर की सन्तान होने के कारण समान हैं।
5. मार्क्स तत्कालिक व शीघ्र ही पनपने वाले परिणामों पर विश्वास करते हैं, जबकि गाँधी जी दूरदर्शिता व विकास की प्रक्रिया पर अधिक ध्यान देते हैं।
6. जहाँ मार्क्स अप्रत्यक्ष/प्रत्यक्ष रूप से आर्थिक व राजनैतिक सत्ता के केन्द्रीयकरण को मान्यता देते हैं। गाँधी जी इस प्रकार के केन्द्रीयकरण को समाज रचना का मौलिक आधार मानते हैं।

यद्यपि दोनों विचारधाराएँ क्रांन्तिकारी हैं जो एक नयी समाजिक व्यवस्थ की स्थापना करना चाहते हैं, तथापि मार्क्स पूंजीपतियों को नष्ट कर देने के समर्थन हैं तो गांधी जी मानते है हृदय में क्रान्ति लाकर परिवर्तन के पक्षधर हैं। अर्थात् मार्क्स हिंसक तथा गाँधी जी अहिंसक क्रान्ति से सामाजिक नवीन व्यवस्था की स्थापना पर विश्वास करते हैं।

मार्क्स के अनुसार–अभी तक के सभी समाजों का इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास रहा है। समाज में दो शासक व शोषित वर्ग हमेशा एक–दूसरे के विरोधी होकर प्रत्यक्ष/अप्रत्यक्ष रूप में युद्ध करते रहे। वर्ग युद्ध की इस अनिवार्यता को गाँधी जी स्वीकार नहीं करते। उनके मतानुसार–''यदि पूंजी शक्ति है तो श्रम भी शक्ति है।'' इसलिए मेहनत करने वाले बुद्धिपूर्वक एक हो जाए तो वे एक ऐसी ताकत बन जायेंगे, जिसका मुकाबला कोई नहीं कर सकता। अहिंसात्मक ढंग से हृदय परिवर्तन आवश्यक है।

गाँधी जी के मत को समझाते हुए महादेव प्रसाद शर्मा लिखते हैं–''जब अहिंसात्मक मार्ग से समता स्थापित की जा सकती है तो वर्ग युद्ध आवश्यक है। इतना ही नहीं, वह हिंसापूर्ण होने के कारण अमानुषिक, निषिद्ध, त्याज्य है। गाँधी जी का लक्ष्य वर्ग युद्ध या किसी वर्ग विशेष

का अधिपत्य न होकर वर्ग समन्वय द्वारा सर्वोदय था। इसका अर्थ यह न समझना चाहिए कि गाँधी जी समाज में वर्तमान संघर्ष की उपस्थिति को अस्वीकार करते थे।''

8.32 मूल्यांकन (Evoluion)

उपरोक्त समानता–भिन्नता से विद्यार्थी यह समझ पाऐंगे कि मार्क्स और गाँधी जी द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों में समानता कम व भिन्नता अधिक परिलक्षित होती है जो अहिंसा–हिसा, प्रेम–घृणा, तत्काल एवं दूरदर्शिता जैसे अनेक आधारों पर एक–दूसरे से पृथक हैं। भारत जैसे देश में यदि गाँधी जी जैसा कोई नेता मार्गदर्शन न करेगा और शोषण, दमन जारी रहेगा तो इस बात की संभावना की जा सकती है कि लोग साम्यवाद की ओर झुक जायें। विनोबा भावे जी ने कहा है कि–''गाँधीवाद मार्क्सवाद व पूंजीवाद का सर्वोत्तम विकल्प है।''

8.33 सारांश (conclusion)

संक्षेप में गाँधी आध्यात्मवादी थे। उनके सिद्वान्तों में सत्य, अहिंसा का प्रमुख स्थान है। वह साध्य व साधनों की पवित्रता, वर्ग सहयोग, सामाजिक समानता, शोषक, साम्राज्य का विरोध करते थे। साम्प्रदायिक एकता, सद्भाव, प्राचीन भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के प्रेरणा स्रोत व मूल रूप से वे मानवतावादी थे। उनका आदर्श रामराज्य तथा उद्देश्य सर्वोदय था। शोषक पूंजीवाद को समाप्त करने के लिए जहाँ उन्होंने संरक्षकता के सिद्वान्त को प्रतिपादन किया वहीं उसके असफल होने पर वह सम्पत्ति के राष्ट्रीयकरण होने की बात कहते थे। एक राज्य विहीन एवं वर्ग विहीन समाज की कल्पना उनका स्वप्न था। इन सभी कार्यों के लिए गांधी जी ने प्रेम, अहिंसा, सत्य के आधार पर मानव हृदय में सर्वप्रथम क्रान्ति लाकर एक नवीन समाज की स्थापना पर बल दिया था। वे मानते थे कि व्यक्ति में आत्मबल, निर्भीकता, पवित्रत्रता व नैतिकता से समाज, देश राष्ट्र सभी के प्रगति व विकास संभव हैं। नारी सम्मान, उनकी सुरक्षा, शिक्षा के पक्षधर गाँधी जी ने हमेशा उनकी प्रतिष्ठा व सम्मान के लिए कुप्रथाओं व सामाजिक समस्यओं का अन्त कर संविधानों का निर्माण करवाकर उन्हें भी पुरुषों के समान अधिकार दिलाने के लिए विशेष प्रयत्न व आन्दोलन किये। जिसके फलस्वरूप वर्तमान में पर्दाप्रथा, बाल विवाह, सती प्रथा जैसी सामाजिक बुराईयों का अन्त हुआ और प्रत्येक क्षेत्र में स्त्रियों का आगे बढ़ने के अवसर प्राप्त हुए। दस्तकारी शिक्षा के माध्यम से वे व्यक्ति में परिश्रम की भावना एवं

उनकी बुद्धि–कौशल को विकसित करना चाहते थे। वर्तमान समाज में उनके विचारों की प्रासंगिकता को नकारा नहीं जा सकता।

विद्यार्थियों द्वारा या तो पूर्व में या पश्चात् कार्ल मार्क्स जैसे आधुनिक एवं वैज्ञानिक साम्यवाद के जनक को पढ़ा गया होगा, या जायेगा। माना जाता है कि दोनों ही विचारक समाज में समानता के लिए सभी को समान अवसर प्राप्त होने के पक्ष में थे, लेकिन दोनों की विचारधाराएँ कहीं समानता तो कहीं पृथकता को बनाये हुए हैं। मूल्यांकन से स्पष्ट होता है कि दोनों वर्गविहीन, राज्यविहीन समाज की स्थापना के पक्षधर होने के पश्चात भी दोनों के रास्ते अलग–अलग हैं। गाँधी जी का दृष्टिकोण मानवतावादी मार्क्स का दृष्टिकोण भौतिकवादी है। गाँधी जी वर्ग समन्वय तो मार्क्स वर्ग संघर्ष के समर्थक हैं। उपरोक्त में इसकी चच्र विस्तार में की जा चुकी हैं।

8.34 शब्दावली

अस्वाद (control of the palate)- जीभ के स्वाद को छोड़कर, सादा भोजन ग्रहण करना।

अस्तेय (Non Stealing)- बिना किसी की अनुमति के दूसरों की वस्तुओं को न लेना अथवा चोरी न करना।

अपरिग्रह (Non possession)- आवश्यकता से अधिक संचय करना।

निर्भयता (Fearlessness)- सत्य ईमानदारी का अनुसरण करते हुए किसी से भयभीत न होना।

शारीरिक श्रम (Manual labour)- अपने स्वयं के परिश्रम द्वारा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति।

सर्वधर्म समानता– (Religious Equality)- सभी धर्मों की समानता पर विश्वास रखना।

राज्यविहीन समाज (stateless Society)- एक राज्य में रहने वाले सभी व्यक्ति स्वयं शासक होंगे अर्थात् राज्य के अस्तित्व वर्गीकरण के स्थान पर प्रजातंत्र की स्थापना।

विकेन्द्रीकरण (Decetralization)- समस्त अधिकार व शक्तियां पंचायतों में सीमित हो जाए।

धर्मनिरपेक्ष राज्य (secular state)- सभी धर्मों में सम्भाव रखा जाए।

मानवतावाद (Humanism)- एक मानव के नाते मनुष्य के विकास से संबंद्ध मूल्य।

राष्ट्रीय चेतना (National Consciousness)- किसी राष्ट्र के होने की भावना जिसे शक्तियों एवं विकास माध्यम तथा शिक्षा तथा राट्रीय नेताओं द्वारा किये जाने पर जेसे दो आधारों पर देखा जा सकता है।

अंधविश्वास (superstition)- अतार्किक विवेकशून्य विश्वास या सोचने का ढंग।

सुधारवादी (self to torture)-स्वयं को कष्ट देना अर्थात् तपस्या के आधार पर बलिदान की भावना।

नैतिक सांस्कृतिक विकास (Enthoic cultural development)- समस्त समाज में समस्त नागरिकों का समान नैतिक सांस्कृतिक विकास।

आत्मसंयम (self restraint)- स्वयं में अनुशासन अर्थात् कर्मनिष्ठता त्याग के आधार पर अनुशासित होना।

समानताए (similarities)- विचारधारा या अन्य में समानता का होना।

विभिन्नताएँ (differences)- विचारों में समानता का न होना या पृथकता का पाया जाना।

8.35 अभ्यास प्रश्न

निम्नलिखित कथनों को पढकर सही का चिह्न लगाइए–

1– महात्मा गाँधी का जन्म हुआ था–

अ– 2 अक्टूबर 1849

ब– 2 अक्टूबर 1859

स– 2 अक्टूबर 1869

द– 2 अक्टूबर 1879

2– गाँधी जी की माता का नाम था–

अ– पुतलीबाई

ब–सविताबाई

स–कस्तूरबाबाई

द–सुधाबाई

3– गाँधी जी ने सर्वोदय आन्दोलन के कितने अंग बतलाए हैं?

अ–दो

ब–तीन

स–चार

द–पांच

4–गाँधी जी का जन्म हुआ था?–

अ–मुम्बई

ब– दिल्ली में

स– गुजरात में

द– दक्षिण अफ्रिका में

5– गाँधी जी के दर्शन का मुख्य स्रोत है–

अ–रामायण

ब–महाभारत

स–कुरान

द–गीता

6–'अन टू द लास्ट' पुस्तक के लेखक हैं–

अ–टालस्टॉय

ब– जवाहर लाल नेहरू

स–महात्मा गाँधी

द–जॉन रस्किन

7– गाँधी जी ने सत्याग्रह का पाठ पढ़ा था–

अ–अपनी माता जी से

ब– अपनी धर्मपत्नी से।

स–अपने पिताजी से।

द– अपने गुरूजनों से

8–अस्तेय का तात्पर्य है–

अ–धन का संचय

ब– धन को गरीबों में बाँटना।

स–मारपीट करना

द–चोरी न करना

9–सत्याग्रह की अन्तिम विधि है–

अ–असहयोग

ब–उपवास

स–आमरण अनशन

द–हड़ताल

10–गाँधी जी ने बैरिस्टरी अर्थात् वकालत की शिक्षा प्राप्त की थी–

अ–कोलकाता

ब–इंग्लैंड

स–दक्षिण अफ्रिका

द–मुंबई से

निम्नलिखित प्रश्नों के आगे सत्य व असत्य लिखिये–

11–गाँधी जी के अनुसार सत्य का अर्थ है यथार्थ सत्ता–

12–गाँधी जी के सर्वोदय का अर्थ है– हरिजनों का उदय–

13–'अहिंसा कायरों का कवच नहीं है यह बहादुरों का उच्चतम गुण है'–पं0नेहरू द्वारा कहा गया है–

14–गाँधी जी के अनुसार पूंजी के अधिक से अधिक संचय से समाज विकसित होगा–

15–गाँधी जी सत्याग्रह को अहिंसा का व्यवहारिक रूप मानते थे–

16–गाँधी जी ने स्वदेशी व मातृभाषा का विरोध किया था–

17–गाँधी जी के सत्याग्रह का सिद्वान्त सामाजिक अनुशासन और नैतिकता में वृद्धि के लिए आवश्यक है–

18–गाँधी जी ने अहिंसा का पाठ अपनी पत्नी से पढ़ा–

19–गाँधी जी पूंजी का नहीं उसके दुरूप्रयोग के विरोधी थे–

20–स्त्री शिक्षा का गाँधी ने हमेशा विरोध किया–

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

21–गाँधी जी के अनुसार–शुद्ध अन्तरात्मका की वाणी का दूसरा नाम ही..... है।

22–गाँधी जी के अनुसार हिंसा.....अस्त्र नहीं है।

23–सर्वोदय के दो आधारभूत तत्वों में .....व .....हैं।

24–गाँधी जी.....के द्वारा सबके उदय में विश्वास रखते थे।

25–सत्याग्रह सत्य का.....है।

8.36 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1–स

2–अ

3–ब

4–स

5–अ

6–द

7–अ

8–द

9–स

10–ब

11–सत्य

12–असत्य

13–असत्य

14–असत्य

15–सत्य

16–असत्य

17–सत्य

18–सत्य

19–सत्य

20–असत्य

21–सत्य

22–कार्यों

23–सत्य–अहिंसा

24–सर्वोदय द्वारा

25–आग्रह

8.37 संदर्भ

1. गाँधी एम0 के0, सर्वोदय, अहमदाबाद, नवजीवन प्रकाशन, 1954, पृ0स 5–8
2. गांधी, एम0 के0, हरिजन, 12 अक्टूबर, 1947, पृ0 368

3. गांधी, एम0के0, 'हिन्दी स्वराज', उत्तरप्रदेश स्मारक निधि वाराणसी, 1979, पृ0सं0 15–16
4. सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा नवजीवन ट्रस्ट, 1927, मूल गुजराती आत्मकथा का हिंदी रूपांतरण, जितेन्द्र ठाकोरभाई देसाई।
5. विश्व के महान सामाजिक विचारक और उनके विचार, मोहनदास कर्मचन्द्र गांधी, दत्त बन्धु अल्मोड़ा, पृ0सं 327–360
6. आर0 के0 मुकर्जी, सामाजिक विचारों का इतिहास, करेंट पब्लिकेशन, लखनऊ, 1988, पृ0सं0 175–178
7. पुखराज जैन एवं मेहता जीवन, राजनीतिशास्त्र, एबीपीडी0 पब्लिकेशन, आगरा, सन 2010 पृ0सं0 470–508
8. दोषी एवं जैन, सामाजिक विचारक,च रावत पब्लिकेशन, दिल्ली, 1997, पृ0सं0 121
9. बघेल डी0एस0, महान समाजशास्त्रीय विचारक, ममता प्रिंटर्स, भोपाल, 2002, पृ0स 121–160, 80
10. आहूजा राम, भारतीय समाज, रावत पब्लिकेशन्स, 2001, पृ0सं 70–73
11. आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन, जे0पी0राठौर, प्रेंटिस, हाल ऑफ इण्डिया, प्राइवेट लिमिटेड, 2005, पृ0सं0 163
12. young India, Gandhi ji
13. Harijan

8.38 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

ए0 आर0 देसाई–भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, दिल्ली

Radhakrishnan, Mahatma Gandhi, 10 years

J.BKriplni, Gandhis his life anan thoughts, Gandhi ji, Young india 1931

महात्मा गाँधी, सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा–अनुवादक, काशीनाथ त्रिवेदी, अहमदावाद1957

स्वतंत्र भारत का उदय–इन्दिरा गांधी मुक्त वि0वि0दिल्ली

8.39 निबन्धात्मक प्रश्न

1–महात्मा गाँधी जी के जीवन वृतान्त पर निबन्ध लिखिए।

2–गाँधी जी द्वारा प्रतिपादित संरक्षकता के सिद्वान्त का मूल्यांकन कीजिए।

3–गाँधी जी के सर्वोदय की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए इसके आधारभूत उद्देश्यों की चर्चा कीजिए।

4–गांधी के सामाजिक विचारों को संक्षेप में लिखिए

5–सत्याग्रह से आप क्या समझते हैं, इसके विभिन्न साधन क्या हैं?

6–गाँधी जी ने सत्य अहिंसा के सिद्वान्त में समाज, देश, राष्ट्र का हित निहित है को स्पष्ट कीजिए।

7–गाँधी जी व कार्ल मार्क्स के सिद्वान्तों में परिलक्षित समानता व भिन्नता का विश्लेषण कीजिए।

निम्नलिखित की संक्षिप्त चर्चा कीजिए–

अ–गाँधी जी के अस्पृश्यता संबंधी विचार

ब–गाँधी जी की बेसिक शिक्षा

स–गाँधी जी का महिलाओं की प्रतिष्ठित स्थिति संबंधी विचार

द–वर्गविहीन व राज्य विहीन समाज का अर्थ

9–गाँधी जी द्वारा प्रतिपादित सिद्वान्तों की वर्तमान प्रासंगिकता को समझाईए?

इकाई नं०–9
प्रो० अवध किशोर सरन
(Prof. Avadh Kishor Saran)

इकाई की रूपरेखा–

9.1 उद्देश्य

9.2 प्रस्तावना

9.3 प्रो० अवध किशोर सरन का संक्षिप्त जीवन परिचय

9.3.1 अवध किशोर सरन के समसामयिक भारत में हिन्दुत्व पर विचार

9.3.2 अवध किशोर सरन के साम्प्रदायिकता का सिद्धांत

9.3.3 अवध किशोर सरन का आधुनिकता का सिद्धांत

9.3.4 अवध किशोर सरन के मानव की परम्परागत दृष्टि

9.4 अवध किशोर सरन का मानव का परम्परागत चिंतन एवं ज्ञान

9.5 सारांश

9.6 शब्दावली

18.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

9.8 सन्दर्भ ग्रंथों की सूची

9.9 सहायक/उपयोगी पाठय सामग्री

9.10 निबंधात्मक प्रश्न

9.1 उद्देश्यः (Objective)

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप निम्न बिन्दुओं के बारे में विस्तार से समझ पायेंगे–

- आप समझ पायेंगे कि प्रो० अवध किशोर सरन का भारतीय समाजशास्त्र में क्या योगदान है।

- इस इकाई के अध्यापन से आप समझ पायेंगे कि प्रो० अवध किशोर सरन का संक्षिप्त जीवन परिचय को।
- इस इकाई के अध्ययन से आप समझ पायेंगे कि समसामयिक भारत में हिन्दुत्व पर प्रो० अवध किशोर सरन के क्या विचार थे।
- इस इकाई के अध्ययन से आप समझ पायेंगे कि प्रो० अवध किशोर सरन का साम्प्रदायिकता का सिद्धांत क्या है?
- इस इकाई के अध्ययन से आप समझ सकते हैं कि प्रो० अवध किशोर सरन का आधुनिकता का सिद्धांत क्या है?
- इस इकाई के अध्ययन से आप समझ सकेंगे कि प्रो० अवध किशोर सरन का परम्परागत दृष्टिकोण क्या था?
- इस इकाई के अध्ययन से आप समझ सकेंगे कि समाजशास्त्र की किन–किन अवधारणाओं पर काम किया है?

9.2 प्रस्तावनाः (Introduction)

प्रो० अवध किशोर सरन का विश्व हिन्दू परम्परागत चिंतन में महत्वपूर्ण स्थान है। अवध किशोर सरन ने भारत में समसामयिक हिन्दुत्व पर अपनी प्रमुख पुस्तक लिखी है एवं ए०के० सरन ने साम्प्रदायिकता का सिद्धांत एवं आधुनिकता का सिद्धांत का भी प्रतिपादन किया है। अवध किशोर सरन ने दस पुस्तकों का लेखक कार्य किया है। इनका सम्बन्ध लखनऊ विश्वविद्यालय के समाजशास्त्र विभाग में है। अन्य पुस्तकों में मानव का परम्परागत दृष्टि, परम्परागत चिंतन, समाजशास्त्र का ज्ञान और परम्परागत चिंतन का कार्य किया है। प्रो० अवध किशोर सरन का कार्य समाजशास्त्र के क्षेत्र में अति महत्वपूर्ण रहा है। प्रो० ए०के० सरन के द्वारा दो अध्याय धर्म का तुलनात्मक अध्ययन एवं क्रासिस ऑफ हिन्दुज्म और समाज का सिद्धांत अपने समय में बड़े ही महत्वपूर्ण अध्याय रहे हैं। इस इकाई में प्रो० अवध किशोर सरन के समाजशास्त्र के क्षेत्र में किये गये योगदान को पढ़ेंगे इन्होंने एक नई विधा को जन्म दिया है। वैसे उनका कोई ज्यादा कार्य समाजशास्त्र के क्षेत्र में नहीं है। प्रो० अवध किशोर सरन भारतीय समाजशास्त्री थे। प्रो० सरन संपादक, लेखक के रुप में इनका योगदान महत्वपूर्ण रहा है। इन्होंने लखनऊ विश्वविद्यालय में अध्ययन कार्य किया है और जौधपुर विश्वविद्यालय में भी अध्यापन कार्य किया है।

9.3 अवध किशोर सरन का संक्षिप्त जीवन परिचयः (Biography of Avadh Kishor Saran)

प्रो० अवध किशोर सरन का जन्म सन् 1922 को हुआ। इनकी मृत्यु 2003 में हुई। प्रो० अवध किशोर सरन लखनऊ विश्वविद्यालय में प्रोफेसर रहे। ये समाजशास्त्र में लेखक एवं सम्पादक में महत्वपूर्ण योगदान है। इन्होंने भारतीय हिन्दू समाज में प्राचीन एवं आधुनिक स्वरुप का अध्ययन किया है। प्रो० सरन का विचार था कि भारतीय समाज को हिन्दू समाज की संरचना को समझे बगैर समझ नहीं सकते हैं। इस समाज को हम तभी समझ सकते हैं, जब हिन्दू समाज को समझ लें। इन्होंने क्रांसिस ऑफ हिन्दूज्म अपनी अध्ययन पुस्तक में सभी बातें कही है। इनका एक और प्रसिद्ध लेख जो हमारे समय में समाज में गाँधी जी का सिद्धांत विषय पर लिखा है। प्रो० अवध किशोर सरन का समाजशास्त्र के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान है।

9.3.1 अवध किशोर सरन का समसामयिक भारत में हिन्दुत्व पर विचारः (Crisis of Hinduism in India by Avadh Kishor Saran)

प्रो० अवध किशोर सरन ने अपने विचारों में कहा है कि भारत में समसामयिक समय में कोई जीवित हिन्दू समाज नहीं है। इन्होंने कहा कि हिन्दू समाज के पतन की प्रक्रिया व धर्म के पतन की प्रक्रिया बहुत पहले शुरु हो चुकी है। हिन्दू धर्म के पतन का चरण इस्लाम के साथ भारत के मुठभेड़ के दौरान निर्णायक चरण तक पहुंच गया था। इसको अंग्रेजी शासन के अपेक्षाकृत संक्षेप रुप में जारी किया गया। इसने स्वतंत्र भारत में एक रुप और ले लिया था। प्रो० सरन ने कहा कि मैंने हिन्दुत्व में वास्तविक नवीनीकरण का कोई स्वरुप/संकेत नहीं देखने को मिला है। प्रो० अवध किशोर सरन ने कहा कि भविष्य में अधिकार के सिवाय कुछ नहीं है, क्योंकि हमारी आँखे झूठी रोशनी से अस्पष्ट है।

प्रो० सरन कहते हैं कि अंग्रेजी काल के प्रारम्भ में हिन्दू धर्म का पुर्नजागरण नहीं हुआ था। क्या हम भारत में हिन्दू धर्म को पुनः जीवित करने का हिंसक प्रयास नहीं देखते हैं। इन्होंने कहा कि भारत हिन्दू राष्ट्रवाद की एक नई धारा से गुजर रहा है, जो भारतीय राजनीति में प्रति धर्म निरपेक्ष ताकतों के सुदृढ़ीकरण को दिखाता है। क्या हाल के कुछ पिछले वर्षों में आधुनिकीकरण प्रक्रियाओं में एक उल्लेखनीय सेट बैक नहीं हुआ है और क्या यह अपराध रुप से हिन्दू धर्म को मजबूत नहीं करता है और इनमें सबसे ऊपर हिन्दू धर्म नहीं दिखाई देता है। प्रो० अवध किशोर सरन ने कहा कि तथ्यों के स्तर पर इन सभी सवालों/प्रश्नों का जवाब/उत्तर बड़े स्तर पर सकारात्मक में है और इस स्तर पर, इसके बारे में एक निश्चित स्पष्ट प्रेरणा है,

लेकिन यह किसी भी तरह से इस बयान/बात की वास्तविकता से समझौता नहीं करती है कि समकालीन भारत में कोई जीवित हिन्दू समाज नहीं है।

जानवरों के आदेश के लिए क्या वृत्ति है (जो निष्क्रिय और गैर–आत्म–जागरुक) है, परंपरा मानव (जो सक्रिय और आत्म–जागरुक) है। मनुष्य में भी प्रवृत्त होते हैं, लेकिन जानवरों के विपरीत, वह अकेले उनके द्वारा नहीं रह सकता है। यह मनुष्य की परिभाषा को पूर्ववत करता है। मनुष्य विरोधाभास में गिरने के बिना मनुष्य को परिभाषित नहीं कर सकता है। तो मनुष्य वह व्यक्ति है जो खुद को परिभाषित नहीं कर सकता है और फिर भी, जो अपनी आत्म–चेतना के आधार पर आत्म–परिभाषा मांगे बिना जीवित नहीं रह सकता है; दूसरे शब्दों में, आत्म–ज्ञान के लिए उत्सुकता के बिना। इस उत्सुकता, इस खोज, उसका परिमाण का तात्पर्य है; इसकी पूर्ति का विरोधाभास, उसकी अनंतता। परिमाण और अनंतता के बीच तनव मनुष्य का अस्तित्व है।

मनुष्य, मनुष्य के रुप में परंपरा के बना नहीं जी सकता है, परंपरा का अस्तित्व और निरंतरता केवल मानव अस्तित्व की वास्तविकता है। हालांकि, चूंकि परंपरा मनुष्य के उत्थान भाग्य से चिंतित है, यह मनुष्य से पहले और उससे पहले है, लेकिन अंततः मनुष्य को पार करना होगा, इसलिए वह परंपरा से अधिक है। मनुष्य स्वयं अस्थायी वास्तविकताओं और एक अस्थायी अर्थ के बीच रहता है। उसे किसी भी के साथ पहचाना नहीं जा सकता है। परंपरा, समय और अनंत काल के बीच मध्यस्थ के रुप में, इस जनस की तरह मनुष्य की गुणवत्ता को डुप्लिकेट करता है। इस प्रकार मनुष्य और परंपरा का संबंध synonymy में से एक है, लेकिन पारस्परिक कमी के बिना। एक तैयार परंपरा, हालांकि हमेशा अपने आप को इंगित करती है, समय और स्थान में मौजूद है और इसका इतिहास है। हिंदू परंपरा प्रायोगिक परंपरा के शुरुआती फॉर्मूलेशन में से एक है। अन्य सूत्र हैंः यहूदी धर्म, बौद्ध धर्म, जैन धर्म, पारस्परिकता, ईसाई धर्म, इस्लाम और सुदूर पूर्वी और पूर्वी प्राचीन परंपराओं के पास हो सकती है।

हिंदू परंपरा, हालांकि प्रायोगिक परंपरा की एक औपचारिकता पूर्ण और सार्वभौमिक होने का इरादा है। यह सार्वभौमिक परंपराओं और कहानियों, यहूदी धर्म, ईसाई धर्म या इस्लाम के अन्य तीरकों को सार्वभौमिक और अपने तरीके से पूरा करने से बाहर नहीं करता है। इस बिंदु को यहां स्पष्ट नहीं किया जा सकता है, लेकिन इसका उल्लेख करना महत्वपूर्ण एवं सार्वभौमिक है।

इसकी सार्वभौमिकता और पूर्णता के आधार पर हिंदू परंपरा मनुष्य को ब्रह्मांड इतिहास के सिद्धांत में आधारित जीवन का एक संपूर्ण तरीका प्रदान करती है, जो सभी आवश्यक विवरणों में काम करती है। समाज और इतिहास का एक "पवित्र" विज्ञान हिंदू परंपरा का एक आवश्यक पहलू बन जाता है। उदाहरण

के लिए, यह बौद्ध परंपरा का सत्य नहीं है, जिसमें अपने पहले सिद्धांतों से प्राप्त सामाजिक आदेश का अनुमान लगाया गया है। इस प्रकार एक हिंदू होने के लिए, "पवित्र" समाजशास्त्र के आधार पर, सामाजिक आदेश में, निर्धारित तरीके से और निर्धारित स्तर पर, दिल से भाग लेना है। अपने अंतिम लक्ष्य की दिशा में हिंदू की प्रगति करना है। इस प्रकार एक हिंदू होने के लिए, "पवित्र" समाजशास्त्र के आधार पर, सामाजिक आदेश में, निर्धारित तरीके से और निर्धारित स्तर पर, दिल से भाग लेना है। अपने अंतिम लक्ष्य की दिशा में हिंदू की प्रगति, मुक्ति, अपने जीवन की प्रामाणिकता इस प्रकार प्रतिभागी की ईमानदारी और पारंपरिक सिद्धांतों (पवित्र समाजशास्त्र) के सामाजिक आदेश की संयुक्त रुप से संयुक्त रुप से और एकीकृत रुप से एक कार्य है। दोनों के किसी भी एंटीथेसिस, हालांकि अनुभवी रुप से बाहर नहीं रखा गया है, सैद्धांतिक रुप से मना कर दिया गया है। यह इस प्रकार है कि एक हिंदू होने का कोई तरीका नहीं है, वास्तव में, एक प्रामाणिक मानव जीवन का नेतृत्व करने के लिए यदि कोई पारंपरिक (पवित्र, सामान्य) समाज नहीं है, जिसमें कोई भाग ले सकता है।

इसके लिए एक महत्वपूर्ण अपवाद है। हिंदू परंपरा के धर्म–सामाजिक तरीके के अलावा, एक और बौद्धिक–आध्यात्मिक है। हिंदू परंपरा का बौद्धिक–आध्यात्मिक तरीका मूल रुप से साधना (आध्यात्मिक अभ्यास) है। यह सीधे अंतिम उत्थान, व्यक्ति की सर्वोच्च पहचान और पूर्ण का एहसास करने का प्रयास है। यह अंतिम विश्लेषण में, पारंपरिक सामाजिक आदेश में कुछ भी सर्वोच्च आत्म–ज्ञान का एहसास कर सकता है जो भी किसी की स्थिति है। पूरा सवाल मन की शुद्धता पैदा करने में से एक है। यह अपवाद एक बेहद प्रतिबंधित है। जाहिर है, केवल उन लोगों को जो पहले से ही बेहतर बौद्धिक–आध्यात्मिक गुणों के साथ संपन्न है, आत्म–प्राप्ति के लिए प्रत्यक्ष रहस्यमय–बौद्धिक तरीके का पालन कर सकते हैं। दरअसल, इस स्तर पर यह अब हिंदू धर्म, बौद्ध धर्म, ईसाई धर्म का इस्लाम आदि का सवाल नहीं है, यह आध्यात्मिक विकास की तकनीक का पालन करने का एक सवाल है जो किसी की प्रकृति के लिए उपयुक्त है। हिंदू धर्म की ऐतिहासिक दुनिया में कई अलग–अलग सदन हमेशा उपलब्ध रहे हैं, लेकिन एक हिंदू, पारंपरिक रुप से परंपरा के साथ, बौद्ध, ईसाई या आंतरिक आध्यात्मिक बौद्धिक विकास की इस्लामी तकनीक का पालन कर सकती है। इस प्रकार हिंदू धर्म के सामाजिक, व्यक्तिगत आध्यात्मिक–बौद्धिक मोड केवल कुछ लोगों के लिए उपलब्ध है, यह कहना सच है कि हिंदुओं के विशाल बहुमत के लिए धर्म–सामाजिक मोड का विघटन एक प्रामाणिक के लिए सभी अवसरों की अनुपस्थिति है।

हिंदू परंपरा के दो तरीकों (धर्म–सामाजिक और रहस्यमय–आध्यात्मिक–बौद्धिक–या, अधिक सरल, हिंदू धर्म और हिंदू आध्यात्मिकता) के बीच भेद नया नहीं है; लेकिन इसे अक्सर गलत समझा जाता है।

पहली जगह, यह एक विकासवादी या विकासात्मक भेद नहीं है, दो तरीके हिंदू धर्म के ऐतिहासिक विकास में विभिन्न चरणों का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकते हैं और नहीं कर सकते हैं। दूसरा, वे बराबर मोड़ नहीं; कोई दूसरे को प्रतिस्थापित नहीं कर सकता है।

दोनों के असली संबंधों को समझना बेहद महत्वपूर्ण है। धर्म–सामाजिक और आध्यात्मिक– बौद्धिक तरीके से असमान रुप से संबंधित है; दूसरा तर्कसंगत रुप से स्वतंत्र है जो इस पर निर्भर है (आध्यात्मिक–बौद्धिक) तर्कसंगत और अस्तित्व में दोनों। इसका तात्पर्य है कि दो मोड दो स्तरों का प्रतिनिधित्व करते हैं जो तार्किक रुप से असंतुलित है, लेकिन अस्तित्व में निरंतर है। इसमें शामिल विरोधाभास हिंदू परंपरा के लिए आंतरिक है और एक रहस्य का प्रतिनिधित्व करता है। हालांकि, दो तरीकों का विषम संबंध, न्यूनता और श्रेष्ठता के किसी भी रिश्ते को इंगित नहीं करता है, क्योकि मोड असंतुलित स्तर का प्रतिनिधित्व करते हैं। अस्तित्व के स्तर पर वे पदानुक्रमित रुप से संबंधित है; पहली बार दूसरे की ओर अग्रसर। इस तरह से हिंदू परंपरा अपने आध्यात्मिक–बौद्धिक मोड में बार–बार जीवित है, जबकि इसके धर्म–सामाजिक तरीके में आज यह पूरी तरह से क्षय हो रहा है। हिंदू समाज की मृत्यु या मृत्यु–मृत्यु एक संत, योगी, सिद्ध होने से नहीं रोकती है; लेकिन यह वास्तव में एक संत होने से कम जीवन के सार्थक स्तर तक पहुंचने से रोकता है। हिंदू धर्म की समकालीन स्थिति को समझने के लिए वर्तमान चुनौतियों के लिए हिंदू प्रतिक्रिया की अनौपचारिक प्रकृति को देखने और झूठी चेतना को समझने के लिए, जिसमें समकालीन हिंदू एक दुखद शिकार है, चरम पर एक पिछली नजर–संक्षेप आवश्यक है।

9.3.2 अवध किशोर सरन का साम्प्रदायिकता का सिद्धांतः (Theories of Sacularism by Avadh Kishor Saran)

अंग्रेजी शासन से पहले और मुस्लिम राष्ट्रवाद के आधुनिक राजनीतिक विचारों से बहुत पहले, भारत में मुस्लिम समुदाय की सर्वसम्मति ने सरहिंद और शाह वाली–उल्लाह के शेख अहमद की शुद्ध शिक्षाओं के पक्ष में अकबर और दादा शिकोह के उत्थान को खारिज कर दिया था। सांस्कृतिक नस्लववादी सांस्कृतिक जीत के डिफॉल्ट रुप से मध्यकालीन मुस्लिम भारत में प्रमुख आदर्श था।

यह इस सिद्धांत को साबित करने के लिए स्पष्ट रुप से प्रश्न से बाहर है। कुछ टिप्पणियां हालांकि क्रम में हो सकती है। सबसे पहले कबीर और गुरु नानक के बारे में। कबीर स्वयं हिंदू धर्म और इस्लाम दोनों के अपने धर्म–सामाजिक रुप में एक कट्टरपंथी आलोचक थे, जैसे कि वह किसी भी धर्म या संप्रदाय को प्रायोजित करने में दिलचस्पी नहीं रखते थे। वह हिंदू बौद्धिक मार्ग का स्वामी था, जिसमें गूढ़ योगिक

साधना की अपनी प्रणाली थी। उसके बाद नामित एक संप्रदाय (कबीर पंथ) उत्पन्न हुआ, लेकिन यह एक अलग कहानी है।

सिख धर्म, जो गुरु नानक की शिक्षाओं से विकसित हुआ, इस्लाम और हिंदू धर्म के संश्लेषण का प्रतिनिधित्व करने के लिए कहा जा सकता है; लेकिन यह उल्लेखनीय है कि एक धर्म बनने के लिए साधना के रुप में इसकी उत्पत्ति से अंततः यह एक हिंसक विरोधी मुस्लिम आंदोलन में विकसित हुआ। दूसरे शब्दों में केवल गूढ़ व्यक्तिगत अहसास के स्तर पर संतों के स्तर और उम्मीदवारों के लिए उम्मीदवारों का स्तर, कोई वास्तविक संश्लेषण या बातचीत हो सकती है। दूसरी बात यह है कि यह सांस्कृतिक लेकिन धार्मिक नस्लवाद नहीं था, जो मुस्लिम शासन के तहत भारत में प्रमुख आदर्श था। धार्मिक नस्लवाद राहत थी।

9.3.3 अवध किशार सरन का आधुनिकता का सिद्धांतः (Theories of Modernism by Avadh Kishor Saran)

गाँधी जी ने एक धार्मिक या दार्शनिक प्रणाली तैयार करने से इंकार कर दिया, लेकिन उन्होंने अपने पूरे जीवन में कुछ विचारों के लिए खड़ा किया, जो सार्वभौमिक महत्व के नहीं हैं। इसे स्पष्ट रुप से देखने के लिए, हम चुनौती के प्रकृति और संदर्भ को संक्षेप में, संक्षेप में समीक्षा करें, जिस पर उनके जीवन और विचार एक समर्पित प्रतिक्रिया थे। सीमित दायरे में, दक्षिण अफ्रीका में गाँधी के राजनीतिक करियर की शुरुआत में शुरुआत करना संभव नहीं है; हम भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में किसी भी व्यवस्थित तरीके से अपनी भूमिका की समीक्षा भी नहीं कर सकते हैं। गाँधी जी ने द्वितीय विश्व युद्ध के बाद एक प्रमुख व्यक्ति के रुप में दृश्य में प्रवेश करते समय भारत के स्वतंत्रता संग्राम की कुछ प्रमुख विशेषताओं को इंगित करना है।

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन एक ही समय में कई अलग–अलग चीजें थीं। यह एक सुधार, पुनर्जागरण और राष्ट्रवादी आंदोलन था। साथ ही यह हिंदू राष्ट्रवाद के नाम पर धार्मिक पुनरुत्थान के लिए एक आंदोलन भी था। जब गाँधी भारतीय राजनीतिक दृश्य पर आए, तो गोखले और तिलक का प्रभुत्व था। ईसाई धर्म और आधुनिकता और धर्मनिरपेक्षता की चुनौतियों के हिंदू प्रतिक्रिया का मूल सिद्धांत नीलकंथा सिंड्रोम कहा जा सकता है। यह आंकलन, संश्लेषण, सामंजस्यपूर्ण सह–अस्तित्व है। यह आंकलन, संश्लेषण, सामंजस्यपूर्ण सह–अस्तित्व है; इस्लाम के साथ अपने मुठभेड़ में पहले हिंदुओं ने असफल तरीके से इस्तेमाल किया था, यह रणनीति थी। इस अवधि (1800–1947) को आमतौर पर एक महत्वपूर्ण और रचनात्मक अवधि के रुप में माना जाता है। इसे आम तौर पर हिंदू धर्म के पुनर्जागरण कहा जाता है।

हालांकि, तथ्य यह है कि आकस्मिकता और संश्लेषण के अस्थिर विचार से परे कोई अग्रिम नहीं किया गया था, यह दिखाता है कि हिंदू चेतना को कितना गहराई से गलत साबित किया गया था।

तिलक राष्ट्रवादी आंदोलन की धर्म–सामाजिक पुनरुत्थानवादी व्याख्या का नेतृत्व करते थे। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के नेताओं के रुप में गोखले और तिलक के बीच विकसित तनाव, व्यक्तित्वों के संघर्ष से कहीं ज्यादा गहराई से दर्शाता है। इसने राष्ट्रवाद और हिंदू धर्म के विचार और उस मामले के लिए इस्लाम के विचार के बीच आवश्यक असंगतता को दर्शाया। जबकि हिंदू राष्ट्रवाद या इस्लामी राष्ट्रवाद एक विरोधाभास है, जबकि राष्ट्रवाद और हिंदू धर्म दोनों को भारतीय राजनीतिक और सामाजिक आंदोलन में विरोधी साम्राज्यवादी ताकतों द्वारा जोर देना जरुरी था। एक स्तर पर, हिंदू धर्म और हिंदू समाज अविभाज्य है और इसलिए किसी को मजबूत या कमजोर करने के लिए दूसरे के लिए गहरा महत्व है। अब हिंदू समाज एक जाति समाज है, एक बहिष्कार है, हालांकि एक हिंदू वास्तव में बाहरी व्यक्ति है और इसलिए उसे अन्य धर्मों में आसानी से लुभाया जा सकता है। इस कारण से कुछ सुधार आवश्यक और जरुरी हो गए, क्योंकि इस समय हिंदू धर्म को न केवल ईसाई धर्म और इस्लाम द्वारा, बल्कि पश्चिमी तर्कवाद से भी धमकी दी जा रही थी। लेकिन हिंदू धर्म के इस सुधार में एक ही समय में पुनरुत्थान होना था, क्योंकि यह एकमात्र तरीका था, सामूहिक पहचान पाने और समाज को गर्व करने और समाज को विदेशी शासन के खिलाफ कार्य करने के गियर करना था। दूसरे शब्दों में, आधुनिक पश्चिमी शाही शासन के तहत भारत के विशिष्ट ऐतिहासिक संदर्भ में सुधारवादी और आधुनिकतावादी ताकतों को केवल बहुत संकीर्ण सीमाओं के भीतर ही काम कर सकता है। इस प्रकार राष्ट्रवाद की गोखले की सही गैर–धार्मिक व्याख्या भारतीय स्थिति में गंभीर आंतरिक तनाव विकसित करने के लिए बाध्य थी। हिंदू–मुस्लिम संबंधों के इतिहास के लिए, एक आम ऐतिहासिक अतीत के संदर्भ में वास्तव मे राष्ट्रीय पहचान बनाना असंभव था। इसलिए केवल अपील ही नहीं थी, बल्कि शिवाजी के कार्य को पूरा करने के रुप में तिलक के राष्ट्रवाद के विचार में एक प्रकार की अपरिहार्यता – एक व्याख्या थी। जिसका अर्थ केवल हिंदू धर्म के भीतर हो सकता है और मुसलमानों द्वारा खारिज कर दिया जाना चाहिए। भारत के स्वतंत्रता–सह–राष्ट्रवादी आंदोलन में यह आंतरिक विवाद हमारे समय तक सभी तरह से जारी रहा है। गोखले और तिलक के बाद, राष्ट्रवादी आंदोलन के दो असंगत पहलुओं का प्रतिनिधित्व नेहरु और पटेल ने किया था और भले ही पटेल की मृत्यु 1950 में हुई थी, लेकिन आदर्शवादी ताकतों का प्रतिनिधित्व उन्होंने बहुत जिंदा और मजबूत है।

गोखले और तिलक दोनों के तत्काल उत्तराधिकारी, निश्चित रुप से गांधी थे। उन्होंने इस आंतरिक विवाद से निपटने के लिए, या किसी भी दर पर कैसे ठीक किया। इस महत्वपूर्ण चुनौती के लिए गांधी की

प्रतिक्रिया तीन गुना थी। उन्होंने मूल रुप से भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के आधार, दायरे और प्रकृति को बदल दिया। गाँधी के साथ भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस एक पार्टी की पार्टी बन गई। किसी भी दर पर, यह ऊपरी और मध्यम शिक्षित वर्गों तक ही सीमित हो गया।

उन्होंने भारतीय राजनीति के दायरे को सार्वभौमिक बना दिया, जो भारतीय संघर्ष के विश्व–ऐतिहासिक चरित्र पर जोर दे रहा था, जो सभी उत्पीड़कों और शोषण करने वालों के खिलाफ उत्पीड़ित और शोषण के संघर्ष का प्रतिनिधित्व करता था। उन्होंने खुद को एक बेहतर विश्व व्यवस्था के लिए लड़ने के रुप में सोचा और न केवल एक मुक्त भारत के लिए। दरअसल, अपने राजनीतिक कैरियर में तुलनात्मक रुप से देर तक उन्होंने भारत की स्वतंत्रता पर जोर नहीं दिया, क्योंकि उन्होंने एक सुधारित ब्रिटिश राष्ट्रमंडल साथी बन सकता था। अपने विचार में, भारतीय आंदोलन राष्ट्रीय लेकिन सार्वभौतिक–मानव–वैश्विक नहीं था और मार्क्सवादी आंदोलन के समानांतर था।

9.3.4 अवध किशोर शरण का मानव की परम्परागत दृष्टिः (Traditional Vision of Man by Avadh Kishor Saran)

पहली संभावना हिंदू परंपरा की ऐतिहासिक, प्रकृति से उत्पन्न होती है। इस्लाम भी प्राथमिकता परंपरा की एक औपचारिकता है। हिंदू से इस्लामी मोड़ में स्थानांतरित करने में एक व्यक्ति अभी भी परंपरा के भीतर रहेगा। इस्लाम के सामूहिक रूपांतरण को हिंदू नवीकरण के समकालीन तरीके के रुप में माना जा सकता है। पुराने और पराजित धर्म के रुप में मरकर इसे प्रायोगिक परंपरा की सबसे छोटी पद्धति के रुप में पुनर्जन्म दिया जा सकता है। इसके लिए भी कारण हिंदू आध्यात्मिकता की बोलीभाषा में खोजा जाना है। यदि सभी धार्मिक परंपराएं उच्चतम स्तर पर आध्यात्मिक रुप से समकक्ष हैं, तो किसी के जन्म के अलावा किसी अन्य परंपरा को स्थानांतरित करने का सवाल उठता नहीं है। इस तरह के कदम के लिए कोई तार्किक आधार नहीं हो सकता है। केवल असाधारण रुप से धार्मिक रुपांतरण के लिए एक वास्तविक मामला हो सकता है, अर्थात् जब कोई यह पता चलता है कि किसी अन्य परंपरा के परिप्रेक्ष्य और आध्यात्मिक संसाधन किसी के जन्म की परंपरा की तुलना में किसी की प्रकृति के लिए कहीं बेहतर अनुकूल है।

मुद्दा यह है कि, मामले की प्रकृति में, रुपांतरण के आधार केवल व्यक्तियों पर लागू होते हैं। इस्लाम में परिवर्तित करने के लिए सामूहिक निर्णय किसी दूसरे पर एक परंपरा की अंतिम श्रेष्ठता को लागू किए बिना नहीं लिया जा सकता है और यह हिंदू स्थिति के साथ असंगत है। ऐतिहासिक संदर्भ में, सामूहिक

धर्मांतरण के प्रस्ताव में हिंदू धर्म–सामाजिक परंपरा की मौत और हिंदुओं के लिए परंपरा की एक नई पद्धति के वंशज के साथ इस्लाम की राजनीतिक जीत को समान बनाने की आवश्यकता होगी। यह स्पष्ट है कि इस तरह के फैसले के लिए आध्यात्मिक अधिकार प्रदान करने के लिए ऐतिहासिक स्थिति में कुछ भी नहीं था जो राजनीतिक हार के तर्कसंगतता की तरह नहीं दिख सकता था। इस तरह के एक प्राधिकारी की अनुपस्थिति में ऐसा कोई निर्णय असहनीय होगा।

इसलिए हिंदुओं के लिए वास्तविक विकल्प केवल दूसरे और तीसरे थे। मुस्लिम प्रभुत्व के लंबे इतिहास के दौरान हिंदू इन दोनों के बीच आ गए, तीसरे विकल्प पर स्वाभाविक रुप से काफी हद तक झुकाव, हालांकि वे अंततः सफल नहीं हुए। कुछ संशोधनों के साथ मैं बाद में उल्लेख करूंगा, निम्नलिखित अनुच्छेद अच्छी तरह से स्थिति को बताता है। यहां उठाया गया दृष्टिकोण हिंदुओं द्वारा मुसलमानों का इलाज केवल एक और जाति के रुप में है। गांवों में मुस्लिमों के बीच हिंदू परंपरागत कानून का अंतःक्रिया, मुगल सम्राटों द्वारा शाही सेवा में रैंक की व्यवस्था के साथ मुगल सम्राटों द्वारा एक हिंदू–मुस्लिम शासक वर्ग और पोलो, हाथी लड़ाई और पोशाक के सामान्य तरीके में आम रुचि, एक लिंगुआ फ्रैंका, उर्दू का विकास, अरबी और फारसी शब्दावली के पास हिंदी व्याकरण का संयोजन, अल–बिरूनी या अबूल फजल जैसे मुस्लिमों द्वारा हिंदू विचारों का अध्ययन। हिंदुओं द्वारा फारसी में इतिहास की रचना।

9.4 अवध किशोर सरन का मानव का परम्परागत चिंतनः (Tradition Thought of Human by Avadh Kishor Saran)

गाँधी भारत में उदार, सभ्य ब्रिटिश शासन द्वारा उत्पादित जीवित थे, यदि उनके मुख्य आध्यात्मिक खोज और मिशन अंतिम विश्लेषण में थे, तो उनके राजनीतिक संघर्ष की एक चतुर हिंदू की सजावट और इसलिए सामाजिक वैज्ञानिक के लिए एक व्याकुलता, अगर गाँधी सिर्फ औपनिवेशिक शासन के तहत हिंदू चरित्र के लिए कुछ अच्छा करने की कोशिश करने वाला एक संभोग करने वाला व्यक्ति, एक शब्द में, यदि गाँधी की विफलता और गाँधीवादी विचार की विफलता समानार्थी हैं, तो गाँधी के जीवन और विचार हमारे समय के लिए अप्रासंगिक है और यदि मैं, एक के लिए इस पर विश्वास किया, तो मुझे गाँधी या गाँधीवाद के बारे में बात करने में दिलचस्पी लेने का कोई कारण नहीं दिखता, जो सत्य है।

हालांकि, तीन गुना गाँधीवादी क्रांति जिसके बारे में हम बात कर रहे हैं, वह विश्व ऐतिहासिक महत्व के साथ एक वास्तविक क्रांति का गठन करता है। अगर गाँधी सिर्फ औनिवेशिक नेता नहीं थे जो किसी तरह की विश्व प्रसिद्धि प्राप्त करने के लिए हुआ, लेकिन इसके विपरीत एक मनुष्य की नियति के साथ निरंतर और दृढ़ चिंता के साथ सार्वभौमिक चित्र, फिर गाँधी, उनके विचार, जीवन और कार्य द्वारा उठाए

गए केंद्रीय प्रश्न, हमारे समय की प्रासंगिकता का सवाल है और यह कुछ भी नहीं है या इससे कम नहीं है। क्या स्वच्छता की आवाज अंधेरे, हमारे समय की राक्षसी शक्तियों के खिलाफ किसी भी मौके पर य कुछ अभी भी है।

यह एक भयानक सवाल है। इस तथ्य के अलावा कि हर किसी की तरह मैं इस सवाल में गहराई से शामिल हूँ। मेरे पास इसका जवाब देने की कोई क्षमता नहीं है। मेरे लिए उपलब्ध शेष जगह में मुझे क्या कहना है, सवाल के विश्लेषण से कहीं ज्यादा कुछ नहीं है। मुझे दोहराने दो, जिन अवलोकनों का पालन किया गया है, वे अभी भी दिए गए प्रश्न का उत्तर देने का कोई दावा नहीं करते हैं। मैं जो कुछ करने का प्रयास करता हूँ वह गाँधीवादी दृष्टिकोण से इस प्रश्न के कुछ प्रभावों का पता लगाने के लिए है। मैंने कहा कि गाँधीवाद की समकालीन प्रासंगिकता के सवाल पूछने के लिए वास्तव में समाज और अस्तित्व के बारे में सवाल पूछना है। इसे देखने के लिए और अपने उचित परिप्रेक्ष्य में गाँधीवाद की समकालीन प्रासंगिकता के प्रश्न को समझने के लिए, सामान्य समाज के गाँधीवादी दृष्टिकोण के बारे में संक्षेप में बात करना जरूरी एवं महत्वपूर्ण है। गाँधी नैतिक व्यक्ति और अनैतिक समाज के सह–अस्तित्व में विश्वास नहीं करते थे। असल में, राजनीतिक विचारों और कार्यों में उनके सबसे महत्वपूर्ण योगदानों में से एक यह विचार है कि नैतिक कार्यवाही और प्रतिरोध के तरीकों को व्यक्ति से सामूहिक विमान में स्थानांतरित किया जा सकता है और राजनीतिक कार्यवाही के शक्तिशाली रुपों के रुप में उपयोग किया जा सकता है। दरअसल, सत्याग्रह की तकनीक इस मूल विचार को मानते हैं। गाँधी का मानना था कि समाज हो सकता है और नैतिक होना चाहिए। क्या उसने यह भी कहा कि उस व्यक्ति को एक व्यक्ति के रुप में नैतिक समाज की आवश्यकता होती है ताकि वह खुद नैतिक हो सके? मुझे लगता है कि यह गाँधी के सामाजिक विचार को समझने में एक मौलिक मुद्दा है। इसलिए हम इसे एक पल सोचे।

समझौते के गुणों में गाँधी न केवल राजनीतिक बल्कि लगभग सभी क्षेत्रों में एक महान आस्तिक थे, यह ईमानदारी और हर राजनीतिक अभिनेता के व्यक्तिगत जीवन की शुद्धता पर सबसे बड़ा तनाव डालने के लिए उनके राजनीतिक सिद्धांत और अभ्यास का हिस्सा था। इस दृष्टिकोण से अपने विचार और अभ्यास को देखते हुए, ऐसा लगता है कि गाँधी ने एक गैर–नैतिक समाज में नैतिक पुरुषों की संभावना से इंकार नहीं किया था। गाँधी के विचार की इस तरह की व्याख्या के आगे समर्थन में, यह इंगित किया जा सकता है कि गाँधी की राजनीतिक कार्यवाही का अंतिम अभिविन्यास अन्य पार्टी के दिल में बदलाव को प्रभावित करने के लिए था। उनकी सोच और राजनीतिक कार्यवाही के रुपों को उन्होंने विकसित किया, यह तर्क दिया जा सकता है कि सामाजिक परिवर्तन की संचयी प्रक्रिया जा होनी चाहिए। नहीं सोचा था कि

व्यक्तिगत रुप से मनुष्य एक गैर–नैतिक, अनैतिक या अन्यायपूर्ण समाज में नैतिक हो सकता है, यानी वह नैतिक व्यक्ति के विरोधी प्रतिद्वंद्विता में विश्वास नहीं करता था और अनैतिक समाज में यह दिखाना चाहता हूँ कि उनके विचार और काम के किसी भी विश्लेषण में सह–अस्तित्व (नैतिक व्यक्ति और अनैतिक समाज) सिद्धांत गंभीरता से भ्रामक होगा।

गाँधी ने व्यक्ति को सबसे आगे व्यक्ति के रुप में रखा था। लेकिन यह सामान्यता के सिद्धांत कहलाए जाने पर ध्यान केंद्रीत करने का केवल एक शक्तिशाली और यथार्थवादी तरीका था।

एक सामान्य समाज बस एक समाज है। इसके विरोध में सामूहिक समाज और जन–पुरुष और द्रव्यमान कहा जाता है, या जिसे वर्तमान में "पॉप" संस्कृति कहा जाता है। द्रव्यमान और समाज एक–दूसरे के विपरीत थे। वे आज अतिसंवेदनशील रहे हैं। एक समाज के पास एक समझदार आदेश और एक समग्र उद्देश्य है। एक द्रव्यमान दोनों की कमी है। यह इस प्रकार है कि समाज के सदस्यों के पास अपनी जगह और कार्य है। एक द्रव्यमान में ऐसा नहीं है।

9.5 सारांशः (Summary)

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप यह जान चुके हैं कि प्रो० ए०के० सरन ने समाजशास्त्र के क्षेत्र में क्या योगदान दिया है। प्रो० अवध किशोर सरन के जीवन परिचय से लेकर उनके एकेडमिक योगदान को समझ गये हैं। प्रो० सरन ने अपने शोधों से सर्वप्रथम भारत में हिन्दूज्म पर बात की है, जिसको आप समझ गये होंगे कि हिन्दुज्म के बारे में प्रो० सरन की क्या राय है। इस इकाई में उनके साम्प्रदायिकता के सिद्धांत को भी समझ गये होंगे कि इस्लाम/हिन्दू किस तरह से आपस में साम्प्रदायिकता की बात करते हैं। इस इकाई को पढ़ने पर आप प्रो० सरन के आधुनिकता के सिद्धांत को समझ गये होंगे। इस इकाई में प्रो० अवध किशोर सरन के मानव का परम्परावादी दृष्टि क्या है एवं उसके चिंतन का आधार क्या है को समझ गये होंगे। समाजशास्त्र के क्षेत्र में प्रो० अवध किशोर सरन का महत्वपूर्ण योगदान है।

9.6 शब्दावलीः (Glossary)

1. सांस्कृतिक बातचीत : सांस्कृतिक बातचीत से तात्पर्य वह प्रक्रिया है जिसमें किसी संस्कृति के संदर्भ में ही बात की जाये तभी हम उस संस्कृति को समझ सकते हैं।

2. सार्वभौमिक परम्परा : एक ऐसी परम्परा से तात्पर्य है कि जो सब जगह पायी जाती है, वह सार्वभौमिक परम्परा कहलाती है।

3. राष्ट्रवादी आंदोलन : राष्ट्रवादी आंदोलन से तात्पर्य है वह आंदोलन जो सम्पूर्ण राष्ट्र में हो या सम्पूर्ण राष्ट्र की सहभागिता हो राष्ट्रवादी वह आंदोलन कहलाता है।

4. सत्याग्रह : सत्याग्रह से तात्पर्य है कि सत्य के साथ आग्रह से है।

5. दृष्टिकोण : दृष्टिकोण से तात्पर्य सीन थ्रो से है। अगर आप ऊपर से नीचे तक देखने का तरीका/जब व्यक्ति किसी घटना को अपने परिप्रेक्ष्य/दृष्टि कोण से दिखा है तो उसे दृष्टिकोण कहते हैं।

18.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तरः (Answer questions of Practice)

प्र०1 प्रो० अवध किशोर सरन का जन्म कब हुआ?

(क) 1921 (ख) 1929

(ग) 1922 (घ) 1925

उत्तर– (ख)

प्र०2 प्रो० अवध किशोर सरन किस विश्वविद्यालय से जुड़े थे?

(क) बम्बई विश्वविद्यालय (ख) लखनऊ विश्वविद्यालय

(ग) चौ० चरण सिंह विश्वविद्यालय (घ) इलाहाबाद विश्वविद्यालय

उत्तर– (ख)

प्र०3 प्रो० अवध किशोर सरन की मृत्यु कब हुई?

(क) 2005 (ख) 2004

(ग) 2006 (घ) 2003

उत्तर– (घ)

प्र०4 धर्म निरपेक्षता एवं आधुनिकरण की चुनौतियों को पूरा करने की ताकत है?

(क) इस्लाम धर्म (ख) ईसाई धर्म

(ग) हिन्दू धर्म (घ) सिक्ख धर्म

उत्तर– (ग)

प्र०5 कौन–सी परम्परा आंतरिक और बाहरी जीवन के बीच किसी भी डिकोटॉमी की अनुमति नहीं देती है?

(क) हिन्दू परम्परा (ख) ईसाई परम्परा

(ग) मुस्लिम परम्परा (घ) ब्रिटिश परम्परा

उत्तर– (क)

प्र०6 भक्ति आंदोलन को बनाये रखने वाली प्रक्रिया में दूसरे पक्ष थे?

(क) कट्टरवाद (ख) खाकी और कठोर अनुष्ठान

(ग) संस्कृतिवाद (घ) उपरोक्त सभी

उत्तर– (घ)

प्र०7 ब्रहम समाज की स्थापना हुई थी?

(क) 1827 (ख) 1829

(ग) 1828 (घ) 1830

उत्तर– (ग)

प्र०8 निम्न में से कौन–सा धर्म हिन्दू धर्म को अवशोषित या प्रतिस्थापित ना कर सका?

(क) मुस्लिम धर्म (ख) सिक्ख धर्म

(ग) ईसाई धर्म (घ) पारसी धर्म

उत्तर– (ग)

प्र०9 देव समाज के संस्थापक कौन थे?

(क) केशव सेन (ख) एस०एन० अग्निहोत्री

(ग) पुष्प सेन (घ) शिव सेन

उत्तर– (ख)

प्र०10 "क्रांसिस ऑफ हिन्दुज्म" पुस्तक किसने लिखी?

(क) प्रो० सरन (ख) प्रो० डी०पी० मुखर्जी

(ग) प्रो० एल०पी० विद्यार्थी (घ) प्रो० डी०एन० मजूमदार

उत्तर– (क)

प्र०11 कौन–सी पुस्तक/सिद्धांत प्रो० अवध किशोर सरन का नहीं है?

(क) क्रॉसिस ऑफ हिन्दुज्म (ख) गाँधीज्म थ्योरी ऑफ सोसायटी

(ग) कन्टमपरेरी इण्डियाज हिन्दुज्म (घ) होली फैमली

उत्तर– (घ)

प्र०12 Studies of Comparative Religion से कौन–जुड़ा है?

(क) प्रो० मजूमदार (ख) प्रो० मुखर्जी

(ग) प्रो० जे०पी० (घ) प्रो० सरन

उत्तर– (घ)

9.8 संदर्भ ग्रंथ की सूचीः (References)

1. प्रो० अवध किशोर सरन (1971)– "क्रॉसिस ऑफ हिन्दुज्म", वॉल्यूम–5, नं० 2, स्टडीज इन कम्पेरेटिव रिलीजन, स्प्रींग पब्लिकेशन।

2. प्रो० अवध किशोर सरन (1969)– "हमारे समय में समाज के गाँधी के सिद्धांत", वॉल्यूम–3, नं० 4, स्टडीज इन कम्पेरेटिव रिलीजन, ऑलट्रम पब्लिकेशन।

9.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्रीः (Useful Contain)

1. इंटरनेट से संग्रहित सामग्री।

9.11 निबंधात्मक प्रश्नः (Essay Type Questions)

प्र०1 प्रो० अवध किशोर सरन के जीवन परिचय का संक्षेप वर्णन क्या है?

प्र०2 प्रो० अवध किशोर सरन के क्रॉसिस ऑफ हिन्दुज्म पर क्या विचार है?

प्र०3 प्रो० अवध किशोर सरन के समसामयिक में हिन्दुत्व पर विचार क्या हैं?

प्र०4 साम्प्रदायिकता पर प्रो० अवध किशोर सरन के क्या विचार हैं?

प्र०5 प्रो० अवध किशोर सरन का महात्मा गाँधी के सिद्धांत पर क्या विचार हैं?

प्र०6 मानवता का परम्परागत दृष्टिकोण क्या हैं?

प्र०7 प्रो० अवध किशोर सरन का मानव का परम्परागत ज्ञान का चिंतन क्या है?